मार्गरीटा

मार्गरीटा

अशोक कुमार





अशोक कुमार

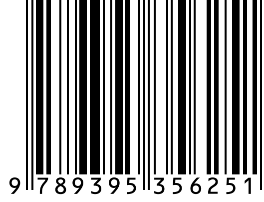
मार्गरीटा

मार्गरीटा

अशोक कुमार

नमन प्रकाशन
नई दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण : 2023
ISBN : 978-93-95356-25-1

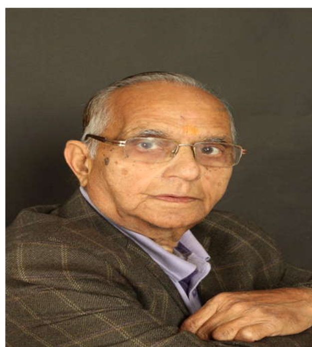


आवरण चित्र :
श्रीमती प्रीति अशोक कुमार की कलाकृतियों में से।

नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
8750551515, 9350551515

श्री नितिन गर्ग द्वारा नमन प्रकाशन के लिए प्रकाशित तथा
एशियन ऑफसेट प्रिंटर्स, मौजपुर, शाहदरा, दिल्ली में मुद्रित।

Margarita By Ashok Kumar



मेरे बड़े भाई स्वर्गीय डॉक्टर श्री नैनी कुमार जिन्होंने मुझे
पढ़ाया और हर हाल में मेरी सुध ली।
वे लंदन में ऑर्थोपैडिक सर्जन थे और लन्दन/अमरीका/गुडगाँव
की आर्ट गैलेरीज में
एक्सीबिटेड अंतर्राष्ट्रीय स्तर के आर्टिस्ट थे।
मेरी कई पुस्तकों के कवर इन्हीं की बनाई पेंटिंग्स के हैं।
यह पुस्तक-मार्गरीटा-उन्हीं की याद को सादर समर्पित!
अशोक कुमार

भूमिका

''मार्गरीटा'' मेरी कहानियों का दूसरा संकलन है। पहला- ''कचरा फ़ैक्ट्री''- तीन साल पहले आया था। इस संकलन में 21 कहानियां हैं और इनमें से बहुत सी कहानियां ''कचरा फ़ैक्ट्री'' की कहानियों से बाद की कहानियां हैं।

किसी भी विधा का हुनर रखने वाले का थोड़ा सा बाग़ी होना लाज़मी होता है वरना वह 'कलाकार' नहीं हो सकता, भक्त होता है। सामान्य धारणा है कि लिखा हुआ इतिहास भक्त लिखते हैं लेकिन कलाकार क्योंकि भक्त नहीं होता इसलिए सत्य उसी के लेखन या चित्रण से उजागर होता है और पीढ़ियों के बाद भी उस दौर के साहित्य/ कला से ही पता चलता है कि तब हालात क्या और कैसे थे।

मेरी कहानियां समाज की समस्याओं /सोचों और व्यवस्थाओं को उधेड़ती हैं- शायद इसलिए कि मेरी कहानियां ''सत्यम वद'' से ताल्लुक़ रखती हैं न कि 'हिपोक्रेसी' और 'पोलिटिकली राइट' होने से। पॉलिटिकली राइट होना तनिक देर के लिए सब सम्भाल देता है लेकिन उसके परिणाम बहुत दूरगामी और ख़तरनाक होते हैं। वैसे ही जैसे बर्फ ठंडा भले ही लगे लेकिन उसकी तासीर गर्म होती है।

अपने अपने मह्सूसात, अपनी अपनी अनुभूतियों से हर साहित्यकार अपने अपने नज़रिये से समाज और समय का मंथन करता है। इस मंथन से जो ज़हर या अमृत निकलता है वह उसे अपने पाठकों तक इस तरह पहुँचाता है कि पाठक को इस ज़हर की अनुभूति तो हो जाये लेकिन उसके रसास्वादन में उसका इंटरेस्ट बना रहे। याने हक़ीक़त बयान भी हो जाये, उसकी तल्ख़ी भी समझ में आ जाये लेकिन कहानी पढ़ते जाने में उसकी रूचि बनी रहे। इसीलिए कहानियों का रोचक होना अनिवार्य है।

शायद इस संकलन की कहानियां आपको पिछली बार से अधिक अर्थपूर्ण, मैंच्योर और रोचक लगें और पसंद आयें। इसी आशा के साथ,

- अशोक कुमार

अनुक्रम

मार्गरीटा

झाँसी से ओरछा जाते वक़्त शहर के बाहर सड़क के दाहिने तरफ़ एक छोटा सा टीला था। जहाँ क़रीब बीस-पच्चीस साल पहले जाना मना था। कहते थे वहां भुतहा मंदिर है। मंदिर था या मढ़िया या गुफ़ा क्या पता बहरहाल दिखता था कुछ छोटा सा फिर वहां एक पादरी आ कर रहने लगा। पहले तो लोगों ने त्यौरियां चढायीं, उसे निकालने की बेकार कोशिशें कीं लेकिन जगह का कोई मालिक था नहीं और आज़ादी आ जाने के बाद नेताओं और नायबों का काम तो हो ही चुका था तो वो तो सब सुस्ता रहे थे। इसलिए उसे निकालता कौन!

पादरी नौजवान था। दोस्ताना था। ग़रीबों और बेसहारों का मददगार था। ऐसा कि जो अपनी आधी रोटी में से भी आधी दे दे। ग़रजे कि गाँव के लोग-बाग उसके दोस्त बन गए। और जब लोगों ने देखा कि ये नौजवान जिस तरह अपनों से बढ़कर उनकी सेवा करता है- लोगों के रिसरिसाते ज़ख़्मों को हाथों से साफ़ करते हुए या बुख़ार में रात रात भर सर पर बर्फ की थैली रखे हुए या सर्दी में ठिठुरते किसी के लिए लिहाफ़ का बंदोबस्त करते हुए- तो लोग दोस्त से बढ़कर उस पादरी के ग़ुलाम बन गए। आस पास ऐसी कोई बात नहीं थी जो पादरी से पूछे बग़ैर की जाती हो- बच्चा पैदा होने से ले कर बेटी की शादी तक!

एक बात और भी हुई...अब दूर दराज़ गाँवों तक में कोई नाजायज़ औलाद नहीं होती थी और अचानक मढ़िया के बच्चों की गिनती शुरू हो गयी। पहले एन.ए.आर.आई. का क्रॉस लगा फिर इतवार के इतवार आस्मानी ख़ुदा और उसके बेटे के चर्चे होने लगे। मढ़िया छोटा गिरजा कही जाने लगी, नौजवान फ़ादर जेरी के नाम से जाना जाने लगा और मढ़िया के आस पास बिन माँ-बाप की औलादों के नाम रेमो /साइमन /मेरी और आइवन होने लगे। बच्चों को जिस प्यार और ख़ुलूस और भगवान के प्रसाद जैसी भावना से फ़ादर जेरी पढ़ा लिखा या बड़ा कर रहे थे वो क़ाबिल-ए-तारीफ़ ही नहीं क़ाबिल-ए-रश्क भी था।

क़रीब क़रीब वही दौर था जब शाम ढले झुकपुके के वक़्त एक दिन फ़ादर जेरी 'छोटे गिरजे' (जिसने अब ज़रा बड़ी शक्ल इख़्तियार कर ली थी) में जीसस की तस्वीर के आगे मोमबत्ती जला कर प्रार्थना करने जा ही रहे थे कि बाहरसे किसी नौनिहाल बच्चे के बिलखने की आवाज़ आई। ये कोई नयी बात नहीं थी। इसलिए फ़ादर ने मोमबत्ती जलाई, अपने सीने पर क्रॉस बनाया, इसु के सामने घुटने टेके और फिर कमर सीधी कर के दरवाज़े की तरफ़ मुड़ गए। किसी प्लास्टिक की टूटी बाल्टी में एक मैले कपड़े में लिपटी एक-आध दिन की ताज़ा पैदा हुई बच्ची थी। फ़ादर जेरी ने उसे उठाया, नहलाया, अंदर जीसस की तस्वीर के पास ले जा कर उनके कदमों में उसे रखा और फिर उसे आस पास के और बच्चों को दिखा कर कहा- ''शैल वी कॉल हर मार्गरीटा!'' सबने इत्तेफ़ाक़ किया और इस बच्ची-मार्गरीटा-की माँ और बाप फ़ादर जेरी बन गए !

जैसे और बच्चे बड़े हो रहे थे मार्गरीटा भी बड़ी हो रही थी। जब वह चार साल के क़रीब हुई तो उसके गले में सुर और आवाज़ में जादू था। छोटे गिरजे में शामों और इतवार की सुबहों को 'मास' में मार्गरीटा फ़ादर जेरी के साथ गाने लगी और उसका सानी पैदा नहीं हुआ। यों तो बच्चों की तादाद तमाम थी लेकिन हेनरी और मार्गरीटा-ये दोनों- फ़ादर जेरी के जितने क़रीब थे उतना कोई नहीं था। यह नहीं था कि किसी को इस बात का अहसास न रहा हो मगर इस पर ख़ास ध्यान कोई नहीं देता था क्योंकि फ़ादर जेरी का प्यार किसी पर कम भी नहीं था।

शुरुआती पढ़ाई गिरजे के अंदर ही हो जाती थी। लिखना, पढ़ना, दस्तख़त, बाइबल, इधर उधर की अख़बारी ख़बरें, इसु के गुणगान वाला साहित्य-फ़ादर जेरी सब को इतना तो सिखा ही देते थे। जब लड़के लड़कियां बड़े होने लगते और जवानी की दहलीज़ पर क़दम रखने लगते तो फ़ादर जेरी उन्हें किसी न किसी से कह कर अपने रसूख़ से छोटी मोटी रेलवे में या सिविल अस्पताल में नौकरियां लगवा देते थे (ये ही दो चीजें झाँसी में उस वक़्त हो सकती थीं)। आपस में एक दूसरे को पसंद करने वालों की शादियां करवा कर उनके घर बसवा देते थे। शहर में इन नौजवानो को प्यार भी बहुत मिलता था और मदद भी। फिर इतवार के रोज़ ये सारे के सारे लोग अपनी बीवियों और बच्चों सहित छोटे गिरजे जाते और फ़ादर जेरी उन सब को 'ब्लेस' करते और इनके सुख दुःख से वाक़िफ़ होते।

इसी आपा- धापी में एक दिन दौड़ी दौड़ी मार्गरीटा फ़ादर के पास आई और उसने रुआंसे मुंह से उन्हें अपनी फ़्रॉक दिखाई। दोपहर का वक़्त था फ़ादर जेरी ज़रा नींद में थे लेकिन मार्गरीटा आई तो वे उठ कर बैठ गए, उन्होने पूछा- ''क्या बात है?''

-''ये देखो!''

-''ये क्या है?''

-''लाल लाल....''

-''लाल लाल क्या मार्गरीटा!?''

-''ख़ून!'' और मार्गरीटा की आँखों से आंसू निकल आये।

फ़ादर जेरी झटके से उठ कर बैठ गए और फिर उन्होंने ग़ौर से फ्रॉक को अपने हाथ में ले कर देखा।

-''मेरे ख़ून निकला...मेरी पेशाब से ख़ून आया!''

फ़ादर जेरी ने एक मिनट सोचा फिर वे कुर्सी से उठे और उन्होने मार्गरीटा को बग़ल में दबाकर आहिस्ता से प्यार किया और कहा, ''घबराओ मत मार्गरीटा. ......ये ख़ून नहीं है।''

-''तो फिर?''

-''अब तुम जवान हो गयी हो। ये तुम्हारे जवान होने की निशानी है। गॉड तुम पर मेहरबान हुआ है।''

मार्गरीटा को एक मिनट कुछ समझ में नहीं आया फिर बोली। ''तो क्या गॉड जिन पर मेहरबान होता है उनकी पेशाब से ख़ून आता है?!''

-''ऐसा नहीं है मार्गरीटा.......अभी चलो नहा लो, फिर आराम करो!... लड़कियों के इस तरह ख़ून आने का मतलब है कि आसमानी ख़ुदा ने उन्हें माँ बन पाने का मुबारक वरदान अता फ़रमाया है....चलो! शाम को मैं तुम्हें रोज़ी के पास भेज दूंगा वह तुम्हें सब समझा देगी।''

रोज़ी कहाँ से आई थी ये कोई नहीं जनता। हाँ पिछले पांच सालौं से वह फ़ादर का हाथ बटा रही थी। लेकिन मार्गरीटा को फ़ादर पर ज़्यादा भरोसा था। माँ भी तो वहीं थे न! मार्गरीटा पहली लड़की थी जो इस तरह फ़ादर के पास आई थी। फ़ादर भले ही माँ रहे हों लेकिन जवानी की दहलीज़ पर कदम चढ़ाये लड़की को उस आदमी से न मालूम क्या हो गया-ऐसा कुछ जिसे बड़े बड़े लोग नहीं समझ पाते और इस भावना के खत्म होने पर जान पाते हैं के यह इश्क़ था- लगाव, मोहब्बत, ममता, मोह, ललक जिसकी और भी न जाने कितनी तो विधाएँ हैं!

बहरहाल मार्गरीटा जवान होने लगी थी और अब उसे हेनरी से शर्म आने लगी थी। फ़ादर को वह बिलकुल और सिर्फ़ अपना समझने लगी थी और उनसे ज़रा ज़रा सी बात में रूठ जाती थी। उन पर अपने हुक्म चलाती थी और जब फ़ादर नहीं मानते तो रोती लेकिन फिर ख़ुद ही जाकर उन्हें मनाती। फ़ादर को इस नए अंदाज का

अहसास था लेकिन तसल्ली ये थी कि हेनरी भी जवान हो रहा था और उसे मार्गरीटा बेहद पसंद आती थी। फ़ादर भी मार्गरीटा और हेनरी को काफ़ी काम साथ साथ सौंपते थे ताकि दोनों के बीच प्यार का अंकुर और पनपे। उनके मन में यह बात तय हो चुकी थी कि कुछ सालों में मार्गरीटा और हेनरी की शादी करवा कर उनका घर बसवाना है ताकि इन दोनों की ज़िन्दगी सुखी हो सके। लेकिन मार्गरीटा बड़ी शरीर लड़की थी। मौक़ा मिलते ही फ़ादर को चिढ़ाती थी 'फ़ादर! लैट्स गेट मैंरिड!' और फ़ादर उसकी बातों पर पहले तो उसे झिड़कते रहे फिर कोई चारा न देख कर हँसते रहे।

दोनों हेनरी और मार्गरीटा में अपने अपने गुण थे। हेनरी भाषण देने और लोगों से अपनी बात मनवाने में और मार्गरीटा गाने में निपुण थे। फ़ादर ने इन दोनों को ईशु के साहित्य के साथ हर मंगलवार की शाम बस्तियों में भेजना शुरू किया। बस्ती में मंदिर के किनारे शाम को ये लोग खड़े हो जाते। मार्गरीटा ईशु के गीत गाना शुरू कर देती और जब आस पास मंदिर से लौटते हुए लोग जमा हो जाते तो हेनरी अपने पर्चे बाँट कर इशू के गुण-गान और बाइबिल की कथाएं बयान करता। गाने और बखानने के तरीके सचमुच खुदादाद थे। भीड़ बढ़ने लगी-ज़्यादातर नौजवान लोगों की। कुछ इसलिए भी आते थे कि 'मास' के बाद मिठाई मिलेगी और कुछ इसलिए भी कि उनकी ज़िन्दगी आवारा और बेकार है और हो सकता है कि शायद ईशु ही उन्हें कोई रास्ता दिखा सकें।

टीले की ढलान पर पगडण्डी से बस्ती की तरफ़ उतरते हुए ग़नी की लकड़ी की टाल थी। बड़ा सा कांटा, भरपूर और हर तरह की लकड़ियाँ और दो कुल्हाड़ी वाले। ग़नी वहीं रहता, वहीं पकाता-खाता और वहीं सोता। एक लड़का कभी था उसके, सो रहा नहीं। अब ग़नी अकेला था। लोग उसे ग़नी चाचा पुकारते थे और फ़ादर जेरी अक्सर फ़ुर्सत का वक़्त ग़नी चाचा के क़िस्से सुनते गुज़ारते थे। दोनों की ख़ूब पटती थी। दोनों ख़ुदा परस्त थे। ग़नी पांचों वक़्त की नमाज़ पढ़कर ही रहता था और फ़ादर तो ख़ैर गिरजे के रखवाले और इशू के सेवक थे ही। ग़नी चाचा कुछ दिनों से बीमार रहने लगे थे। इधर उधर के डाक्टरों को दिखाया लेकिन कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ा तो फ़ादर जेरी उनकी सेवा-देखभाल और आराम के लिए उन्हें गिरजे के पास अपने कमरे में ले गए। ग़नी चाचा की इस तरह देख-भाल की गई कि वे ख़ुशी से छलछला गए और उन्होने अपनी टाल और उस आहते की पूरी ज़मीन फ़ादर जेरी के नाम कर दी। फ़ादर जेरी ने उस टाल की लकड़ी बेच कर उसी पैसे से उस जगह एक छोटा सा स्कूल खोल दिया जिसमें आसपास के तमाम बच्चे पढ़ने आने लगे। इस स्कूल

के प्रिंसिपल फ़ादर जेरी थे। टीचर दो एक शहर के वो पढ़े लिखे नौजवान थे जिन्हें कोई नौकरी या काम नहीं मिल पा रहा था और जो लोगों का भला करने का शौक़ रखते थे। मार्गरीटा भी इस स्कूल में टीचर लग गयी और वह बच्चों को इसुमसीह के गाने सिखाने लगी।

याने पंद्रह बीस साल के अंदर फ़ादर जेरी ने उस टूटी मढ़िया से गिरजे, स्कूल और अपनी जमाई धाक का सफ़र इस तरह तय किया कि अनिकेत सरदेसाई के लिए मामला बर्दाश्त से बाहर हो गया।

अनिकेत सरदेसाई पच्चीस साल का वो नौजवान था जो अपने कान तक लाठी लिए, खाकी आधी पैंट पहने, टोपी लगाये आर. एस.एस. की शाखा चलाता था- उसी टीले के नीचे वाले मैदान में। उसे फ़ादर जेरी का इस तरह फैलाव पसंद नहीं आया। हालाँकि ज़माना वह था कि सरकारी अफ़सरान और राजनेता दोनों आर.एस.एस. से क़तई इत्तेफ़ाक़ नहीं रखना चाहते थे लेकिन सरदेसाई पत्रकार भी था। वह अपनी इसी पहचान को ले कर झाँसी कलक्टर से मिला और उसने उनसे फ़ादर जेरी के लोगों को भड़काने और हिन्दुओं को ईसाई धर्म इख़्तियार करने पर मजबूर करने की शिकायत की। अख़बारों में भी मामला उछला तो बात दूर दूर तक पहुँच गयी।

इससे दो बातें हुईं। एक तो ये कि कलक्टर बग़ैर अपने से ऊपर वालों से पूछे कोई फ़ैसला नहीं करना चाहता था और दूसरी कि ये ख़बर अमरीका तक पहुंची और फ़ादर जेरी के पास ह्यूमन राइट्स कमीशन से एक इनाम और एक अनुदान की रक़म आ गयी। फ़ादर जेरी को इनाम मिला ये बात शहर भर में फैल गयी और इस बाबत एक जश्न मनाने का इंतजाम किया जाने लगा। उस जश्न में कलक्टर को ख़ास मेहमान की तरह न्यौता दिया गया और इत्तेफ़ाक़ से सरदेसाई को भी पत्रकार के बतौर बुलाया गया।

हुआ वो ही जो अक्सर होता है। कलक्टर साहेब आई.ए.एस. ठहरे मौक़ा देख कर बात करना जानते थे सो उन्होंने फ़ादर की तारीफ की और यह भी कह दिया कि वे सरकारी तौर पर फ़ादर की हर तरह मदद करने को तैयार हैं। इसका फ़ायदा उठाया मार्गरीटा ने। उसने माइक पर आ कर सीधी दरख़्वास्त की कि अगर सरकार टीले के नीचे वाली ज़मीन गिरजा-घर को दे दे तो वहां वे एक अस्पताल खोल देंगे। कलक्टर को एक तीर से कई शिकार दिखाई दिए उसने सोचा इससे आर.एस.एस. की शाखा बंद हो जाएगी तो सरकार खुश हो जाएगी, उसका नाम अमरीका तक पहुँच जायेगा और शहर वालों में वह हीरो बन जायेगा। कलक्टर हीरो क्यों न बनता ! उसने फौरन वो पांच एकड़ बंजर ज़मीन मिशन अस्पताल बनाने के लिए मुहैया करवाने

का वादा कर दिया। तालियां बजीं, शाम को पार्टियां,नाच-गाने हुए, अख़बारों में ख़बरें छपीं और रात को गिरजा घर मोमबत्तियों और ईशू के गुण-गान से गूंजने लगा। मिशन अस्पताल की शुरुआत हो गयी और शाखा को कोई और जगह ढूंढने की ज़रुरत पड़ने लगी।

नाम था ही। पैसे की कमी न पड़ी। एक चालीस-पैंतालीस साला डाक्टर जो हिंदुस्तान की ग़रीबी और भुखमरी की ख़बरों से पहले ही मुतासिर बैठा था अमरीका से अपना देश और सब कुछ छोड़ छाड़ कर इस अस्पताल को चलाने के लिए आ गया।

अस्पताल के शुरू होने में तीन साल लग गए। लेकिन शुरू हुआ तो लोग शहर के सिविल अस्पताल में जाने से यहाँ आना ज़्यादा बेहतर समझने लगे। यहाँ पैसे जरूर लगते थे लेकिन इलाज बाक़ायदा होता था।

टीले पर की छोटी मढ़िया से अनाथालय, अनाथालय से स्कूल और स्कूल से फिर इस अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अस्पताल के पूरे होते होते तक़रीबन तीस साल का सफ़र तय करने के बाद फ़ादर जेरी में दो ही तब्दीलियां आई थीं। एक कि उनके मिज़ाज में इत्मीनान और शांति सी आ गयी थी और दूसरे कि उनके बाल पूरी तरह सफ़ेद हो गए थे। और सफ़ेद बालों में फ़ादर जेरी ज़्यादा आकर्षक और मर्दाना लगने लगे थे।

एक दिन। शाम का वक़्त था। दिसंबर का महीना। झाँसी की पथरीली जमीन सर्दी से ठिरठुरा रही थी। चर्च में शाम की प्रार्थना हो चुकी थी। फ़ादर जेरी अपने कमरे में बैठे गर्म चाय की चुस्की ले रहे थे कि मार्गरीटा दाख़िल हुई।

-''फ़ादर.....! फ़ादर......!''

-''यस मार्गरीटा !....कम...कम....!''

मार्गरीटा एक निहायत ही ख़ूबसूरत काले घेर वाले फ्री फ़्लो स्कर्ट और क्रीम टॉप में किसी परी की तरह लगती हुई फ़ादर के सामने खड़ी हो कर घूम गयी।

-''कैसी लगती हूँ !?''

ऊंचा क़द ,लम्बी टाँगें, गोल चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें, भरा भरा बदन, गोरा रंग और सुनहरे लम्बे बाल!

-''ऊँ...!? बोलो, कैसी लगती हूँ?!''

फ़ादर कुर्सी से खड़े हो गए, ''एक्सलेंट....एक्सलेंट...मार्गरीटा! यु लुक वंडरफुल!'' उन्होंने मार्गरीटा को दोनों कन्धों से छू कर उसे रॉकंग चेयर पर बैठा दिया और सामने खड़े हो कर उसके माथे को चूमा।

-''फ़ादर! लेटस गेट मैंरिड, फ़ादर!

-''मार्गरीटा!....फिर वो ही मज़ाक़!..और आज तो तुम इतनी ख़ूबसूरत लग रही हो की कोई भी सुन लेगा तो सच मान लेगा!''

-''तो क्या हुआ!?....सच तो है! आई वांट टू गैट मैंरिड टू यू....आई लाइक यू....लाइक टू लिव विद यू......!''

-''चुप बदमाश! तू मरवाएगी मुझे!''

मार्गरीटा बेसाख़्ता हंस पड़ी, अपने बालों को पीछे झटक कर. फिर बोली- ''अच्छा फ़ादर.....बिटवीन यू एंड मी!....ऐं !...तुम्हारा कभी दिल नहीं किया शादी करने का....!? किसी जवान ख़ूबसूरत लड़की से जो तुम्हें प्यार कर सके!?''

फ़ादर आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गए और जैसे ज़बरदस्ती कुछ करना था इसलिए खिड़की से पर्दा हटा कर बाहर का अँधेरा ताकने लगे।

-''बोलो न फ़ादर!''

-''वैल, ये सब बेकार की बातें हैं मार्गरीटा....!''

मार्गरीटा ने फ़ादर की बांह पकड़ ली, ''बोलो न !''

हज़ारों क़समों के बाद फ़ादर ने बताया कि कभी उनकी भी शादी हुई थी और उनकी बीवी कुछ इस तरह बद-दिमाग़ थी कि उन्हें घर छोड़ कर निकल आना पड़ा। दो दिन भटकने के बाद वे आकर इस टीले वाली मढ़िया पर रुके और फिर उनकी ज़िन्दगी के मानी बदल गए।

फ़ादर की आँखों से ज़्यादा शायद दिल भारी हो गया था जो दिखाई नहीं दे सकता था। मार्गरीटा रो रही थी और शाम रात में बदल चुकी थी। मार्गरीटा ने बैठे बैठे ही हाथ बढ़ा कर फ़ादर का हाथ पकड़ कर उन्हें अपनत्व का 'टच' देने की कोशिश की लेकिन उसे रॉकिंग चेयर की आदत नहीं थी, वह कुछ ज़्यादा ही झुकी, कुर्सी में सम्भली नहीं, बग़ल से सर के बल पीछे लुढ़क गयी। लुढ़की तो उसकी लॉन्ग फ़्लोइंग स्कर्ट पूरी तरह पीछे हो गयी-मार्गरीटा को कमर तक उघारती हुई। फ़ादर सँभालने गए तो एक सेकंड मार्गरीटा की गोरी भरी भरी जांघें, बंधे घुटने, सुडौल पिंडलियाँ, गुदाज़ बदन, सुतवां खाल और खाल पर मन ख़राब कर देने वाले बारीक बारीक रोएँ देखे तो देखते रह गए। मार्गरीटा ने भी फ़ादर को इस तरह देखते हुए देखा। फिर शरमाई, उठी और चली गयी। फ़ादर ने फ़ौरन दरवाज़ा बंद किया और बंद दरवाज़े से पीठ चिपका कर आसमानी ख़ुदा से मौन प्रार्थना की, सीने पर क्रॉस बनाया और वापस पर्दा हटाकर खिड़की के बाहर का ठिठुरता अँधेरा ताकने लगे।

अब जब फ़ादर को अपनी पत्नी की याद आई तो उसके झगड़े और

बददिमाग़ी नहीं उसकी पहली मुलाक़ात और उससे मोहब्बत की रातों की याद आई। अच्छी बुरी यादें तो हर एक की होती हैं और अपनी अपनी ख़ल्वतों में अपना अपना रोना भी हर एक रोता है। फ़ादर जेरी भी रात भर रोये-ख़ुशी के भी आंसू और दुःख के भी! एक अजीब रोना जो लम्बी थकान के बाद निकलता है।

पांच दिन बाद क्रिसमस था। चर्च में तैयारियां ज़ोर शोर पर थीं। अस्पताल दुल्हन की तरह सजा था। स्कूल की छुट्टियां चल रही थीं। फ़ादर ने शाम के मास के बाद मार्गरीटा और हेनरी की शादी की बात कह डाली। ताज्जुब किसी को नहीं हुआ लेकिन मार्गरीटा ने कमरे वाली घटना से इसे दो और दो चार कर लिया और वहां से भाग गयी।

रात के क़रीब दस बज चुके थे। फ़ादर अपने कमरे में जाने वाले थे कि डाइनिंग हॉल से निकलते साथ मार्गरीटा मिल गयी।

-''अरे......तुम अब तक यहाँ हो?''

-''आप भी तो हैं !''

-''हाँ....आज ज़रा देर हो गयी खाना खाने में.....क्या कर रही हो?''

-''बस यूँ ही......!''

-''हूँ....''

-''चलिए थोड़ी दूर टहलने चलते हैं.....उस तरफ़...!''

-''इतनी रात को !''

-''तो क्या हुआ.....न वहां शेर आता है न चोर उचक्के!''

-''एंड दि लार्ड इज़ विथ अस!'' फ़ादर ने जोश में ताली बजा कर कहा।

-''एंड दि लार्ड इज़ विथ अस!'' मार्गरीटा ने उसी जोश से दोहराया।

-''चलो.....लेकिन आज मैं बहुत थक गया हूँ मार्गरीटा......ज़्यादा दूर नहीं जाऊँगा!''

-''मैं एक काम करती हूँ, एक रोलर वाला बेड बनवाती हूँ। आप उसमें लेट जाया कीजिये और मैं आपको 'टो' कर के ले जाया करूंगी!'' मार्गरीटा हंस दी।

फ़ादर भी हंस पड़े। बोले, ''बदमाश!''

थोड़ी देर ख़ामोश चलने के बाद मार्गरीटा ने पूछा-'' फ़ादर!?''

-''यस मार्गरीटा!''

-''ये प्यार क्या होता है?''

-''ये कैसा सवाल है?''

-''नहीं बोलो, ये लव क्या चीज़ है?''

-''लव, प्यार ये सब क़ुदरती बातें हैं। गॉड का वरदान है। पवित्र प्यार गॉड के बराबर पवित्र है।''

-''ये पवित्र और अपवित्र का फ़ैसला कौन करता है?''

-''इसमें फ़ैसला क्या......ये तो जानी बूझी बातें हैं न!''

-''जो जाना बूझा है वो तो सोसाइटी के बनाये हुए उसूल हैं। ताकि सोसाइटी जैसी है वैसी चलती रहे।''

-''तो सोसाइटी भी तो ख़ुदा ने बनायी है न!''

-''न! इंसान ने बनायी है! सोसाइटी तो इंसान ने बनायी है।''

-''तुम्हारा असल सवाल क्या है मार्गरीटा!''

-''आपने मेरी शादी हेनरी से करने की बात कर दी।''

-''तो!?''

-''..........''

-''तुम्हें अब शादी कर लेनी चाहिए.......और हेनरी अच्छा लड़का है, तुम्हें बहुत चाहता है।''

-''वो मुझे चाहता है और अगर वो मुझसे शादी कर लेगा तो उसका प्यार पवित्र हो जायगा लेकिन मैं उसे नहीं चाहती और अगर मैं ने उससे शादी कर ली तो मेरा प्यार अपवित्र हो जायेगा क्योंकि प्यार पवित्र या अपवित्र अपनी आत्मा के स्वीकारने या न स्वीकारने से होता है। और ये आप ही ने हमें सिखाया है।''

एक बड़ा सा खँडहर था जहाँ तक ये लोग आ चुके थे। फ़ादर चलते चलते रुक गए। पत्थर की एक टूटी चौखट के सहारे वे पत्थर की ही दहलीज़ पर बैठ गए. बोले-'' वो तो सिखाया है मार्गरीटा लेकिन धर्म की हर बात इस दुनिया में लागू नहीं हो सकती। कुछ दुनियादारी भी होती है।''

फिर एक चुप्पी के बाद मार्गरीटा बोली, ''फ़ादर!''

-''बोलो मार्गरीटा!''

-''आई लव यू!''

-''व्हाट आर यू सेइंग!''

-''मैं ने सिर्फ़ तुम्हें प्यार किया है....सिर्फ़ तुम्हें.....और किसी को नहीं.... और मैं आपने पवित्र प्यार को अपवित्र करने को तैयार नहीं हूँ।''

-''मैं तुम्हारा फ़ादर हूँ!''

-''तुम पादरी हो.....मेरे पिता नहीं हो।''

-''मैं इतना बूढा हो गया हूँ.....कहाँ तुम जवान, ख़ूबसूरत और कहाँ मैं बेकार

बेचारा!''

-''आप ऐसे बूढ़े भी नहीं हुए......और वैसे भी ये सब दुनिया के बनाये हुए फ़िज़ूल के क़ानून हैं।

-''तुम पागल हो गयी हो.....अरे......अरे.....।

और फ़ादर का मुंह मार्गरीटा ने आपने होठों से बंद कर दिया। उसकी बाहें फ़ादर के इर्द गिर्द कस गयीं।

हिमालय में कितनी भी बर्फ़ क्यों न जमी हो भीतर धधकता हुआ लावा ही है ! फ़ादर की नसें फूलने लगीं, ख़ून गर्म होने लगा। लेकिन उन्होंने किसी तरह कहा, ''अरे....अरे....ये....'' मार्गरीटा ने फिर उनका मुंह बंद कर दिया।

फ़ादर ने फिर कहा, ''.....छोड़ो!......कोई देख लेगा! '' पकड़ और कस गयी.

-''.......कोई देख लेगा.......''

-''...अं ..ऽ...ऽ......!'' आवाज़ में आनंद की कराह थी। आँखें बंद थीं। हाथों में बेसब्र तलाश थी और जिस्म जिस्म से कुश्ती पर आमादा था।

गर्म सांसें तेज़ आवाज़ में बदलने लगीं थीं और हाथ हाथों की तलाश के साथ शामिल होने लगे थे। लेकिन बैठी आवाज़ में धीरे से-जैसे रस्मन-आवाज़ ने एक बार फिर कहा- ''कोई देख लेगा!''

-''यहाँ शहर से दूर इस खंडहर में कौन देखेगा!?''

तेज़ अँधेरा, तेज़ ठण्ड, तेज़ हरारत और उतनी ही तेज़ तेज़ तन-मन की लपलपाती लौएं जन्म जन्मान्तर के हिसाब पूरे कर लेने पर आमादा थे!

लेकिन उसके बाद की कहानी ये है कि फ़ादर जेरी और मार्गरीटा दोनों का ही उस रात के बाद कहीं पता नहीं चला। लोगों ने समझा कि उस रात जब वे टहलने गए थे तो शायद उन्हें कोई जंगली जानवर उठा ले गया होगा। इसलिए उसी खँडहर के पास आज भी एक शिला लेख लगा है- 'एक पवित्र-हृदय-स्थलीः फ़ादर जेरी/मार्गरीटा- दो पाक इंसान जो आज भी यहीं कहीं हैं!'

ऐ मेरे प्यारे वतन

बम्बई का एक उप नगर है अँधेरी और अँधेरी में एक कॉलोनी है वृन्दावन सोसाइटी। वृन्दावन सोसाइटी में सब प्रकार की सुविधाएँ हैं। दूध, तरकारी, होटल, ख़ाना, पसरट्ट, नाई, धोबी-सब! नहीं हैं तो बस दो चीजें एक बेकरी और दूसरी अंडे बेचने वाला। इन दोनों चीजों की कसर पूरी करता था इदरीस। साइकिल पर आता था- दिन में दो बार-सुबह और शाम-अपनी साइकिल की घंटी लगातार टनटनाता हुआ। सोसाइटी में चार मंज़िला इमारतें थीं, ऊपर तक उसकी घंटी सुनाई देती थी। जो रोज़ के बंधे ग्राहक थे उनके यहाँ तो इदरीस चौथी मंज़िल तक चढ़कर अंडे और पाओ दे आता था। जो बंधे नहीं थे, कभी कभी के ग्राहक़ थे, वे या तो अपने फ़्लैटों से नीचे उतर कर जो चाहिए होता ले लेते थे या इदरीस को सीढ़ियों पर रोक कर ख़रीदारी कर लेते थे।

बम्बई में ये अंडे वाले सिर्फ़ अंडे वाले नहीं होते। ये पान वालों की तरह आदत होते हैं। यानी अगर रोज़ वाला न आए तो लोग कहते हैं 'अपना अंडे वाला आएगा तो ले लेंगे'। इदरीस अपने खुलूस की वजह से कइयों का 'अपना अंडे वाला' था। हमारे यहाँ भी इदरीस ही अंडे दे जाता था। रोज़ाना पिछले तीन सालों से। जाड़ा, गर्मी, बरसात-मौसम कोई भी हो। सिवाय साल में एक महीने के जब वो 'वतन' चला जाता था।

इदरीस लखनऊ के पास कन्नौज के किसी क़स्बे का था। यू.पी. के ही तीन चार लोगों के साथ मिलकर वो पास ही की बस्ती में एक 'खोली' में रहता था। सुबह फ़ज्र की अज़ान के बाद ही निकल लेता था। पास की शब्बीर मियां की बेकरी से ताजे पाओ, बन, ब्रून, अंडे ख़रीदता था। उन्हें साइकिल के दोनों तरफ़ थैलों में भर भरकर लटकता था। फिर अंडे की तमाम 'ट्रे' एक के ऊपर एक जमाकर साइकिल के पीछे वाले कैरियर पर बाँधता था। उसके बाद पैदल सोसाइटी-सोसाइटी जाकर अपना माल बेचता था। वह हमेशा सफ़ेद चौड़ा पायजामा और लम्बी बाँहों वाली

क़मीज़ पहनता था-जिसकी बाहें मोड़ कर वो कोहनी के ऊपर तक कर लेता था। उसके कपड़े निहायत सफ़ेद और साफ़ सुथरे होते थे। कभी किसी ने उसे किसी भी बात की शिकायत करते नहीं सुना। हाँ! उसे वतन की याद अलबत्ता हमेशा सताती रहती थी, घर वालों की निहायत परवाह रहती थी और इन बातों का इज़हार वो अक्सर किया करता था। इदरीस क़रीब अट्ठाइस-तीस साल का रहा होगा। वतन में उसका एक छोटा सा घर था जिसमें उसकी नौजवान पत्नी, एक नौनिहाल बच्चा और एक बूढ़े मामू रहते थे। इदरीस का दिल उन्हीं लोगों में बसा रहता था।

-'तो तुम यहाँ पड़े क्यों हो? कन्नौज बड़ा शहर है। जरूर वहां ऐसे ज़रिये होंगे जिनसे तुम्हें इतना तो मिल ही जायेगा कि तुम ठीक ठाक गुज़ारा कर सको।' एक दफा मेंने उससे कहा था। हालाँकि ये बात मैंने कही उससे थी लेकिन शायद यह बात मैं ने कहीं अपने आपसे भी कही थी क्योंकि मैं भी यू.पी. का था और इतने सालों बम्बई में रहने के बाद भी मेरा दिल-दिमाग-रुह सब 'वतन' की याद में रहते थे। व्यथा ये थी कि मैं जा नहीं सकता था। काम सारा यहीं था और 'वतन' का घर भाइयों ने बेच डाला था। सो वहां कोई ठिकाना नहीं बचा था।

-''बात तो आपकी ठीक है,'' इदरीस बोला, ''रोज़ी के साधन हों तो घर कौन छोड़ता है। लेकिन वहां कमाई की इतनी गुंजाईश नहीं है।''

-''और यहाँ है?......ख़र्चे देखो यहाँ के!''

-''साहेब ख़र्चे निकाल के भी चार-पांच हज़ार घर भेज लेते हैं। यहाँ तो किसी तरह पेट काट के गुज़ारा कर लेते हैं.... और किस लिए....इसलिए कि घर वाले खुश रहें, ठीक से रहें.......वरना यहाँ क्या है अपना!'' इदरीस ने अंडे गिनकर बर्तन में रखे, पैसे लिए फिर चलते चलते बोला, ''अब मक्खी तो साहेब वहीं जाएगी न जहाँ गुड़ होगा!........नहीं तो हियाँ काहे को झख मारते फिरते।''

रमज़ान का महीना तक़रीबन आधे से ज़्यादा हो चुका था। एक दिन शाम के वक़्त इदरीस अपने साथ एक और आदमी को लाया।

-''साहेब....हम जा रहे हैं मुलुक...ईद आ रही है....अब कल से ये आएंगे आपको सामान देने।''

-''ईद में तो अभी वक़्त है!''

-''है तो पर दो चार दिन हमें सामान-ओमान ख़रीदने को चाहिए फिर दो दिन लगेंगे सफ़र में। जब पहुंचेंगे तब ईद बस आई ही समझो।''

-''रोज़े रखे हो?''

-''बिलकुल! पूरे के पूरे करता हूँ...हर साल....अल्लाह हम पर, हमारे परिवार

पर रहम करेंगे!''

-''वापसी कब है?''

-''महीना भर तो लगेगा साहेब......अब इतनी दूर गए तो जल्दी क्या आना।''

लेकिन इदरीस पंद्रह दिनों मैं ही वापस आ गया।

-''अरे तुम तो कहते थे लम्बे रहोगे?!'' मेंने पूछा।

-''हमारे साथ वो हादिसा गुज़रा कि अब क्या बताएं......!''

-''क्या हुआ?''

-''हमारे यहाँ डाका पड़ गया।''

-''डाका....?!''

-''अरे उधर के लोग बड़ा जलते हैं। समझते हैं कि ये बम्बई में हैं बड़ा माल कमाए हैं...चलो लूट लो साले को। अब किसी को क्या बताएं कि यहाँ क्या क्या तो भुगतते हैं और क्या तो कमा लेते हैं।''

-''हुआ क्या?''

-''ईद के बस दो दिन बचे थे जब हम पहुंचे। घर पहुंचे ही थे, सामान आँगन में रखा ही था कि बाहर से पुकारे गए। सुल्तान था-हमारा दोस्त-अंदर आया। उसने दो सन्दूक और एक बैग देखा तो बोला,'' ''अरे भाई वाह!...पूरा बम्बई उठा लाये क्या?'' मेंने कहा अभी बस चला ही आ रहा हूँ तुम्हें इत्ती जल्दी ख़बर भी लग गयी! हमने कहा बैठो चाय-ओये पियो....बोला नहीं, कुछ काम है चलो ज़रा बाज़ार तक हो आएं। हमारी जोरू ने कहा भी कि ऐसा क्या काम है....यहीं कह दें.....दो दिन के सफ़र से आदमी आया है ज़रा आराम तो करने देओ। लेकिन सुल्तान बचपन का साथी रहा था, जाना पड़ा।

काम क्या था ये तो पता नहीं चला बस घूमते रहे इधर उधर। फिर एक दुकान में बैठ कर चाय-ओये पी इतने में वहां सुल्तान का कोई दोस्त आ गया। हमतो उसे जानते नहीं थे। कभी देखा ही नहीं था। थोड़ा नाटा सा था, उभरी उभरी सी आँखें और बोलता यूँ था कि ज़रा आवाज़ चढ़ाये तो उसकी खांसी निकल पड़ती थी। फ़य्याज़ या ऐसा ही कुछ नाम बताया सुल्तान ने। जब वो चला गया तो सुल्तान ने कहा, 'यार बड़ी मुश्किल में हूँ....ईद का त्यौहार है और जेब में कौड़ी नहीं हैं. ..मुझे पांच सौ रूपए दोगे?' हमने कहा-पांच सौ तो हमारे पास नहीं हैं,जो पैसे थे उसमें तो हम घर के लिए सामान ले आये. बाक़ी बचे सो किराये में लग गए...हाँ पच्चीस-पचास की बात हो तो कहो....

सुल्तान मेरी पीठ पर हाथ मारते हुए मुस्कुराया, बोला 'कोई बात नहीं दोस्त,

अल्ला देगा!'

बात गयी आई हो गयी।

बीबी इतने दिनों से चूड़ियों की ज़िद किये थी सो इस बार मैं उसके लिए दो सोने की पतली सी चूड़ियाँ ले गया था। वो ख़ुश हो गयी। उसकी ख़ुशी देख कर मेरी आँखों में आंसू आ गए. उस बेचारी को आज तक कुछ दिया ही नहीं था मैंने। बच्चे के लिए कुछ कपड़े थे और मामू के लिए कुरता। वो दिन गुज़र गया। दूसरे दिन ईद की छोटी मोटी ख़रीदारी करनी थी। मामू कई बार लिख चुके थे कि उनकी आँखों में बड़ी तकलीफ़ है। दिखाई ही नहीं देता ठीक से। तो तय हुआ कि ईद हो जाये फिर मामू की आँखें डाक्टर को दिखाई जाएँगी।

उस शाम ईशा की नमाज़ के बाद तराबियाँ करके हम जब घर वापस आये तब रात काफ़ी हो चुकी थी। सो आये और सो गए। चाँद दिख चुका था। दूसरे दिन ईद थी।

रात के कोई एक-दो बजे का वक़्त रहा होगा-शायद और भी रहा हो- कि अचानक नींद खुली। देखा कि हमारी चारपाई के चारों तरफ़ दो तीन लोग खड़े हैं- बंदूक ताने! एक दुनाली हमारी गर्दन पर एक बीवी के। मामू को किसी ने गर्दन से पकड़ रखा था। यक़ीन तो नहीं आया। लगा सब ख़्वाब है। ऐसा सुना था, फ़िल्मों में देखा भी था मगर ये तो सचमुच और वो भी हम लोगों के साथ! बंदूक वाले अपने मुंह पर काला कपड़ा और सर पर काला साफ़ा बांधे थे। पहचानना मुश्किल था। हमारी नींद खुली तो जैसे ही उठने को हुआ कि दोनाली हमारी गर्दन पर आदमी ने गड़ा कर कहा, ''उठो मत।''

हम ने पूछा, ''कौन हो तुम लोग?''

-''बोलो मत''

-''क्या चाहते हो?''

उधर से उसने अपने साथी को आवाज़ दी, ''बाँध लो सब कुछ।''

''इसमें ताला बंद है'' ''वहां से आवाज़ आई।

बंदूक वाले ने हमारी गर्दन पर नली गड़ा कर पूछा, ''चाभी कहाँ है?'' हमने कहा, ''हमारे पास है....उठें तो दें'' वो बोला ''आवाज़ निकली तो गोली मार देंगे।''

हम उठे। बंदूक़ गर्दन पर बराबर अड़ी रही। हमने चाभी दी। जिसको चाभी दी उसकी आँखों पर इत्तेफ़ाक़ से हमारी नज़र पड़ी। उसने भी हमें देखा। हमें लगा कि ''कहीं इसे हमने देखा है। हमसे रहा नहीं गया। हम बोले,'' तुम्हारी सूरत जानी-पहचानी है। ''वो तैश में लेकिन दबी जबान में बोला,'' चुप! बोले तो गोली मार देंगे''

''लेकिन.....''

''चुप !'' वो दबी चीख़ जैसी आवाज़ से चिल्लाया और उसके एक अजीब सी खांसी नकल गयी। जो कि हमने कहीं सुनी थी लेकिन याद नहीं आ रही थी के कहाँ। बहरहाल, लूट-पाट के सब ले गए और जाते जाते कह गए कि अगर पुलिस को इत्तेलाह की तो समझ लो ख़ैर नहीं।''

अब हम तो बम्बई चले आते हैं। वहां रहते हैं जोरू और मामू तो उनको कुछ हो जाये इस से तो हमने सोचा ख़ामोश ही रहो, चलो जो गया सो गया। जो जिसमें सो रहा था बस वो ही बचा।

ईद तो फिर समझिए कि बस गयी....क्या रहा?! लेकिन खटक ये रहा था कि वो आँखें जानी पहचानी सी कैसे लगीं थीं। हो न हो कहीं देखा है। सोचते रहे कहाँ देखा है, कहाँ देखा है। फिर ख़्याल आया कि हो न हो ये वो ही आदमी था जो सुल्तान के साथ बाज़ार में उस दिन मिला था।

सुल्तान से मिले। बोला, ''कौन यार?'' हमने कहा वो ही जिससे उस दिन बाज़ार में तुमने मिलवाया था, जिसने अपने साथ चाय पी थी। ''सुल्तान बहुत सोच के बोला,'' ''अच्छा...अच्छा !...वो....अब क्या मालूम कहाँ होगा साला....वो तो कानपूर में रहता है। आ जाता है कभी कभी।'' हमे तो बात लग गयी थी। हम कानपूर गए। वहां देखा कि जो पता सुल्तान ने दिया था उस पर तो कोई और ही रहता था हम वापस आ गए।

-''तो तुम्हें लगता है,'' मैंने पूछा, ''सुल्तान ने तुम्हारे यहाँ डाका डलवाया?''

-''अब साहेब सुल्तान बचपन का साथी रहा है । साथ खेले खाए हैं तो यक़ीन तो नहीं आता लेकिन वो आदमी जिससे उसने उस रोज़ बाज़ार में मिलवाया था हो न हो था वो ही उस रात..वैसी ही उसकी उभरी उभरी आँखें और जब उसने दबी आवाज़ में कड़क के हमसे 'चुप' कहा तो कहते ही वो खांसा और वैसी ही खांसी जैसी उस दिन उस आदमी ने खांसी थी।''

-''शायद,'' मैं ने अंदेशा जताते हुए कहा, ''उस शख़्स को मालूम पड़ा हो कि तुम बम्बई से आये हो सुल्तान ने बताया हो कि तुम बड़े पैसे वाले हो और ये सुनकर उस अकेले ने ही ये काम किया हो सुल्तान का इसमें कोई हाथ नहो।''

-''हम भी यही समझते ....लेकिन कल तो आप बड़े अपनापे से मिले,चाय पी, नाश्ता किया,गले लगे और फिर ये के हमें मालूम नहीं कि वो आदमी कौन है, कानपूर में रहता है, पता नहीं है और फिर जब पता दिया तो ग़लत....तो क्या अंदाज़ा लगाये कोई! ज़ाहिर तौर पर कुछ कह नहीं सकते लेकिन शक तो होता ही है।''

-''यू.पी. में तो आस-पड़ौस मदद गार होता था।'' मैंने कहा।

-''होता था-अ-आ......! अब तो लूट पाट आम है। बताइये हम कौन से धन्ना सेठ हैं, हमारे ही घर में डाका पड़ गया, तो जो पैसे वाले हैं उनकी तो बात ही क्या होगी?''

-''तो जल्दी क्यों आ गए? जो होना था वो तो हो ही गया। थोड़े दिन और रहते तो घर वालों को भी राहत होती।

-''अब साहेब सोचा है कि वहां की ज़मीन/मकान बेच-बाच के हियाईं कहीं दूर सही छोटी सी जगह लेके रहेंगे। यहाँ कम से कम लूट-पाट डाका-वाका का डर तो नहीं है। क़ानून व्यवस्था तो बराबर है यहाँ कम से कम सुकून से तो रहेंगे।''

-''चोरियां तो यहाँ भी होती हैं।'' मैंने कहा।

-''बंदूक की नोक पे बीच सड़क तो कोई नहीं लूट लेता। रात-बिरात बहन-बेटी की सुरक्षा तो है। दंगा फसाद लफ़ंगई तो नहीं है। यहाँ किसी को किसी की पड़ी ही नहीं है। जलन का सवालय नहीं उठता।''

-''तो मकान-ज़मीन बेचने की क्या ज़रुरत है.....ज़मीन बटिया से दे दो और मकान ताला बंद करके रखो या किराये पर दे दो।''

-''अरे वहां ज़मीनो कोई हथिया लेगा और किराये दार कभी निकलेगा नहीं। और अगर ताला बंदकर के आएं तो कोई घुस के कब्जा कर लेगा, दो पैसाओ नहीं मिलेगा। फिर यहाँ से कौन जायेगा कोर्ट कचहरी करने? ज़्यादा करेंगे तो कोई हमें गोली मार देगा। अब जान है तो जहान है.......यहीं ठीक है.....यहीं बस जाएंगे!''

फिर इदरीस ने एक कमरा किराये पर लिया और कुछ दिनों के लिए वापस गांव चला गया। मकान-ज़मीन का सौदा करने, घर वालों को बम्बई लिवा लाने के लिए।

गाँव में जब लोगों को मालूम हुआ कि इदरीस सब बेच-बाच कर बम्बई बसना चाहता है तो क्या ज़मीन और क्या मकान दोनों के औने पौने दाम लगने लगे। सब जानते थे कि ये तो जल्दी में हैं जितना मिलेगा ले लेंगे। इदरीस ने सोचा जो मिला वो मिला, अल्ला चाहेगा और कमा लेंगे लेकिन यहाँ की चोरी-डकैती-बदमाशी से तो बचेंगे। जो अपने परिवार की परवरिश करता है वो उसकी सुरक्षा भी चाहता है। इस सब में उसे दो महीने लग गए। मकान वो ठीक कर के गया था। वापस आकर घर वालों को उसने वहां ठहराया। दो दिन सामान-वामान लगाया, आराम किया और तीसरे दिन से फिर फ़ज्र की आज़ान के बाद शब्बीर की बेकरी पर और फिर साइकिल लेकर टन्टनाता हुआ चल दिया सोसाइटी सोसाइटी। वक़्त ठीक-ठाक कटने लगा।

बम्बई का माहौल पहले कभी मलबरियों के लिए ख़तरनाक हुआ करता था फिर ज़माना बदला और न जाने कब यहाँ यू.पी./बिहार वालों के लिए माहौल गड़बड़ा गया। वही शहर जिसमें दूध वाले, पान वाले, अंडे वाले, चाभी वाले, सब्ज़ी वाले, बढ़ई (सुतार)....तक़रीबन सभी यू.पी के थे और सब बड़े दोस्ताना अंदाज़ के सब के चहेते थे वो ही अब 'साले भैय्ये' हो गए और आँख की किरकिरी बन गए। अख़बारों में 'भैय्यों' के ख़िलाफ ज़हर घोला जाने लगा। टी.वी. की बहसों में कहा जाने लगा कि ये 'भैय्ये' 'हमारे' हिस्से कि रोटी छीन कर खा रहे हैं। 'हमारे' नौकरी के अवसर कम कर रहे हैं। इनको यहाँ से भगा देना चाहिए और इनका यहाँ आना हमेशा के लिए बंद कर देना चाहिए।

फिर अचानक एक दिन बम्बई के पास वाले कल्याण स्टेशन पर कुछ इंटरव्यू देने आये 'भैय्यों' की पिटाई हो गयी और उनसे कहा गया कि वे फ़ौरन जहां से आये हैं वहीं वापस चले जाएँ, नहीं तो......!

'भैय्यों' में डर बैठ गया। लेकिन डर से क्या काम चलना था। इलेक्शन आ गए थे और जीतने का इससे बढ़िया मुद्दा इस माहौल में और कोई था नहीं इसलिए मामले को तूल पकड़ाया गया। दंगे करवा दिए गए. छोटे मोटे पथराव, इधर उधर हो- हल्ला! पुलिस हरकत में आ गयी और कुछ लुक़्क़े गिरफ़्तार कर लिए गए। बस! नेताओं का काम हो गया। उन्होने मासूम लोगों को बे-वजह गिरफ़्तार करने और 'आपले-माणुस' के साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार करने के लिए पुलिस के खिलाफ़ मोर्चा खोल दिया। कार्यकर्ताओं को मौक़ा मिल गया। दंगे पूरे फ़ॉर्म में भड़क उठे। पहले बम्बई और फिर पूरे महाराष्ट्र में। राजनीति पूरे ज़ोर पे थी। पुलिस ने मामले की अहमियत समझ कर मुंह फेर लिया। ऑटो रिक्शा वाले/टैक्सी वाले 'भैय्यों' को उनकी गाड़ियों से निकाल निकाल कर पीटा गया। उनकी बस्तियों में आग लगा दी गयी। बसें जलाई गयीं। रेलों का चक्का जाम कर दिया गया। यातायात रोक दिया गया। चारों तरफ़ कर्फ़्यू लगा दिया गया। जो बच बचा कर निकल सकते थे वो 'भैय्ये' अपने 'मुलुक' भाग गए । बाक़ी जो रोज़ कमा कर खाने वाले थे भूखों मरने की कगार पर आ गए।

पांच दिन बाद माहौल ज़रा संभला तो कर्फ़्यू में सुबह-शाम दो दो घंटों की रियायत की गयी। रोज़ाना कमाने-खाने वाले निकले। इदरीस भी निकला। दिलों में डर तो था लेकिन ये भी था के पांच दिनों से लोगों को कुछ नहीं मिला है, आज तो माल अच्छा बिकेगा। इदरीस की हिम्मत देखकर चन्द्र प्रकाश चूड़ी वाला और चाभी बनाने वाला मोहम्मद भी साथ हो लिए। तीनों फेरी वाले थे। इन तीनो को

बे-फ़िक्री के साथ निकलते देखकर तिवारी पान वाले ने भी दुकान खोल दी। तिवारी की तो बौनी ही पुलिस चौकी के हवलदार भोसले ने कर दी। बोला, ''मायला!... तम्बाकू दे मला....किती दिवस झाले माझा चुना पण संपला!'' (तम्बाकू दे मुझे। कितने दिन हुए मेरा चूना तक समाप्त हो गया)

उस दिन वाक़ई धंधा अच्छा हुआ। इदरीस का सब माल बिक गया और उसने वापसी में एक जगह रुक कर अपनी क़मीज़ की अंदर वाली जेब से निकाल कर पैसे गिने और आज की आमदनी के लिए अल्लाह का शुक्र अदा किया। इतने में चूड़ी वाला भी आ गया। बोला, 'वापस चल रहे हो?'' इदरीस ने कहा, ''हाँ !...कर्फ्यू का वक़्त शुरू हो जायगा तो घर पहुँचना मुश्किल हो जायेगा।''

-''ठीक है....चलो मैं भी चलता हूँ।''

दोनों वापसी के लिए मुड़ लिए।

मुड़े ही थे कि सामने से एक बड़ा सा गोला-जो कहीं से फेका गया था-धम्म से आकर गिरा और भड़ाम से फटा। बम बहुत 'पावर-फुल' था। चूड़ियों का बक्सा खप्पचियां खप्पचियां हो गया। चूड़ियाँ छार-छार होकर चारों तरफ़ बिखर गयीं। अण्डों की ट्रे का प्लास्टिक टुकड़े टुकड़े होकर फैल गया। इदरीस और उसकी साइकिल दोनों तक़रीबन हवा में उड़े और फिर सड़ाक से गिर पड़े। उसकी एक टांग साइकिल पर दूसरी सड़क पर, एक हाथ फैला हुआ दूसरा बग़ल में-चन्द्र प्रकाश की छाती पर! दोनों आदमियों की आँखें खुली हुयीं। दोनों के बदन लहू-लुहान। दो सेकंड बाद उनके सर के पास आकर गिरा एक मरियल सा सड़क का कुत्ता। तीनो मरे हुए!

बारूद का धुआं, वीरानी, बहता हुआ ख़ून, मौतें और एक अजीब सा गहरा सन्नाटा-सब मिल-मिला कर वहां एक अजीब सा माहौल पैदा कर रहे थे।

कुछ देर बाद जायज़ा लेने धीरे धीरे सहमता सहमता सा एक हवलदार उस तरफ़ आया। तभी उसकी जेब में रखे सैल फ़ोन की रिंग टोन बजी- ''ऐ मेरे प्यारे वतन...तुझ पे दिल कुर्बां...।'' हवालदार ने फ़ोन लिया और वो इधर उधर देखकर फ़ोन पर बात करता हुआ वापस चला गया।

'तहक़ीक़ात'

रमज़ान शेख़ बम्बई के अग्रीपाड़ा में वाई.एम्. सी. ए. के पीछे वाली बिल्डिंग के पुराने रहने वालों में से था। उसके पिता की लैमिंगटन रोड पर घड़ी दुरुस्त करने की दुकान थी। रमज़ान जब तक हायर सेकेंडरी में आया ज़माना बदल चुका था और घड़ी को लोग दुरुस्त कराना कम और नयी ख़रीदना ज़्यादा पसंद करने लगे थे। 'उदारीकरण' का ज़माना आ चुका था, 'ग्लोबलाइज़ेशन' फ़ॉर्म में था, समाज में पैसा बढ़ गया था और लोगों की इच्छाएं आकांक्षाएं बेतरह सर चढीं थीं। रमज़ान को पिता के धंधे पर बैठने में फ़्यूचर नहीं दिखा। उसने के. सी. कॉलेज से शाम वाला ट्रैवल मैंनेजमेंट का कोर्स किया, कुछ महीने मोहम्मद अली रोड पर गफ्फार भाई की इंडिया ट्रेवल्स में काम किया और फिर नौकरी पकड़ कर निकल लिया दुबई। दुबई उस ज़माने में कमाने और रहने की बेहतरीन जगह थी। वहां वह एक ट्रेवल कंपनी में एक्सिक्यूटिव लग गया। साल में दो बार-दोनों ईदों पर-वह छुट्टियों में घर आता था। नौकरी के दो साल बाद इस बार जब वह आया तो राब्या से उसका निकाह करवा दिया गया। वालिद शब्बीर शेख़ अब बुज़ुर्ग हो चुके थे और उनके लिए दुकान पर जाना, घड़ियाँ ठीक करना मुमकिन नहीं होता था। माँ रमज़ान की वक़्त से पहले बुढ़ा गयीं थीं और उनके लिए अपने घुटनों के दर्द का कारण बिस्तर से उठना भी दुश्वार हो रहा था। अग्रीपाड़ा में जिस बिल्डिंग में रहते थे उसमें फ़्लैट चौथे माले पे था-वहां से नीचे उतरने से ऊपर चढ़ना और मुश्किल था। इसलिए तय किया गया कि यह बेचकर मीरा रोड में एक फ़्लैट ले लिया जाये ताके एरिया भी ज़रा ज़्यादा मिले और चार पैसे भी बच जाएँ।

-''मीरा रोड?'' वालिद ने ऐतराज़ किया, ''वो कोई जगह है रहने की?''

-''आप सारी उम्र इधर रहे इसलिए लगता है, नईं तो देखो क्या आलीशान बिल्डिंगें बन रही हैं वहां..''

-''इससे तो मिल्लत नगर अँधेरी बेटर है!''

-''मिल्लत नगर में जो बना रहे थे वो ही भागे फिर रहे हैं.....बहुतों को तो पैसा ले के भी फ़्लैट नहीं दिए उन्होंने......लोग ढूंढ रहे हैं उनको !..ऐसी जगह क्या लेना जहाँ पैसा भी फँस जाये और फ़्लैट भी न मिले!''

-''हम दोनों बूढ़े हो रहे हैं...अकेले रहेंगे तो ऐसी जगह रहना चाहिए जहाँ आस पास कोई अपना हो!''

-''है न.....मीरा रोड में आज़म भाई हैं, ज़ीशान है, सुहेल है.....सब अपने लोग हैं....जिसमें वे हैं उसी बिल्डिंग में अपन ले लेंगे।''

मीरा रोड शिफ्टिंग के कुछ समय बाद जब राब्या और रमज़ान के लड़का हो गया और दुबई में मकानों के किराये और सड़क पर ट्रैफिक बढ़ने लगा तब तय किया गया कि बच्चे और राब्या को बंबई भेज दिया जाये रमज़ान दुबई में अकेला रहे और महीने दो महीने में चक्कर लगा जाया करे। माँ बाप भी खुश हो गए-उन्हें देखने भालने के लिए राब्या आ गयी और खेलने के लिया बच्चा मिल गया!

जैसे जैसे वक़्त गुज़रता गया और जैसे जैसे रमज़ान के बालों में सफ़ेदी चमकने लगी बच्चा-शादाब-बड़ा होने लगा। एक ही बच्चा था। दुनिया का लाड़ प्यार उस पर न्यौछावर था। रमज़ान की माँ अब तक सिधार चुकी थीं और बाप ख़ाली बैठे बालकनी में तस्बी फेरा करते थे। अब रमज़ान का आना महीने दो महीने की बजाए तीन चार महीनो में एक बार होने लगा था। कुछ इस वजह से कि आना जाना मंहगा पड़ता था और पैसा बचाना अब जरूरी था और दूसरे इसलिए कि रब्या इतनी ज़िम्मेदारी और सुगढ़ता से सब संभाल लेती थी कि सब ठीक ठाक चल रहा था। और जब सब ठीक चलता है तो वक़्त बड़ी जल्दी गुज़रता है। शादाब दसवीं में आ गया।

-''ऑल दि बेस्ट शादाब...फ़र्स्ट वर्सट की चिंता मत कर....जान खपा मत. ..जितना कर सके उतना कर....समझा न.....बस फ़ेल मत हो जाना...हं हं हं हं. ...'' रमज़ान ने इम्तेहान से पहले लड़के से बात करते हुए कहा।

-''फ़ेल?!,'' राब्या ने कांफ्रेंस कॉल पर बीच में कहा, ''ये फ़ेल वाला नईं है. ..ये फ़र्स्ट क्लास वाला है...पढ़ता कम है, समझता ज़्यादा है।''

-''ये बात हुई न!..लड़का किसका है बेगम!''

-''लड़का तो हम दोनों का है लेकन दूध मेरा है...इसलिए ज़हीन है!''

-''डैडी, डैडी..'' शादाब ने सब की बात काटते हुए कहा, ''आप कब आ रहे हो?''

-''मैं बेटा...आ जाऊंगा एक दो महीने में..''

-''मेरा रिज़ल्ट आएगा न, तब आओ.....साथ मिल कर पार्टी करेंगे... एस्सेलवर्ल्ड चलेंगे!''

-''ठीक है...गुड आईडिया...कब आएगा रिज़ल्ट?''

-''शायद अगले महीने, अप्रैल तक..हफ़्ते भर पहले बता दूंगा कि कब आने की उम्मीद है उसी लिहाज़ से छुट्टी लेना।''

-''गुड आईडिया!''

-''अच्छा और सुनो,'' राब्या ने कहा, ''ये लाड़ प्यार में शादाब के लिए कोई नया सेल वेल फ़ोन लेके मत आ जाना।''

-''क्यों?..ये सेल फ़ोन की बात बीच में कहाँ से टपक पड़ी?''

-''अरे तुम जो पिछली बार लाये थे उसका तमाम तमाशा हुआ यहाँ..''

-''क्या?''

-''यहाँ आस पास के लड़कों ने देखा तो शदाब के पीछे पड़ गए, दिखाओ दिखाओ..''

-''होता रहता है बच्चों में यार।''

-''अरे है भी तो तुम्हारा हाई एन्ड फ़ोन...मत लाया करो बच्चे के लिए इतना महंगा सामान। कोई देखते में गिरा विरा दे तो और चपत लगे।''

-''अरे अम्मी तो बात का बतंगड़ बना रही हैं, ''शादाब ने बीच में कहा, ''ऐसा कुछ नईं हुआ...उन्हें फ़ोन देखना था बस!''

-''चलो ऑल दि बेस्ट फ़ॉर योर एग्ज़ाम्स....और रब्या! वालिद की तबियत ठीक है?'' रमज़ान ने पूछा।

-''ठीक है,'' राब्या ने कहा, ''लेकिन ज़्यादातर आजकल कमरे में ही रहते हैं, बालकनी में भी कम ही बैठते हैं. खाना पीना ज़रा कम हो गया है।''

-''डाक्टर ज़करिया क्या कहते हैं?''

-''कहते क्या हैं...जब आते हैं कम्बख़्त साढ़े तीन सौ फ़ीस ले जाते हैं...ये भी नईं कि कभी तो रिआयत करें.....आते हैं डेढ़ मील से पैसे ऐसे लेते हैं जैसे कोलाबा से चले आ रहे हैं।''

-''धंधा है उनका!...और दवाई ववाई?''

-''नईं दवाई तो कुछ नईं....वोई जो पिछली बार लिखी थी....शायद विटामिन है। चैक करते हैं और कहते हैं आराम करो...मैं तो कहूँ उनको बुलाना बंद कर दें!''

-''नईं नईं....बुलाना तो पड़ेगा नईं तो अब्बू को लगेगा के हम उनकी परवा नईं करते।''

परवाह तो रमज़ान सबकी बराबर करता था और दिल भी सबका बराबर रखता था। घर और घर वाले उसके लिए पहले थे बाक़ी सब बाद में!

अप्रैल का महीना आ गया था....शादाब का नतीजा बस आने ही वाला था। दसवां पास होना हर एक की ज़िन्दगी का एक अहम् पड़ाव होता है। शादाब का भी था। और वादे के मुताबिक़ रमज़ान नतीजे से तीन रोज़ पहले ही घर आगया था।

-''चलो कहीं चलते हैं!'' रमज़ान ने सुझाया।

-''नतीजा तो आने दो!'' राब्या ने कहा।

-''आ गया नतीजा....हो गया मेरा बेटा पास!''

-''वो तो ठीक है...''

-''ठीक है तो फिर क्या परेशानी है.....तैयार हो जाओ आज दाराज़ ढाबा चलते हैं।''

-''ढाबे में तो कल गए थे डैडी.....'' शादाब ने मुंह बना कर कहा, ''आज खाना खाने नईं...''

-''तो?''

-''आज सिर्फ़ ड्राइव पे चलते हैं...मरीन ड्राइव का चककर लगाएंगे!''

-''फिर?''

-''फिर.....!?'' शादाब सोच में पड़ गया।

-''फिर,'' रमज़ान ने मदद में सुझाते हुए कहा, ''अपन बड़े मियां के कबाब और रुमाली खाएंगे और फिर नॅचुरल्स की आइस क्रीम और वर्ली सी लिंक से वापस आएंगे।''

-''हाँ!'' शादाब चुटकी बजा कर ख़ुशी से तक़रीबन चिल्लाया।

-''राब्या!..यार, एक डिब्बा ले लो अब्बू के लिए कबाब लेते आएंगे...और ओला उबेर कोई भी टैक्सी मँगा लो..मैं कपड़े बदल कर आता हूँ।''

नतीजा आने तक दो दिन यूँ ही मज़े मज़े में गुज़र गए। तीसरे दिन आया नतीजा।

-''आप तो पास हो गए यार!'' रमज़ान ने चुटकी ली।

-''फ़र्स्ट क्लास है डैडी!'' रब्या किचेन से चिल्लाई, ''इसकी कुछ मिठाई तो मुझे मिलनी चाहिए। पढ़ाई परवरिश इसकी मैं ने की.....तुम तो शेख़ों के संग गुलछर्रे मार रहे थे।''

-''अभी खिलाता हूँ तुझे मैं मिठाई,'' रमज़ान ने जा कर राब्या के मुंह के सामने अपना मुंह लड़ा कर कहा।

-“डैडी कुछ तो मेरा लिहाज़ करो!” पीछे से शादाब ने मज़ा लिया।

-“तू मुंह फेर लिया कर यार.....हं हं हं हं.....” फिर रमज़ान ने राब्या को छोड़ कर शादाब से मुख़ातिब हो कर कहा, “तू ने दादू को सलाम किया?”

-“सबसे पहले....उन्होंने मुझे दुआ दी।”

-“गुड बॉय !....आज का क्या प्रोग्राम?”

-“आज मेरा दोस्तों के साथ वादा है...मैं अनवर, सुभाष और जावेद...आज साथ घूमने जायेंगे।”

-“कहाँ?”

-“पता नईं...देखेंगे।”

-“ठीक है, आप हो के आओ....शाम के कब तक आओगे?”

-“मैंक्सिमम सात तक और क्या!”

गर्मी का मौसम, नतीजे का दिन, दोस्तों का साथ....सात कब बज गए पता ही नहीं चला। आठ तक उम्मीद थी लेकिन शादाब जब नौ बजे रात तक लौट कर नहीं आया तब माँ बाप परेशान होने लगे।

-“ऐसा अक्सर करता है क्या?” रमज़ान ने पूछा।

-“ना ना....हमेशा अँधेरा होने से पहले घर आ जाता है.....आज न जाने क्या बात है।” राब्या ने कहा।

दस बजे सो जाने वाले माँ बाप रात के बारह बजे तक बग़ैर खाये पिए जागते रहे.

-“उसके दोस्तों का पता है?”

-“हाँ......जावेद अगली बिल्डिंग में रहता है, सुभाष शांति नगर में और अनवर तो इसी बिल्डिंग में है, छठे माले पर।”

-“मैं देखता हूँ!” रमज़ान पहले छठे माले पर अनवर के घर गया।

-“शादाब तुम्हारे साथ गया था?”

-“हाँ।”

-“तो वो तो घर वापस नहीं आया...”

-“पता नईं....मैं जल्दी घर चला आया था।”

-“कुछ अंदाज़ा है शादाब कहाँ जा सकता है, हो सकता है?”

-“क्या पता!”

रात के एक बजे और लोगों के घर जाना ठीक नहीं समझा गया इसलिए सुभाष और जावेद का पता ले कर रमज़ान दूसरे दिन उन दोनों के घर गया।

वहां भी वहीं जवाब- ''पता नहीं, हम तो चले आए थे।''

-''तो उसे कहाँ छोड़ आए थे?''

-''हम जल्दी घर आ गए थे।'' जावेद ने बताया।

-''तो वो कहाँ चला गया था?''

-''क्या पता!''

-''कुछ तो कहा होगा कि कहाँ जा रहा है।''

-''नईं..'' जावेद ने आँखें नीची कर के कहा।

सुभाष शादाब के खो जाने की पूछ ताछ पर रुआंसा हो गया लेकिन उसने भी तक़रीबन ऐसे ही जवाब दिया कि ''पता नहीं।''

रमज़ान अपने पड़ौसी और दोस्त अमजद और सुहेल के पास गया।

-''तुम भी यार.....रिज़ल्ट के दिन बच्चों को घर से बाहर नईं जाने देने का भाई!'' अमजद ने कहा।

-''क्यों?'' रमज़ान की बात समझ में नहीं आयी।

-''लोग उठा लेते हैं बच्चों को..रैनसम मांगते हैं..जो फ़र्स्ट आते हैं ना उनको तो शर्तिया...शादाब फ़र्स्ट आया था क्या?''

-''हाँ।

-''ओफ़ ओह यार रमज़ान भाई...ये क्या किया तुमने! ..कोई फिरौती मांगने का फ़ोन आया था?''

-''अभी तक तो नईं।''

-''तीन दिन हो गए, अब तक नईं आया तो अब क्या आएगा, ...अच्छा सुनो. ...'' सुहेल ने कुर्सी से उठ कर हाथ घड़ी पहनते हुए कहा, ''टाइम वेस्ट मत करो चलो पुलिस में कंप्लेंट करते हैं. वही एक रास्ता है।''

-''इतने बड़े शहर में पुलिस निशानी के बावजूद चोर नईं पकड़ सकती, वो एक नाबालिग़ लड़के को क्या ढूंढ पायेगी!'' अमजद ने शक ज़ाहिर किया।

-''तुम चलो तो...ज़्यादा दिन हो जायेंगे तो पुलिस भी हाथ झाड़ लेगी।'' सुहेल ने क़मीज़ पहन कर गाड़ी की चाभी लेते हुए सबको चलने का इशारा किया।

-''फोटो लाये हो?'' ड्यूटी पर तैनात पुलिस वाले ने रिपोर्ट लिखने के बाद पूछा।

-''हाँ!...ये लीजिये।''

-''ठीक है, परसों थाने में आ कर पूछ जाना।''

-''पूछ जाना?...मतलब?...तीन दिन हो चुके हैं...''

-''तो? मैं क्या करुँ?...तीन दिन बाद रिपोर्ट लिखवाते हो और फिर हमारे सर पर बैठते हो।'' पुलिस वाले ने रजिस्टर बंद करते,कुर्सी से उठते हुए कहा, ''कल जाने दो, परसों आ कर पूछ जाना।''

रमज़ान बेतरह चिड़चिड़ा गया, ''पुलिस को इतना वक़्त चाहिए?'' उसे ग़ुस्सा आ गया लेकिन अमजद ने उस का कन्धा दबा कर उसे शांत रहने का इशारा किया। वैसे चुप रहने के आलावा रास्ता भी क्या था! पुलिस वाला भी सही था- उसे एक दिन तो ढूंढने के लिए चाहिए! लेकिन शायद केस काफ़ी पेचीदा था इसलिए पुलिस ने ये 'परसों' अगले परसों पर धकेल दिया। अब रमज़ान रोज़ाना पुलिस स्टेशन पहुँच जाता था। चार दिन बाद इंस्पेक्टर ख़ान ने उसे थाने में घुसते देखकर नाम ले कर पुकारा और बताया कि शादाब रेल से कट कर मर गया है। क्योंकि उसकी जेब से कोई पता भी नहीं मिला इसलिए उसकी बॉडी लावारिसों की तरह डिस्पोज़ कर दी गयी है। रेल की पटरी पर, बताया गया कि, शादाब सेल्फ़ी लेने गया था और उसे पीछे से आती हुई लोकल ट्रेन का पता नहीं चला. वो कट गया।

-''देखिये भाई साब!'' रमज़ान ने याचना के स्वर में कहा, ''मेरा लड़का ऐसा लापरवाह नहीं है।''

-''भाई साब भी बोलते हो और हम पर यक़ीन भी नहीं करते..''

-''मैं अपने लड़के को जानता हूँ...वो बहुत सेंसिबल है।''

-''बड़े देखे आजकल हमने सेंसिबल बच्चे जी!......सब साले सेल्फ़ी के चक्कर में मरे जा रहे हैं....कोई खाड़ी में गिर जाता है, कोई दसवें माले से फ़िसल जाता है, कोई.....''

-''नईं नईं सर...'' रमज़ान ने रुंधे गले से इंस्पेक्टर की बात काटते हुए कहा, ''कुछ ग़लती हुई है...शादाब ऐसा नहीं कर सकता...प्लीज़ सर....आप मेहरबानी कीजिये दोबारा इसकी तहक़ीक़ात.....''

-''मेहरबानी अब आप कीजिये हमारे ऊपर,'' इंस्पेक्टर खान ने बात काट कर कुर्सी से उठते हुए तुर्शी से कहा, ''आपके यहाँ रोज़ चक्कर लगाने से कुछ नहीं होगा. मैं आपसे कह चुका हूँ कि हमारी तहक़ीक़ात पूरी हो चुकी है और फ़ाइल क्लोज़ हो चुकी है...समझे!....नाऊ प्लीज गो!''

मीरा रोड पुलिस स्टेशन का आज रमज़ान शेख का ये पांचवां चक्कर था और आज ये साफ़ हो चुका था कि अब पुलिस से कोई उम्मीद बेकार है।

-''शादाब सेल्फ़ी के लिए पटरियों पर नईं जायेगा !'' राब्या ने आत्मविश्वास से कहा.

-''वोई तो मैं ने कहा।''

-''तो अब?''

-''पुलिस से तो अब कोई उम्मीद नईं है।''

-''फिर?''

-''पता तो मैं कर के राउंगा कि आख़िर शादाब को हुआ क्या,'' रमज़ान रो पड़ा, ''एक ही तो बेटा था!''

-''अब्बू बहुत परेशान हैं....दुआ पर दुआ पढ़ रहे हैं।'' राब्या की आँखों में रोते रोते जो आंसू सूखने लगे थे वो फिर आ गए। फिर उसने पूछा ''और नौकरी का क्या करोगे?''

-''वहां इत्तिला कर दूंगा...छुट्टी दे दें नईं तो छोड़ दूंगा......लेकिन शादाब का पता करके राऊंगा।!''

-कैसे?''

-''पता नईं.....! लेकिन मुझे लगता है कि उसके साथी कुछ छुपा रये हैं। उस रोज़ जब मैं सुभाष के घर गया तो उसने सर झुका के जवाब दिए, मुझसे आँख तक नईं मिलाई...जावेद भी लगा सच नईं बता रा था।''

-''हो सकता है उन्हें कुछ मालूम ही न हो...हो सकता है अपने माँ बाप के सामने वे कुछ बताना न चाहते हों।''

-''हो सकता है!'' रमज़ान ने फिर कुछ सोच कर कहा, ''चलो मैं आता हूँ।''

-''कहाँ चले?''

-''पुलिस रेलवे ट्रैक की बात करती है न....तो वहां तो सी. सी. टी. वी. लगा है...मैं वहां की रिकॉर्डिंग चेक कर के आता हूँ. शायद उससे कुछ पता चले.....तुम जा कर अनवर से अकेले में पूछो शायद कुछ सुराग़ मिले।''

राब्या ने दुपट्टा ओढ़ा और अनवर के घर गयी। इतवार की दोपहर थी. राब्या ने अनवर को साथ चलने के लिए कहा।

-''कहाँ लिए जा रही हो?'' अनवर की माँ ने पूछा।

-''देखूं तो शादाब कहाँ इन लोगों को छोड़ कर चला गया।''

-''मुझे कुछ याद नहीं।'' अनवर ने बड़ी मासूमियत से कहा। राब्या ने एक नज़र भर कर अनवर की आँखों में देखा, अनवर ने नज़रें झुका लीं।

-''चले जाओ बेटा।'' अनवर की माँ ने कहा।

राब्या ने रास्ते में पूछा तो अनवर ने मछली मार्किट के पीछे वाली गली की तरफ़ इशारा कर दिया। ''हम लोग यहाँ से वापस आ गए थे।''

राब्या ने अनवर को वापस घर छोड़ा और गई सुभाष के घर शांति नगर। सुभाष ने जिस जगह दिखा कर कहा, ''शादाब इस तरफ़ से गया था'' वह अनवर की बताई जगह से एकदम अलग थी। फिर पता पूछते पूछते राब्या जावेद के फ़्लैट पर पहुंची. जावेद राब्या के इस तरह आने और पूछ ताछ करने से पहले तो बौखला गया फिर उसने कहा, ''वो तो मैंक्डोनाल्ड चला गया था हम वापस आ गए थे।''

तीनो लड़कों के बयानात अलग अलग थे।

-''याने तीनो या तो झूठ बोल रये हैं या कुछ छुपारये हैं।'' रमज़ान ने सब सुन कर कहा।

-''सी.सी.टी.वी. में कुछ मिला?''

-''वो भी देखलिया...उसमें जो पुलिस कह रेइ है वो है......शादाब नईं है...''

-''क्या मतलब?''

-''बात सई है...एक लड़का कटा है....वो लड़का है फुटेज में, लेकिन वो शादाब नईं है।''

-''ये कैसे पता?''

-''अरे उसका साइज़, उसके कपडे, उसका हेयर स्टाइल सब से पता चलता है न!''

-''इसका मतलब पुलिस की तहक़ीक़ात सही नईं है।''

-''उनका काम हो गया. लड़का मिल गया, कट गया, जांच पूरी हो गयी फ़ाइल बंद हो गयी।''

-''अच्छा ठीक है....मैं पता करती हूँ''

राब्या सुभाष और अनवर को ले कर शाम को जावेद के घर गयी।

-''देखो तुम तीनो कुछ छुपा रहे हो...क्यों?''

तीनो लड़के डर गए। ''हमने कुछ नहीं किया'' जावेद के तो तक़रीबन पेशाब निकलने को हुआ, ''वो....''

-''वो क्या..?'' राब्या ने जावेद की आँखों में गहरे देख कर पूछा।

फिर सारी बात जो सामने आयी वो ये कि शादाब, अनवर, सुभाष और जावेद चारों उस दिन चार बजे के आस पास अपने पास होने की पार्टी करने मैंक्डोनाल्ड गए। वहां उन्होंने कुछ खाया पिया और फिर बाहर आ कर मैंक्डोनाल्ड बैंकग्राउंड में रख कर सेल्फ़ी लेने लगे। शादाब सेल्फ़ी ले ही रहा था के पीछे से एक बीमार

सा मवाली लगता लड़का आया और उसने उसके हाथ से सेल फ़ोन उड़ा लिया और भाग लिया। भागा तो शादाब उसके पीछे भागा। तीनो दोस्त भी भागे। मगर सड़क के मोहने पर पहुँच कर देखा कि अचानक उस कोने से चार पांच और गंदे मवाली लड़के निकले और उन्होंने जावेद को पकड़ लिया। दोस्त लोग ज़रा आगे बढ़ने को हुए कि उन्हें छुरा ले कर एक ज़रा उम्र वाले गंदे से शख़्स ने डरा कर भगा दिया।

-''सेल फ़ोन ले लो लेकिन हमारे दोस्त को छोड़ दो।'' दोस्तों ने कहा।

-''नईं..मैं सेल फ़ोन नईं दूंगा...मेरे वालिद का गिफ़्ट है।'' शादाब चिल्लाया।

गंदे मावली ने सर पर एक बड़ा सा पत्थर उठा कर ज़ोर से मारा, ''देगा कैसे नहीं साले!!'' और शादाब वहीं गिर कर मर गया।

-''हम लोग डर गए थे।'' अनवर ने कहा।

-''हम वहां से भाग आए।'' सुभाष ने कहा।

-''हमें ये सब क्यों नईं बताया?'' राब्या ने पूछा।

-''हम डर गए थे के आप हम पर शक करेंगे, पुलिस हमारे घर आ जाएगी...''

उस शाम राब्या और रमज़ान मीरा रोड पुलिस स्टेशन गए।

-''इंस्पेक्टर साब......हमारा बेटा ट्रेन से कट कर नईं मरा......हमारे बेटे को ड्रग एडिक्ट्स ने एक सेल फ़ोन के लिए मार डाला!.....अब आपका अपनी तहक़ीक़ात के बारे में क्या कहना है?''

-''ऐसा...? ....नईं नईं...तुमको ग़लतफ़हमी हुआ है।''

राब्या और रमज़ान हताश, निराश और बेहोश से घर वापस आ गए।

रात को इंस्पेक्टर ख़ान मीरा रोड स्टेशन गया, उसने अपनी मोटर साइकिल खड़ी की और स्टेशन के कोने में पटरी के किनारे बैठे/ लेटे बीमार लगते लोगों से पूछा, ''टुंडा किधर है बे?''

पीछे से अँधेरे में एक ज़रा उम्र वाला आदमी आहिस्ता से निकला, ''बोलो साब..''

-''क्यों बे तू ने लौंडे को मार डाला?''

-''नईं नईं साब...मैं ने किसी को नईं मारा।''

इंस्पेक्टर ने उस आदमी को एक ज़ोर का थप्पड़ मारा, ''एक सेल फ़ोन के लिए? ...दो दिन पहले?''

-''नईं नईं...''

इंस्पेक्टर ने दूसरा थप्पड़ मारा।

-''वो सेल फ़ोन देइ नईं रा था साला...'' बग़ल में खड़े एक बीमार से लड़के ने कहा।

इंस्पेक्टर ने तीसरा थप्पड़ मारा।

-''मैं क्या करता साब..'' आदमी रोने लगा... ''मेने उसे मार डालने को थोड़े ही मारा था.....सर पे ज़रा सा मारा, वो साला मर गया..''

-''सेल फ़ोन की कीमत पचास हज़ार थी,'' इंस्पेक्टर ने थप्पड़ जड़ने से अपने हाथ मे लगी मार सहलाते हुए कहा, ''साले तू ने पंद्रह में बेचा..मेरा दस किधर है?. ...निकाल! ....नईं तो साले तुम लोगों का बैठना बंद कर दूंगा यहाँ पर।''

बग़ावत

उनसे कुछ ख़ास हो नहीं पाया था। ऐसा नहीं कि वे कंपीटेंट नहीं थे या उन्होंने कोशिशें नहीं कीं लेकिन तुलसीदास जी का कथन ''हानि लाभ, जीवन मरण,जस अपजस विधि हात'' उन पर पूर्णतयः लागू था। और क्योंकि सामाजिक परिवेश में वे सफल नहीं थे इसलिए उनकी कोई ख़ास सामाजिक पोज़ीशन भी नहीं थी। आर्थिक स्थिति ठीक थी इसलिए लोग दुआ सलाम कर लेते थे और इनसे सम्बन्ध भी जोड़े रखते थे। आर्थिक स्थिति इसलिए ठीक थी क्योंकि इनके पिता कामता प्रसाद श्रीवास्तव बड़े ज़मींदार थे। उन्होंने अपनी मेहनत से काफ़ी कमाया और जमा किया। लोग उन पर जान छिड़कते थे। लोग इसलिए जान छिड़कते थे क्योंकि इन्होंने अपनी ज़मींदारी में कभी किसानों/गाँव वालों पर औरों की तरह जौर ज़ुल्म नहीं किये। सबके साथ प्यार से व्यवहार किया और जहाँ ज़रुरत पड़ी लोगों को मदद की। हालाँकि यही इनकी परेशानी भी बन गयी क्योंकि जिसने 1936 में पचास रूपए उधार लिए उसने वादा कर के भी कभी वापस नहीं किये। कामत प्रसाद को उसकी वादा ख़िलाफ़ी पर गुस्सा आ गया। उन्होंने उस पर मुक़दमा कर दिया। मुक़दमा चला तो चलता गया, तारीख पे तारीख़ पड़ती गयी पचास रूपए के मूल पर मुक़दमे में ख़र्च हो गए सौ रूपए लेकिन फ़ैसला दूर दूर तक नदारद और ऐसे कम से कम सौ मुक़दमे तो उनके अदालत में चल ही रहे थे।

कामता की औलाद एक ही थी-ओंकार प्रसाद श्रीवास्तव। ओंकार को वे वकील बनाना चाहते थे। अंग्रेजों का ज़माना था और कामता से अँगरेज़ बहादुर के अच्छे सम्बन्ध थे। उस ज़माने में हाई स्कूल पास लोगों को सरकार वकील मुक़र्रर कर देती थी। लेकिन ओंकार हाई स्कूल में तीन बार फ़ेल हो चुके थे और चौथी बार भी पास होने की कोई उम्मीद नहीं थी। मज़ा ये के ये अपने जिस दोस्त को जो विषय पढ़ा दें वो पास हो जाये और ख़ुद उसी में फ़ेल! कामता को अपने बुढ़ापे और ओंकार की नाकामियों से आगे की नाव डगमगाती

दिखी। कायस्थ की औलाद, ज़मींदार का ख़ानदान वकालत न सही तो भी काम तो ऐसा होने चाहिए जो लोगों की नज़रों में इज़्ज़त रख ले। तमाम बातें सोची गयीं। आख़िर में फ़ैसला हुआ कि कलकत्ता में एक काग़ज़ बनाने वाली कंपनी है बंगाल पेपर मिल्स जो इस इलाके में अपने लिए एक एजेंसी की तलाश में हैं। कामता ने झाँसी शहर के बीचों बीच मानिक चौक में तीन दुकाने ख़रीदीं और ओंकार के नाम पर इस कंपनी की एक एजेंसी खुलवा दी। शुरू शुरू में तो सब ठीक चला फिर मुनाफ़े की जगह घाटा होने लगा और लगातार होने और बढ़ने लगा। कंपनी बंद करनी पड़ी। फिर एक आहता ले लिया गया जिसमें दस दुकाने निकाली गयीं जिन्हें किराये पर उठा दिया गया। किरायेदार भीख माँगते हुए आते और कुछ महीनों बाद मालिक जैसा रौब दिखाते। महंगाई बढ़ी तो किराये से ज़्यादा ख़र्च दुकानों की सफ़ाई-पुताई-मरम्मत में लगने लगा। जो रही सही कसर थी वो 1947 के बाद वाले स्वराज्य ने पूरी कर दी। सरकार रेंट कण्ट्रोल एक्ट ले आयी जो पूरी तरह से किरायेदारों के ही तरफ़ था। करनफूल कान काटने लगा। नौबत ये आयी कि आहाते समेत दुकाने आने पौने बेच डाली गयीं। कामता बूढ़े भी हो चले थे और बीमार भी रहते थे। गाँव वाले मालिकों की रोज़ाना की निगरानी न रख पाने से इत्मीनान में थे। कभी कहते खड़ी फ़सल जानवर खा गए, कभी ये कि ग़ल्ला गाड़ियों में भर कर ला रहे थे कि रास्ते में कबूतरा (लुटेरे) लूट ले गए, कभी ये कि बैल मर गया नया लेना पड़ेगा, कभी कुछ कभी कुछ....बहरहाल...ज़मींदारी जिससे कभी घर चलता था अब पैर का कांटा बन गयी। लड़का नाकारा हो, आमदनी की जगह ख़र्चे ही ख़र्चे हों, उम्र साथ छोड़ रही हो तो रात को क्या आदमी को दिन में भी अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देता है. कामता ये नहीं समझे कि जो अँधेरा उन्हें उद्वेलित कर रहा है वह परिवार में औरों को भी वही कर रहा है और अगर इससे वे विचिलित हो कर दीवानगी की हदों तक परेशान हो जायेंगे तो वे घर में सब को और भी परेशान कर देंगे परिवार का चैन भँग हो जायेगा। कलह सुबह होते ही शुरू हो जाती थी। बाप अपने इकलौते बेटे को जिन गलियों और बद-दुआओं से नवाज़ता था वह अगर कोई दुश्मन भी सुन ले तो अपने कान बंद कर ले!..ओंकार सुन लेते थे। बाप को इन्होंने कभी पलट कर जवाब नहीं दिया। सुनते जाते थे और अपने सफ़ेद कुर्ते पायजामे को पहन, छड़ी उठा कर बाहर घूमने निकल जाते थे। सुबह शाम घूमना ही था जो उन्हें घर की घुटन और गालियों से-ज़रा देर को ही सही-लेकिन दूर रखता था। एक आध बार ऐसा

भी हुआ कि सुबह घूमने निकले और दो दिन तक वापस ही नहीं आए। ढुंढाई पड़ी। दो दिन बाद वापस आए तो पता चला ग्वालियर चले गए थे। ग्वालियर डेढ़ घंटे का तो सफ़र था झाँसी से। वापस आए तो फिर वही गोली गलौच। स्थितियां जिनके मनानुसार होती हैं या जो स्थितियों से समझौता कर के जीते हैं वे स्थितियों से समझौता न कर पाने वालों की तकलीफ़ का अंदाज़ा नहीं लगा सकते। और स्थितियों से समझौता केवल वे ही नहीं कर सकते जिनमें भावनाएं और संवेदनाएं औसत से कहीं अधिक और कुशाग्र होती हैं। इसलिए वैसे लोगों में बर्दाश्त कम और बग़ावत ज़्यादा होती है। ओंकार प्रसाद की बग़ावत उनके अपने ही खिलाफ़ थी। अंतर्मुखी ख़ामोश क़िस्म की। चुपचाप! चुपचाप तो होनी ही थी। अकेले लड़के थे और ऐसे बाप के जो बहुत रौबीला, इज़्ज़तदार, तेज़ तर्रार था। जिसे सामने किसी की बोलने तक की हिम्मत नहीं थी। ओंकार छः वर्ष के थे तब इनकी माँ की मृत्यु हो गयी माँ के मरने से क्या तकलीफ़ हुई क्या मन पे गुज़री क्या दुःख हुआ वो जो कुछ होना था वो तो हुआ लेकिन क्या हुआ ये समझ में ही नहीं आया। समझ में आने वाली उम्र ही नहीं थी। अपनी बात कोई था ही नहीं जिससे बाँट पाते। चुप रहे। सत्रह साल में इनकी शादी कर दी गयी। बीवी छः दर्जा पास थी। काम कर सकती थी लेकिन ज़मींदार की बहू थी इसलिए बाहर कैसे जाये, काम करना तो ख़ानदान की तौहीन थी। वैसे तब पैसे की ज़रुरत भी नहीं थी।

वे दिन ओंकार के लिए सबसे सुखद दिन थे। बीवी मन की थी। दोनों मियां बीवी घूमने जाने लगे-कभी नैनीताल, कभी इलाहबाद कभी बम्बई। घूमना घामना बंद हुआ तब जब बच्चे हो गए। साल दो साल के अंतर से तीन लड़के। लड़कों का बचपन बहुत आराम और मज़े में गुज़रा। किसी प्रकार की कोई महरूमियत नहीं। जब ज़्यादातर बच्चे मीलों पैदल खटते थे तब ये तीनों अपनी अलग अलग सायकिलों से कॉलेज जाते थे। छटी से लगा कर इण्टर तक कॉलेज था जिसमें इंटरवल में कभी समोसा, कभी मटर, कभी शीरे में डूबी मीठी गुझिया (जिसे लौंग कहते थे) ले ली जिसका पैसा महीने के आख़िर में दिया जाता। पढ़ने के लिए कभी सेकंड हैण्ड किताबें नहीं लीं गयीं, हमेशा नईं। पढ़ाई में लड़के तेज़ थे और खेल कूद में भी अव्वल। हाई स्कूल तक आते आते ओंकार को लगने लगा था कि झाँसी से इन लड़कों को निकल कर किसी बड़े शहर में पढ़ने जाना चाहिए वरना इनकी ज़िन्दगी घुट कर रह जाएगी। मिडिल फ़ेल चाहे रहे हों लेकिन ओंकार थे आलिम। हर बात का ज्ञान, दुनिया की जानकारी-सब रखते थे। लड़कों की

पैदाइश के बाद जब बाहर घूमना घामना बंद हो गया और लड़के बड़े होने लगे तो ओंकार ने बेतहाशा पढ़ना शुरू किया-लाइब्रेरियों में,अख़बारों में, किताबें ढूंढ ढूंढ कर..न जाने कहाँ कहाँ से पता कर के इन्होंने ऋषकेश में शिवानंद आश्रम-जो कि उस समय बस ज़रा ज़रा नाम कर ही रहा था-से ख़त-ओ-किताबत की। लड़कों के भविष्य के बारे में तमाम सोचा, तमाम राय लीं..दिल्ली, लखनऊ के विद्वानों से सलाह मशविरा किया और इसी सिलसिले में इनकी सूझ बूझ और लियाकत देख कर शहर के तमाम टीचर और बुद्धिजीवी इनके दोस्त बन गए। जो लोग पहले सिर्फ़ ज़मींदार के लड़के होने के कारण इनसे दुआ सलाम कर लेते थे अब दिल से इन्हें रुक कर 'प्रणाम बाबू जी' करने लगे। बहुत सोच समझ के बाद लड़कों को इन्होंने बी.एस.सी. करने भेजा लखनऊ-लखनऊ इसलिए क्योंकि ये बड़ा शहर था, झाँसी के पास भी था और वहां पढ़ाई के तमाम साधन मौजूद थे। एक गया डाक्टरी पढ़ने और दो गए इंजीनियरिंग में। अब सवाल था पैसा। रखा हुआ पैसा हमेशा नहीं चलता और कामता प्रसाद की मृत्यु के बाद जब ओंकार के तीन लड़के झाँसी के बाहर पढ़ने निकले और जब उनके ख़र्चे बढ़ते ही गए तब घर की हालत ख़स्ता से ख़स्तातर होती गयी। तब ओंकार ने सबसे पहले तो अदालतों के मुकदमों में पैसा ज़ाया करना बंद कर दिया। जो गया सो गया अब और तो न जाये! ख़र्चे बढ़ते ही जाते थे। तिजोड़ी में रखे सब ज़ेवरात, चाँदी की तश्तरियां, झालरें, पंखे, पायलें, छाजने सब बिक गए। ओंकार को काम का कोई तजुर्बा था नहीं इसलिए वो काम ढूंढते भी तो क्या। हाँ, बीवी टीचर बन सकती थीं। सो पचास की उम्र में उनके लिए पास के एक स्कूल में बात की गयी। पहले तो ओंकार को पत्नी की नौकरी का ख़्याल ही नागवार गुज़रा लेकिन वक़्त की मार थी। पत्नी ने समझाया कि तनख़्वाह पूरी चाहे न पड़े, आधी तो पड़ेगी। कुछ तो ख़र्च सधेगा। स्कूल वालों ने कहा ज़माना बदल गया है, छटी पास टीचर नहीं हो सकता। फिर किसी तरह ट्रस्टी से सिफारिश करवाई। ट्रस्टी कमाता के जान पहचान का था. बोला, ''कामता कि बहू और नौकरी....नहीं नहीं....कुछ ग़लती हो गयी तुम लोगों से।'' लेकिन अगर कामता की बहू थी और उसे नौकरी करनी ही थी तो स्कूल को नौकरी देनी भी थी. ''हैड क्लर्क!'' ओंकार ने सुना तो मुंह पर हाथ रख कर आँखें फाड़ दीं। ''तुम्हें अंदाज़ा है ख़ानदान का नाम क्या रहेगा?''

-''नौकरी न करो तो तुम्हें अंदाज़ा है कि ख़ानदान रहेगा भी या नहीं?''

-''इससे घर का ख़र्च थोड़े ही चल सकता है!''

-''लेकिन घर ख़र्च में कुछ मदद तो मिल ही सकती है...मंझला पास हो जाये तब तक ही की तो बात है..फिर दोनों सँभाल लेंगे।''

ओंकार अपनी हालत जानते थे। बीवी जो कर रही थी वो परिवार के भले के लिए था। चुप रहने के आलावा उनके पास कोई चारा न था।

नौकरी लगने के बाद पत्नी सुबह उठकर ओंकार के लिए खाना बना कर रखतीं,अपना डब्बा बांधतीं और चप्पल चटकाती नौ बजे निकल जातीं। ओंकार अकेलेपन और अपनी नाकारगी छुपाये जब सुबह नौ बजे दरवाज़ा अंदर से बंद करते तो मन मर मर जाने को होता। पत्नी शाम को पाँच तक वापस आती। तब तक खाना खाने,अखबार पढ़ने, इधर उधर चहल क़दमी करने और अपनी बेचारगी को जी भर कोसने में जिस तरह दिन गुज़रता वो ओंकार ही जानते। थोड़े दिन इस नकारात्मकता से गुज़रते हुए इन्हें लगा कि इस तरह तो इनके मिज़ाज में कड़वाहट पैदा हो जाएगी, चिड़चिड़े हो जायेंगे। जो शख़्स ख़ुद से ही नाराज हो वह और क्या हो सकता है! और उस सूरत में इन्हें लगा कि वे उसी रस्ते जा रहे हैं जिस पर इनके पिता कामत प्रसाद हो लिए थे। अपनी चिड़चिड़ाहट, अपनी कुंठाओं के कारण परिवार के सभी का चैन भँग करते हुए, औरों को और भी परेशान करते हुए! पत्नी ने अगर बाहर की दुनिया संभाली थी तो ओंकार ने घर की सारी ज़िम्मेदारी सम्भाल लीं-सफ़ाई करना, डस्टिंग करना, कपड़े धोना,सौदा लाना, कभी कभी-जब पत्नी को देर हो जाये-तो उसके आने से पहले खाना बना लेना, इत्यादि।

-''ये क्या कर रहे हो तुम?....कोई सुनेगा तो क्या कहेगा...'' पत्नी ने सवाल किया।

-''क्यों...जब तुम घर सम्भाल सकती हो तो क्या मैं तुम्हारा बोझ हल्का नहीं कर सकता?....हम दोनों ही तो हैं, एक दूसरे के लिए!''

बच्चे अपने परिवार और संस्कृति का प्रतिबिम्ब होते हैं. वे वो ही सीखते हैं जो देखते हैं। भगवद्गीता में कहा गया है कि जो बड़े करते हैं उसका ही अनुसरण छोटे करते है। इस परिवार में भी बच्चे जो देख रहे थे वही सीख रहे थे। वे देख रहे थे कि बाप बेकार और नाकारा है, माँ काम कर कर के किसी तरह घर चला रही है और दादा के कमाए हुए ज़ेवर और जायदाद बेच बेच कर उनकी पढ़ाई का ख़र्च चल रहा है। छुट्टियों में आते थे तो वे अपनी माँ को ही तरह तरह से ख़ुश करने के लिए अवसर ढूंढते थे उसे पिक्चर दिखाने की ज़िद करते थे-जो वे सतत मना

करती रहतीं। पिता से रिश्ता था लेकिन तना तना सा, खिंचा खिंचा सा। कहते लड़के कुछ नहीं थे लेकिन पिता से बात करते समय उनकी भाषा और चेहरे की मांस पेशियाँ तुर्श हो जाती थीं। बच्चे देख तो चुके थे कि किस तरह ओंकार का बाप भी ओंकार पर गालियों पर गालियों की बौछार करता रहता था। सीखता तो आदमी हीरो से है- वो जो अपनी नज़र में हीरो हो। और हीरो वो होता है जो सक्षम होता है, सामर्थ्यवान होता है, कंट्रोल करता है और जिसकी बात दुनिया मानती है। इस घर में लड़कों का हीरो उनका पिता नहीं,उनका दादा था...और दादा पिता को जूते पर मारता था।

बड़े के डाक्टरी पास होते होते गांव की ज़मीनें बिक गयीं थीं। ज़मीनें बेचीं तो लोगों ने कहा, ''ये क्या किया ओंकार!...ज़मीनें बेच दीं....'' ओंकार ने कहा,''ज़माना बदल रहा है, ये बाहर के पढ़े लिखे लड़के हैं ये अब ज़मीन जायदाद की देखभाल नहीं कर पाएंगे...ज़मीनें एक दिन ज़ाया हो जायेंगीं...इसलिए उनके हक़ में यही है कि यह काम जीते जी मैं ही कर जाऊं...उनकी तरक़्क़ी में कुछ भी हायल नहीं होना चाहिए।''

-''लेकिन पुश्तैनी ज़मीनें थीं...बटिया कर देते...बेचना नहीं चाहिए था..''

-''एक गांव बेचा है...तीन गांव खड़े कर रहा हूँ...मेरा एक एक लड़का एक एक गांव के बराबर है...होनहार हैं,''

लेकिन जिस दिन ओंकार ज़मीनों का सौदा कर के आये उस दिन आ कर पौर के तख़्त पर सामने आस्मान तकते जो बैठे तो बैठे रह गए। सूर्यास्त हो गया, दुनिया में चराग़ जल गए ये घुप्प अँधेरे में वैसे ही बैठे रहे। शायद अपने भाग्य को कोसते हुए या फिर अपनी नाकारगी को धिक्कारते हुए। या अंधकारमय भविष्य को महसूस करते हुए। कुछ दिनों बाद माँ की नौकरी-जो किसी तरह बुढ़ापे में लग गयी थी-छूट गयी। इंजीनियर बनने वाले बेटे की पढ़ाई का आख़िरी साल अभी बाक़ी था। उम्मीद ये थी कि डॉक्टर अब कोई नौकरी कर लेगा और घर और छोटे की पढ़ाई सम्भाल लेगा। उम्मीद पर ही उनकी दुनिया क़ायम थी। बड़े ने उम्मीद क़ायम भी रखी। उसने पास होते ही सरकारी नौकरी कर ली और तनख़्वाह का कुछ पैसा घर भेजना शुरू कर दिया। लेकिन जब से उसने पैसा भेजना शुरू किया था तब से उसकी बात चीत और ख़तों की इबारत में एक बड़प्पन का भाव उभर आया था। वो उन छोटी छोटी बातों के लिए भी 'आर्डर' देने लगा था जिनसे उसका दूर दूर तक लेना देना नहीं था। मसलन घर में दादा जी के ज़माने की जो बंदूक रखी है उसे बेच दो। तलवारों, ढालों को-जिनको दीवारों पर सजा रखा है-उन्हें हटाओ वहां से,

हिज़ मास्टर्स वौइस् का भोपू वाला ग्रामाफ़ोन जो पड़ा है वो सड़ चुका है उसे बेच दो, घी खाने के ज़माने अब लद गए नए ज़माने में लोग अब डालडा खाते हैं..सस्ता भी है और कहते हैं सेहत के लिए अच्छा भी है उसे इस्तेमाल किया करो...वग़ैरह वग़ैरह...! मंझला भी जब अपने फ़ाइनल ईयर का इम्तिहान देकर आया तो उसके भी तेवर और थे। उसे फ़ौज वालों ने कैम्पस से ही चुन लिया था। फ़ौज का नाम सुनते ओंकार और उनकी पत्नी सुन्न पड़ गए। ''थोड़े दिन ठहर जाते.....अभी तो पास हुए हो, कोई और नौकरी देख लेते।''

-''क्यों? फ़ौज में क्या ख़राबी है?...क्या सभी मर जाते हैं?''

उसके बाद क्या सवाल करते और वैसे भी सवाल करने का सामर्थ्य तो सक्षम और आत्मविश्वास से भरे व्यक्ति में होता है। ओंकार तो ये दोनों नहीं थे। वरिष्ठ उनको कोई मानता नहीं था और आत्मविश्वास समय की मार ने उनमें दो कौड़ी का नहीं छोड़ा था। छोटे लड़के को अपने दादा का अपने बाप को गरियाना याद नहीं था,- वो तब बहुत छोटा था, लेकिन वह अपने बड़े भाइयों का पिता के प्रति व्यवहार देख देख कर बड़ा हुआ था। ओंकार के साथ उसके व्यवहार में बाप के तईं अपने भाइयों से कहीं ज़्यादा तीखापन था।

दिवाली की शाम थी। पूजा हो चुकी थी। छोटा लड़का थाली में दिए लिए झिंझरी पर लगा रहा था। बड़ा वाला, जो दो दिन की छुट्टी पर आया था, अपने लिए आये रिश्ते वालों की भेजी उनकी बेटियों की तस्वीरें देख रहा था। ओंकार प्रसाद पौर वाले तख़्त पर जा के बैठ गए थे। लड़कों की माँ खाने का इंतजाम करने चौके की तरफ़ बढ़ रही थीं कि अचानक धड़ाम से गिर पड़ीं। चित्त, एकदम अचेत! गिरीं तो उनका बायाँ हाथ खील-बताशे-मिठाई वाली थाली पर ज़ोर से पड़ा। थाली औंधी हो गयी और आवाज़ से बड़े वाले का ध्यान उधर गया। वो उठा और माँ के पास जाकर उसे सहलाने/पुकारने लगा। बड़े ने छोटे को आवाज़ दे कर कहा, ''डॉक्टर चौधरी को बुला लाओ।'' डॉक्टर चौधरी फ़ैमिली डॉक्टर थे। छोटा एक मिनट को हतप्रभ रह गया, फिर शायद समझ गया और बाहर दौड़ा। ओंकार आवाज़ें सुन कर अंदर भागते हुए रास्ते में छोटे से टकरा गए. पूछा, ''क्या हुआ?''

-''माँ...''

-''माँ को क्या....''

-''...खा गए तुम उन्हें....और क्या....''

लड़का आँखें लाल किये बाहर चला गया। ओंकार सन्न रह गए। एक दम जड़। अंदर गए तो डॉक्टर लड़के ने कहा, ''ये तो गयीं।''

लक्ष्मी आने के दिन लक्ष्मी गयी!

ये ओंकार के लिए एक साथ दोहरा और सबसे गहरा आघात था-पत्नी का जाना और अपनी ही औलाद से प्रताड़ित होना कि 'खा गए तुम उन्हें'! लेकिन ये उनके लिए पांचवां/छटवां आघात था। माँ की मृत्यु, पिता की मृत्यु, गाँव की ज़मीनों का बिक जाना, पत्नी का नौकरी कर के घर चलाना...अब उस सब के ऊपर ये! ओंकार एकदम चुप हो गए। एकदम ख़ामोश। सिर्फ़ सुबह घूमने चले जाते थे, बस।

दसवां हुआ। तेरहवीं हुई। चौदहवें दिन ओंकार जब घूमने गए तो दोपहर हो गयी,शाम हो गयी,रात हो गयी-वापस ही नहीं आये। ढुन्ढ़ौवा पड़ा। कहीं मिले ही नहीं। पौर के तख़्त के पास एक मेज़ पर कुछ काग़ज़ एक पत्थर से दबे रखे थे। दूसरे दिन वे देखे गए। उनमें ओंकार ने जायदाद और बैंक इत्यादि के सारे पेपर्स लड़कों के नाम कर दिए थे।

वे इस बार गए, तो गए!

लोकल दुनिया

बम्बई कोई शहर है यह भ्रान्ति है। बम्बई अपनी तरह का एक पूरा ब्रह्माण्ड है। जिसमें अलग अलग दुनियाएं हैं- पैसे वालों की, सट्टेबाजोंकी, डिब्बे वालों की, नेताओं की, फ़िल्म वालों की, माफ़िया की, बेकारों-आवाराओं की और और भी तमाम लोगों की। सबकी अपनी अपनी दुनिया है और किसी को किसी दूसरे की दुनिया से-जब तक वास्ता न पड़े-कोई ग़रज़ नहीं है। लेकिन इन तमाम दुनियाओं में एक बात सौ प्रतिशत कॉमन है और वो यह कि इनमें से सब लोग बम्बई की लोकल ट्रेनों में ज़रूर या तो चलते हैं या चल चुके हैं।

कार्तिक शेनॉय तो पिछले चालीस सालों से लगातार लोकल में सफ़र कर रहे हैं। कर्तिक उडीपी के हैं- ख़ालिस जनेऊधारी, सुबह के सूर्य को प्रणाम और शाम को घर आकर संध्या प्रार्थना करने वाले। ठाणे की बृन्दावन सोसाइटी में दूसरी मंज़िल के फ़्लैट में रहते हैं। सुबह पांच बजे से उनकी पत्नी उठकर ताज़ा नारियल और लहसुन कूट-कूट कर चटनी बनाती है जिसकी आवाज़ से उनके नीचे वाले फ़्लैट के सलिल श्रीवास्तव पहले ऐतराज़ करते रहे, अब गालियां देने पर उतर आए हैं लेकिन शेनॉय के यहाँ नारियल बाक़ायदा उसी तरह कूटा जा रहा है।शेनॉय आठ बजे खाने का डिब्बा लेकर निकल जाते हैं। पत्नी नौ बजे नौकरी पर जाती है। बच्चे दो हैं- एक आठवीं में लड़का और दूसरी लड़की-बारहवीं में। सबके पास फ़्लैट की अपनी अपनी चाभियाँ हैं। सबके आने जाने के समय अलग अलग हैं। अधिकतर शामों को ही सब एक साथ मिल पाते हैं। चारों दिन भर अलग अलग दिशाओं में लोकल/बसों/ऑटो रिक्शाओं में चलते रहते हैं। शेनॉय हर मामले में एक दम 'सही' होना चाहते हैं (जो न दुनिया है न हो सकती है) और इसी चक्कर में कई बार लोकल की भीड़ में पिट चुके हैं।

उस दिन चार लोकल ट्रेनें कैंसिल हो चुकी थीं, पांचवीं बदलापुर से और वो भी पंद्रह मिनट लेट आयी थी। गाड़ी में भीड़ हलाल ख़ाने में मुर्ग़ों की तरह थी।

घाटकोपर आते आते हरेक की सांस दूसरे की गर्दन पर थी और नथुनों में सामने वाले के सर के बाल।

-''चल बे, दरवाज़े पर खड़ा है, अंदर चल !'' एक चढ़ने वाले ने किसी तरह डिब्बे के बार की रेलिंग पकड़ कर चढ़ते हुए चिल्लाया।

-''मुझे सायन उतरना है।'' शेनॉय ने किसी तरह खड़े रहने की कोशश करते हुए कहा।

-''साइड हो जा,'' तंदुरुस्त चढ़ने वाले ने खड़े रहने की कोशिश में इनको अंदर धकेलते हुए कहा।

-''अरेरे, ये क्या बदतमीज़ी है!'' शेनॉय ने ऐतराज़ किया।

-''बद्तमीज़ किस को बोला बे, अं,'' और आदमी ने अपनी मोटी उँगलियों से मुक्का बनाकर उनके मुंह के सामने दिखाया।

बग़ल में खड़े एक बुज़ुर्ग से ये देखा नहीं गया। वो बोला, ''ये क्या करते हो! मारोगे क्या?'' आदमी ने आँखें तरेर कर बुज़ुर्ग को देखा, बोला, ''तू कौन हे बे, इसका कोई लगता है क्या?''

गाड़ी चल दी थी और अंदर आती भीड़ ने शेनॉय को डिब्बे की भीड़ के बीचों बीच धकेल दिया था।

-''संडे मटन खा के आया है क्या?, इतना दादा गिरी करता है!'' अंदर की भीड़ में से एक आवाज़ उठी और सब हंस दिए।

-''देखो न, दादा गिरी है!'' शेनॉय ने अपनी शर्म और ग़ुस्सा छुपाते हुए पसीने से गीली क़मीज़ को बग़ल वाले की जकड़ से छुड़ाने की नाकाम कोशिश करते हुए कहा- जो किसी ने नहीं सुना।

उस दिन प्रोफ़ेसर मीरा शाह को अपना लेक्चर समाप्त करते करते छह के क़रीब होने आए थे। हालाँकि एस. एन. डी. टी. कैंपस से चर्चगटे स्टेशन मुश्किल से आठ मिनट पैदल था लेकिन अपने डिपार्टमेंट से निकलते निकलते वे समझ चुकीं थीं कि उन्हें रोज़ वाली छह तीन की तो छोड़ो छह बीस की अँधेरी लोकल भी मिलने वाली नहीं है। स्टेशन पहुँच कर उन्होंने देखा कि सारी लोकल ट्रेनें बीस से पच्चीस मिनट लेट चल रही हैं। जब वे प्लेटफ़ार्म पर पहुंचीं तब बस एक गाड़ी जो आने ही वाली थी उसका प्लेटफ़ॉर्म बदल दिया गया। सारी भीड़ दूसरे प्लेटफ़ॉर्म पर भागी। कई कई से भिड़े, कई की चप्पलें फिसल कर गिर गयीं। तीन गाड़ियों की भीड़ एक गाड़ी में भरी।

-''क्या करती है? ठीक से चढ़।'' एक औरत ने पीछे चढ़ती दूसरी से ग़ुस्सा किया।

-''चढ़ा कर घर पर मोटी, यहाँ तो ट्रेन पकड़ना है, चल चल, आगे बढ़।''

-''तमीज़ से बात कर!''

-''तमीज़ की माँ का!'' नौजवान लड़की ने अपने कान से एअर प्लग्स निकलते हुए कहा और अंदर बढ.गयी।

औरत को ग़ुस्सा आ गया लेकिन वह फूटा सामने खड़ी एक बुज़ुर्ग महिला पर, ''ए, रस्ते से हट!''

-''मैं हटी तो हूँ!'' बुज़ुर्ग बोली।

औरत ने बुज़ुर्ग के बाल पकड़ कर खींचते हुए उसे एक किनारे किया। बुज़ुर्ग ने ऐतराज किया। पहली ने और ज़ोर लगाया। दूसरी के सर से नुच कर बालों का एक गुच्छा पहली के हाथ में आ गया, जिसे उसने एक किनारे फेक दिया और किसी तरह अंदर जाकर एक सीट पर तीन बैठी औरतों के पास कूल्हे टिका कर चौथे बैठ गयी। दूसरी- बुज़ुर्ग महिला-बुरा भला बकती, सर के बाल तोड़ों के दर्द से चिल्लाती रह गयी। बाक़ी औरतें तमाशा देखते ख़ामोश बैठी रहीं। मीरा शाह ने दोपहर में भी मीटिंग के चलते खाना ठीक से नहीं खाया था। उन्होंने अपने पर्स से एक टप्पर वेयर का डिब्बा निकला और उसमें से दोपहर की बची हुई आधी रोटी निकाल कर खाना शुरू किया। ग्रांट रोड आते आते ट्रेन में चार-चार नीबू और दो दो बैगनों को प्लास्टिक थैलों में डालकर बेचती एक औरत आ गयी।

मुसाफ़िर औरतों ने मोल-भाव किया, कुछ ने ख़रीदा कुछ ने सिर्फ़ देखकर छोड़ दिया।

-''पांच रूपए में दो बैगन?''

-''देखो कितना बड़ा हाय, और उसके साथ चार लिम्बू, बाज़ार में कभी मिलेंगे क्या?''

-''तो तुम क्यों बेच रही हो?''

-''वसई से आया बाबा, दिन में माल बेच दिया, थोड़ा बचा हाय निकाल के वापस जायेंगा!''

इतने में एक लड़की की बड़ी ज़ोर की आवाज़ उठी, ''एय्य, क्या देखता है?''

सबने मुड़ कर उधर देखा। लड़की डिब्बे में वहां खड़ी थी जहाँ आदमियों और औरतों के डिब्बे मिले हुए लेकिन लोहे के जंगलों से अलहदा किये गए थे। साथ के डिब्बे से एक लड़का लड़की को बराबर मुस्कुरा मुस्कुरा कर घूर रहा था। लड़की

चिल्लाई तो वह ज़रा सहमा। दो मिनट के लिए उसने इधर उधर देखना शुरू कर दिया लेकिन तब तक दूसरे आदमी लोग मज़ा लेकर हंसने लगे। एक ने कहा, ''लौंडिया को देख लिया तो इसका रेप हो गया!''

-''ए शर्म कर, घर में बहन माँ नहीं है क्या?'' लड़की के पास खड़ी एक महिला ने ललकारा।

-''बीवी तो नहीं है!'' एक ने ज़ोर से कहा और सब आदमी लोग बज़ाहिर हंस दिए, औरतें मुंह दबा के हंस दीं। डिब्बे के आर पार जब तक तू तू मैं मैं बढ़ती तब तक दादर आ गया और भीड़ बेतरह भर गयी। उस डिब्बे में भी और इधर भी। बात चीत बंद हो गयी। यह गाड़ी बोरीवली जाने वाली थी। कुछ नौजवानों ने दरवाजे के एक तरफ़ खड़े होकर दरवाज़ा ब्लॉक कर दिया था इसलिए उतरने वालों और चढ़ने वालों-दोनों-को दरवाज़े के आधे भाग से ही संतुष्ट होना पड़ रहा था। अँधेरी वाले सांताक्रूज जाते ही खड़े हो गए थे फिर भी उन्हें विश्वास नहीं था कि वे उतर पाएंगे। मीरा शाह अँधेरी किसी तरह उतर तो गयीं लेकिन जब उतरीं तब उनकी नईं साड़ी का पल्लू 'चरर' बोल चुका था। वे यह सब 'चच्च' करके बर्दाश्त कर गयीं और अपने घर चार बंगला जाने के लिए बस की लाइन में लग गयीं।

बी. के. चतुर्वेदी को मणियाऊं तहसील ज़िला जौनपुर से फ़िल्मों में गाना गाने का चस्का बम्बई लाया था। हालाँकि गाना इनके ख़ानदान में किसी ने नहीं गाया लेकिन इनका कहना था कि 'इससे क्या होता है'। गाँव में इनके पड़ौस में रहने वाले सत्यदेव मौर्य की वसई में एक छोटी सी पान की दुकान थी और वह साल में दो बार गाँव का चक्कर लगाया करता था। उससे इन्होने ज़बरदस्त दोस्ती गांठ रखी थी। उसी के भरोसे, अपने घर वालों की मर्ज़ी के खिलाफ़, ये बम्बई आ गए थे और वसई में रहने लगे थे। कुछ दिन तो पानवाले ने रखा-खिलाया लेकिन कितने दिन! सो चतुर्वेदी ने एक लोकल कुरियर कंपनी में डिलीवरी बॉय की नौकरी कर ली। वहां अपने सुपरवाइज़र को पटा कर जहाँ तक होता था डिलीवरी ये सांताक्रूज़/जुहू/अँधेरी की ले लेते थे। ताकि काम पटायें और फिर चक्कर लगाएं स्टूडियो के या संगीतकारों के।

-''काहे लाइप बर्बाद किये हो, संगीत तुम सीखे नहीं अउ चले हौ गाना गाने !'' मौर्य ने एक दिन कहा।

-''तो?, मदन मोहन का संगीत सीखे थे? मुकेश संगीत सीखे थे? ओ पी नय्यर संगीत सीखे थे? अरे ये सरसुती विद्या है सत्तो! ये दैवी कृपा है। हम गाते हैं और सुर में गाते हैं। गाना तो हमें मिलबे करेगा।''

-''रिक्शा चलाने का लइसेंस लैय लियो। तमाम अपनी तरफ़ के रिक्शा चलाय रहे हैं।''

-''अरे हट!, हम रिक्शा चलाने को पैदा नहीं हुए हैं!, समय है, लग रहा है, लगने देओ, आएगा हमारा एक दिन!''

चार साल हो गए फ़िल्मों में गाने का दिन तो आया नहीं हाँ, एक लोकल सुन्दर काण्ड मंडली ने इन्हें अपने साथ कर लिया। मंडली में पांच और सदस्य थे। जो लोग अपने घर में पाठ करवाने के इच्छुक होते मंडली को बुला लेते। ये लोग झांझर, ढोलकी, मजीरा इत्यादि ले कर दो तीन घंटों में भजन करते जिसके एवज़ में इन्हें खाना पीना, दक्षिणा और प्रसाद दिया जाता। चतुर्वेदी ने आज तक कभी भी लोकल से सफ़र का टिकट नहीं ख़रीदा। एक दो बार पकड़े भी गए, जेल में रात बिताने की नौबत भी आ गयी लेकिन उसके बाद भी टिकट नहीं ख़रीदा तो नहीं ही ख़रीदा!

इस रोज़ भी सुबह का समय था। विरार से चलकर चर्चगटे जाने वाली गाड़ियां ऑफ़िस जाने वालों की भीड़ से खचाखच भरी थीं। वसई से चढ़ना बिलकुल नामुमकिन था। गाड़ी रुके इससे पहले, चलती गाड़ी में चतुर्वेदी सामान वाले डिब्बे में चढ़ गए। चढ़ने की तो जगह ही नहीं थी, बस पैर टिकाये थे।

-''ए.... ए..... उतरो,!'' अंदर से डिब्बे वालों ने ऐतराज़ किया।

-''अरे अरे......'' चतुर्वेदी ने अपने कानों से एक हाथ से इयर फ़ोन निकालते हुए हड़काया।

-''अरे नको अणि तुरे नको.....उतरा.....हे माल डिब्बा आहे। इसमें नईं चढ़ने का'' एकने अंदर से कहा।

-''मैं तो इधर खड़ा हूँ।''

-''पुलिस को बुलाऊँ क्या?'' एक डिब्बे वाले ने अपना सेल फ़ोन निकाल कर दिखाया।

-''उतर....उतर....'' एक बुज़ुर्ग डिब्बे वाले ने गाड़ी के पूरी तरह प्लेटफ़ॉर्म पर रुकते रुकते चतुर्वेदी को हाथ लगाकर उतार दिया।

चतुर्वेदी को अपनी टोपी सँभालते हुए उतरना पड़ा।

अब डिब्बा बदलने की हड़बड़ी पड़ गयी। गाड़ी बस चलने को तैयार थी। बग़ल में फ़र्स्ट क्लास था। फ़र्स्ट तो फ़र्स्ट, इन्होने किसी तरह कम्पार्टमेंट के फ़ुटबोर्ड पर अपनी चप्पल के पंजे का आधा हिस्सा अड़ा दिया और डिब्बे के ऊपर बनी नाली के 'ओंठ' थामे खड़े हुए। अंदर से आवाज़ आयी 'फ़र्स्ट क्लास है'। जब गाड़ी चल

दी तो एक जो दरवाज़े पर खड़ा था उसने सहारा दिया और चतुर्वेदी सरक कर किसी तरह फुटबोर्ड पर पूरा पंजा रख पाए। गाड़ी ने नायगांव के बाद ज़रा स्पीड पकड़ी ही थी कि पटरी के बग़ल में खड़े कुछ लोगों ने डंडियों/सरियों से दरवाज़ों पर खड़े लोगों के हाथों पर ऐसे मारना शुरू किया कि कइयों के हाथों से उनके सेलफ़ोन, पर्स, बैग ग़र्जे के जो जो कुछ गिर सकता था गिर गया (जिसे उठाकर/बेचकर वे पैसा उगा लेंगे)। गाड़ी आगे बढ़ती गयी। जिसका जो कुछ गिरा वह कुनमुनाता रह गया। बग़ल के जनरेटर लगे सेकंड क्लास में भजन मंडली का 'विट्ठला-विट्ठला' भजन पूरे ऑर्केस्ट्रा के साथ पूरी आवाज़ में चलता रहा। सब रोज़ की तरह-यथावत, आस पास की हर बात से बेख़बर!

उसी दिन वी.टी. (अब छशमट) से दोपहर एक बज कर चालीस मिनट की कल्याण लोकल एकदम ठीक समय से चली। अपनी 'शिप' की ड्यूटी से तीन महीने बाद घर लौट रहे डेरिल मथायस बीबी बच्चों के लिए तमाम प्रेज़ेंट्स लिए बड़े हौसले से मुस्कुराते हुए अपने घर ठाणे जाने के लिए गाड़ी में चढ़े और विंडो सीट पर बैठ गए। परेल आते आते उन्होने एक नज़र दरवाज़े पर बढ़ती भीड़ की ओर की और फिर अपनी जेब से निकाल कर 'ब्राज़ीलियन नट' चॉकलेट रैपर खोल कर मुंह में डाली। ऐसी चोक्लेटें बड़े प्यार से वे अपनी बड़ी बेटी के लिए लाये थे। उसे ब्राज़ीलियन नट बहुत पसंद था। इस ख़्याल से कि उनकी बेटी यह चॉकलेट पाकर कितनी प्रसन्न होगी उनके चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान फैल गयी और वे इतने दिनों बाद परिवार से सुखद मिलन के एहसास में खो गए। घर वालों को वो फ़ोन कर चुके थे इसलिए वहां उनका इंतजार हो रहा था। उन्होंने मुतमइन होकर पीठ सीट के पीछे टिकाई, आँखें बंद कीं और सामने से अपने मुंह पर थपेड़े मारती हवा के आनंद में आस पास से बेख़बर हो गए। गाड़ी पूरी रफ्तार से चली जा रही थी। कुर्ला कब आकर चला गया उन्हें अपनी मीठी झपकी में पता ही नहीं चला। विद्या विहार बस निकला ही था कि बड़े ज़ोर का धमाका हुआ। मथायस जिस सीट पर बैठे थे उसके नीचे कोई बम फटा। डिब्बे की सत्तर प्रतिशत सवारियां घायल हो गयीं। मथायस के शरीर के टुकड़े हो चुके थे, उसका चेहरा पहचाना नहीं जा रहा था और उसके आस पास लोगों और सामान के परखच्चे उड़ चुके थे। पूरी सेंट्रल लाइन पर ट्रेन सर्विस रोक दी गयी। समाचार दो घंटे बाद टी. वी. द्वारा मिला जिसमें इसे ''कायरता पूर्ण आतंकवादी हमला'' कहा गया। हालाँकि मथायस के घर इत्तिलाह थी लेकिन ये थोड़े ही पता था कि

वे इस गाड़ी से आ रहे हैं! वैसे भी कितने मृतकों का नाम पता चल पायेगा यह कौन जनता है! जिसका आई. डी. मिल गया बस वो ही मुसाफ़िर था!

ताड़देव में रहने वाले नौशेर याज़्दी इंजीनियर फ़िल्म्स डिवीज़न से डिप्टी चीफ़ प्रोड्यूसर के पद से रिटायर हुए थे। उनके दफ्तर के एक फ़िल्म लाइब्रेरियन सलमान ख़ान अफ़रीदी जो पिछले साल रिटायर होने के बाद अब अपने कांदिवली के फ़्लैट में रहने चले गए थे, लगातार कई महीनों से ज़िद कर रहे थे 'इंजीनियर साहेब हमारे घर आइये'। अब तक तो नौकरी की मसरूफियत थी, अब क्या था! अब तो नौशेर रिटायर्ड थे। सोमवार को बहुत भीड़ होती है इस ख़्याल से नौशेर मंगलवार को बोरीवली वाली ट्रेन पकड़ने मुंबई सेंट्रल स्टेशन पहुंचे। लोकल से चलने का इनका कोई ख़ास तजुर्बा नहीं था। फ़र्स्ट क्लास का टिकट ख़रीदा। गाड़ी में भीड़ भी ज़्यादा नहीं थी। इन्होने दरवाज़े का हैंडल पकड़ कर जैसे ही डिब्बे में चढ़ने को पैर रखा कि गाड़ी चल दी और ये पीठ के बल गिर पड़े। थोड़ी देर लिथड़ते चले गए। जब हैंडल हाथ से छूटा तो एक बुज़ुर्ग महिला-जो गाड़ी से उतरी उत्तरी थी- ने हाथ देकर इन्हें उठाया और ये लंगड़ाते लंगड़ाते एक बेंच पर होशो हवास से सुन्न बैठ गए। उनका पैर गाड़ी के नीचे नहीं आया बस आये दिन वे ऊपर वाले का यही शुक्र मानते रहते हैं। उस दिन से नौशेर को कहीं भी, कितनी भी दूर जाना हो वे टैक्सी कर लेते हैं लेकिन लोकल ट्रेन पकड़ने से घबड़ाते हैं।

सीताराम सरवैय्या तो ये बात बम्बई में पोर्ट ट्रस्ट में अपनी नौकरी लगते साथ ही समझ गए थे। दो हफ़्ते लोकल और बसों में धक्के खाने के बाद नौकरी को राम राम करके वापस अपने वतन झाँसी चले गए। लोग बम्बई शब्द पर ज़ोर देकर पूछते रह गए, ''बम्बई! छोड़ के आगए भैय्या?'' अब ये उनको क्या बताते कि बम्बई कोई शहर थोड़े ही है, बम्बई तो मिथ है, सपना है, हर एक के द्वारा न छुआ जा सकने वाला चाँद है जो दूर से शीतल और पास से बेहद तपिश वाला है! इस में जो रम गया, रम गया...जिसे रास नहीं आया, नहीं आया!

अल्टामाउंट रोड की सीगल बिल्डिंग में पांचवीं मंज़िल पर रहने वाले देवव्रत दत्ता यही कहते हैं- ''यू आइदर लव बॉम्बे और हेट इट -बीच में कुछ नहीं!'' दत्ता एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में चीफ़ मार्केटिंग मैंनेजर हैं। घर के पुराने पैसे वाले हैं। गाड़ी के नीचे कभी पैर नहीं रखा लेकिन हाईवे से आते आते एक बार विक्रोली के पास इनकी नईं इश्कोडा ने जवाब दे दिया। गाड़ी बंद पड़ गयी और वजह किसी की समझ में न आयी। मई की दोपहर थी। मजबूरी में ऑटो रिक्शा लेकर विक्रोली से लोकल पकड़ कर वापसी करनी पड़ी। गाड़ी ड्राइवर टो कराकर आता रहता।

विलास शेट्ये, जेठा भाई देसाई और सुभाष भाई मीणा तीनों मुलुंड में रहते हैं, शेट्ये और सुभाष ईस्ट में, जेठा भाई वेस्ट में। तीनो रोज़ सुबह मुलुंड स्टेशन साढ़े नौ तक पहुँच जाते हैं। जो लोकल ठाणे से दस बज कर दो मिनट को छूटती है वह मुलुँङ से ठाणे के लिए नौ चालीस पर गुज़रती है। ये तीनों एक ही स्टेशन पर, एक ही गाड़ी में एक ही डिब्बे में रोज़ मिलते/चलते हैं इसलिए एक दूसरे के दोस्त हो गए हैं। इस गाड़ी में इसलिए आते हैं ताके जब ठाणे में गाड़ी ख़ाली हो जाये तो इन्हें बैठने की जगह मिल सके, वरना गाड़ी तो ये मुलुंड से भी पकड़ सकते हैं लकिन तब पूरे रास्ते ठाणे से चढ़ी पब्लिक के चलते इन्हें खड़े रहना पड़ेगा। इन तीन के आलावा गाड़ी के डिब्बे में ठाणे से रास्ते भर में तमाम स्टेशनों से आने वाले भी आपस में दोस्त बन गए हैं। कोई किसी को सीट दे देता है, कोई सबके लिए चॉकलेट लेता आता है, कोई अपने घर में हुई पूजा का प्रसाद बांटता है। सबको सब के प्रोग्राम, घर वालों, बीमारियों, तकलीफ़ों, शौक़ों, खुशियों इत्यादि सब का पता है। यही लोग स्कूल के दोस्तों के बाद इस दौर के इनके असली दोस्त हैं। एक दो दिन कोई न मिले तो सब व्हाट्स एप्प पे हाल पूछने लग जाते हैं! हर एक की अपनी स्पेशलिटी है। सुभाष भाई पचास पार कर चुके हैं और लड़कियों के ज़बरदस्त शौक़ीन हैं। इनके पास ऐसी लड़कियों और होटलों के तमाम नंबर 'सेव्ड' हैं। जेठा भाई उम्र में सबसे बड़े हैं- सत्तर के आस पास! बाक़ायदा रोज़ बिला नागा ऑफ़िस जाते हैं और शाम को सात बजे-जिस समय लोकल में बेतरह भीड़ होती है- वापस आते हैं! ''पुल चढ़ने उतरने में बहुत तकलीफ़ होता है'' वे हमेशा कहा करते हैं.....और फिर अचानक ही जोड़ देते हैं, ''पर क्या करेगा घर बैठ बैठ के....कंटाल आता है!'' प्रॉब्लम ये तो है ही, प्रॉब्लम ये भी है कि दस बाई दस के एक कमरे और किचेन के फ़्लैट में ये, इनकी पत्नी, इनका बेटा, बहु और उसकी एक बच्ची सब साथ रहते हैं। तो जो घुटन होने लगती है उससे भागने के लिए ऑफ़िस जाने से बेहतर और कोई रास्ता नहीं है। ऑफ़िस के मालिक को भी यह सूट करता है क्योंकि जेठा भाई जैसा पुराना विश्वासी और सधा हुआ अकाउंटेंट दस हज़ार रूपये माहवार पर उसे कहाँ मिलेगा!

-''हे घ्या....!'' शेट्ये ने एक एक कैड्बरीज़ एक्लैर सब साथी मुसाफ़िरों को दिया। बग़ल में एक अजनबी बैठा था उसको भी दिया।

-''ये क्या!....नईं नईं...आपलो.....'' अजनबी ने तकल्लुफ़ किया।

-''अरे ले लो....'' जेठा भाई ने उसे मनाया, ''लेलो....ये कंजूस आज चॉकलेट दे रहा है....आज छोड़ने का नईं!'' सब हंस दिए।

-"तुम बड़ा साहूकार है...." सुभाष भाई ने उलाहना दिया," तुम महीने भर से वड़ा लाने वाला है, आज तक लाया नईं। ये कम से कम चॉकलेट तो लाया!"

नोंक झोंक, उलाहने, हंसी मजाक़-सब कुछ लोकल में!

बम्बई में बारिश अमूमन जून के प्रारम्भ में शुरू हो जाती है लेकिन उस साल जून के आख़िरी दिन थे और बारिश का नाम नहीं था। तेज़ तेज़ हवाएं चलती थीं, बादल हो जाते थे, घटा घिर आती थी, थोड़ी थोड़ी बूँदें पड़ जाती थीं लेकिन जिसे बारिश कहें वह नहीं होती थी। उस दिन जब शेट्ये, जेठा और सुभाष ने गाड़ी पकड़ी तब बादल थे मगर मौसम ठीक था। दोपहर तक घटा घिर आयी। दो बजे से मूसलाधार बारिश शुरू हो गयी। हो गयी और बढ़ती ही गयी। पांच बजे तक नालियां भर गयीं, गाड़ियों की रफ्तार कम हो गयी। सात बजते बजते लोकलें अनिश्चित कालीन लेट होने लगीं और चलती गाड़ियां रुक रुक कर आगे बढ़ने लगीं। शेट्ये सेकंड क्लास में सीटों के बीच तीन इधर और तीन उधर लोगों से पिसे हुए खड़े थे। गाड़ी को मस्जिद से भायखला आने में पैंतालीस मिनट लग गए। फिर चिंचपोकली आते आते गाड़ी के अंदर की लाइट और पंखा चले गए, गाड़ी खड़ी रह गयी। चार घंटे यही हाल रहा। उमस ने जो कुछ बचा था वो भी कसर निकाल दी! बारिश के कारण डिब्बे के दरवाज़े खिड़कियां बंद थे और ये लोग कहाँ हैं यह भी किसी को पता नहीं था। जिसके पास पीने का पानी था समाप्त हो चुका था, खाने का तो सवाल ही नहीं था। एक पांच साल के क़रीब का बच्चा था किसी का जो रो रोकर हिचकी मारते मारते सहमा सहमा बेहोश सा हो चुका था। कई लोग अपने पैरों में पेशाब कर चुके थे (जो बरसते पानी के गीले पन की वजह से किसी को पता नहीं चला)। सेल फ़ोन के सिग्नल ऑफ़ थे और आगे का किसी को कुछ मालूम नहीं था-प्लेटफॉर्म हो तो कोई उत्तर जाये, मालूम करे! वो गाड़ी और और भी तमाम गाड़ियां उस दिन अठारह घंटे जगह जगह बीच रास्ते में फँसी रहीं। जिनकी गाड़ियां प्लेटफ़ॉर्म पर रुकीं वे भी उतर तो गए लेकिन उन्हें न कोई सवारी मिली, न होटलों में खाना न पानी।

लघु एनीमेशन फ़िल्मों के लिए पिछले साल के राष्ट्रीय पुरूस्कार विजेता श्री राम चंदावरकर को लोकल पर ही भरोसा है। वे न गाड़ी रखते हैं न रखना चाहते हैं। घर से स्टेशन आने के लिए कोई दो पहिया भी नहीं! शायद अपनी मामूली आमदनी में वे अफ़्फोर्ड न कर पाते हों! वे जिस कंपनी के साथ सम्बंधित हैं वह माहिम इंडस्ट्रियल एस्टेट के एक गाले में है। श्रीराम का हृदय बहुत कोमल है और ग़रीबों के लिए इनके दिल में अपार स्नेह है। एक दिन की बात है रात के दस के

आस पास का समय होगा ये चर्चगटे से अँधेरी लोकल में बैठे। बग़ल में बड़ी सी ख़ाली टोकरी लिए एक मामूली सा लगता आदमी आकर बैठ गया। पहले तो इनको लगा ये बेचारा ग़लती से फ़र्स्ट क्लास में आ गया है और पकड़ा गया तो इसका चालान हो सकता है। इन्होने मुस्कुरा कर उसकी ओर देखा। उस अधेड़ आदमी ने अपने सर से साफ़ा नुमा उतारा, मुस्कुराया और उसने एक इत्मीनान की सांस छोड़ कर माथे का पसीना पोंछा।

-''थक गए हो!'' चंदावरकर ने सहानुभूति पूर्वक कहा।

-''ये तो रोज़ का है!''

-''क्या करते हो?''

-''ट्रेन में समोसे बेचता हूँ।''

-''ओह....ठीक ठाक आमदनी हो जाती है?''

-''एक रूपया समोसा मिलता है...दिन में क़रीब तीन साढ़े तीन हज़ार समोसे बेच लेता हूँ।''

चंदावरकर की आँखें खुलीं। याने जिस पर वे दयावान हो रहे थे ये महीने में कम से कम नव्वे हज़ार के ऊपर कमा लेता है! उन्हें अपने ख़ुद पर ग्लानि हुई- कहाँ ये, और कहाँ वे, जो महीनो झख मारकर इसका एक चौथाई भी नहीं कमा पाते!

-''आप क्या करते हो?'' समोसे वाले ने पूछा।

-''मैं...'' ये सोचकर कि ये आदमी एनीमेशन क्या समझेगा, चंदावरकर ने कहा, ''मैं तस्वीरें बनाता हूँ!''

-''अच्छा....राम सीता साई-बाबा वाली!''

जब तक समोसे वाले की बात श्रीराम चंदावरकर के रजिस्टर होती लोकल एक झटके से एकदम रुक गयी। फिर काफ़ी देर तक वहीं बीच अँधेरे में खड़ी रही। कारण किसी की समझ में कुछ नहीं आया। थोड़ी देर बाद नीचे डिब्बे के बग़ल से एक स्टेचर पर कुछ लोग ख़ून में लिपटे किसी को ले जाते हुए दिखे। एक मुसाफ़िर ने जम्हाई लेकर कहा, ''एक्सीडेंट!''

-''सुसाइड भी हो सकता है!'' दूसरा बोला।

तीसरा बड़ी देर से परेशान बैठा था, उसका ग़ुस्सा फूटा, ''स्साले को इसी लोकल से कटना था!....बीस मिनट में बोरीवली से मेरा बाहर गाओं का ट्रेन है.. .छूट गया तो मेरा कितना प्रॉब्लम हो जायेगा!''

बिनिया

झाँसी का झारखड़िया मोहल्ला बिनिया का इलाक़ा था। सारे घरों का मैंला वही उठाती/साफ़ करती थी। बायीं कांख में डलिया और दाएं हाथ में झाड़ू/खुरपा लिए जिस आत्मविश्वास और शान से वह चलती थी अच्छे अच्छों की उससे कुछ कहने की तो क्या बात करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। बिनिया जवान थी, दिखने में साँवली लेकिन ग़ज़ब के लोच और गठन वाले बदन की थी। आँखें उसकी रत्ती भर ही सही लेकिन ज़रा ऐन-ग़ेन थी लेकिन इसके बावजूद बिनिया जब बन संवर कर कभी मेले तमाशे में दिख जाती तो जवान होते लौंडे आपस में तो कह ही उठते- ''क्या ग़ज़ब का नमक है यार! ''जिसका जवाब भी उनमें से कोई दे ही देता- ''अबे इनकी जनानिया बहुत सुन्दर होती हैं।'' ज़माना बदल रहा था। यूनियन जैक उठा कर तहा कर रख दिया गया था और तिरंगा चढ़ा दिया गया था। अब तक सूट पहने गुड मॉर्निंग कहने वाले अब खद्दर पहन कर हाथ जोड़ कर नमस्ते करने लगे थे। अँगरेज़ जो कुर्सी ख़ाली कर के गया था उस पर बिला कोई समय बर्बाद किये अपने लोग बैठ गए थे और अंग्रेज़ी में देश की तरक़्क़ी के क़सीदे पढ़ते हुए इलेक्शन जीत कर आवाम की सेवा करने को आतुर थे। लोगों में भी बदलाव था और लोगों की आदतों, रहन-सहन में भी। झड़ू पाख़ाने धीरे धीरे बदल कर पानी बहा कर साफ़ करने वाले किये जाने लगे थे। तो जो पाख़ाने साफ़ करते थे अब सिर्फ़ कचरा उठाने और नालिया साफ़ करनेके लिए हो गए। बिनिया की उम्र भी ढलने लगी थी सो उसने काम बंद कर दिया।

जब सब कुछ बदल रहा था तो सियासत भी बदल रही थी। प्रजातंत्र था तो प्रजा की संतुष्टि सर्वोपरि थी। नेताओं का मानना था कि ''जिस बात से वोट मिलें वो करो, देश तो जब हम हैं तो चल ही जायेगा।''

-''आंबेडकर को याद कीजिये!''

-''आज तक तो न किया। अब क्या....'' दूसरे ने मज़ा लिया।

-''वे आज देश की ज़रुरत हैं।''

-''क्यों? आज क्या है?'' दूसरा फिर टपका

-''अरे चुप करो।'' पास बैठे एक ने चुप कराया, ''झारखड़िया जी को बोलने दो।''

श्याम स्वरूप झारखड़िया, राजनैतिक पार्टी के सर्वे सर्वा थे। वकील थे। शहर के बड़े गणमान्य थे, उनके बाप दादों के नाम से पूरा मोहल्ला था। उन्होंने अपनी बात जारी रखते हुए कहना शुरू किया- ''आंबेडकर को याद कीजिये। ....एक बहुत बड़ा वर्ग है समाज का जो सदियों से पिछड़ा है और जिसके उत्थान का बाक़ायदा संविधान में प्रावधान कर के रखा हुआ है।....हम सबसे बड़ी पार्टी हैं, इनके बारे में सोचना हमारा दायित्व है।''

तालियां पिट गयीं।

-''तो मैंने सोचा है कि इस बार से शहर का मेयर-जो शहर का फ़र्स्ट सिटीज़न समझा जाता है—उसे महिला कुर्सी घोषित कर दिया जाये।'' श्यामजी ने कहा। सब ने ज़बरदस्त तलियाँ बजा दीं। 'वैरी गुड' के नारे लग गए।

संविधान का बहाना था। सच्चाई यह थी कि पार्टी वालों ने पिछले कई कई सालों से सिर्फ़ सत्ता सुख भोगा था, किया कुछ नहीं था इसलिए लोग बुरी तरह नाराज़ थे और इस बार इनके जीतने का कोई चांस नहीं दिखता था। पिछले कई सालों से मेंबर्स आपस में या तो लड़ते रहे थे या एक दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ में रहे थे। ''प्रजा'' इस सब से अवगत थी और इस बार मन बना चुकी थी कि 'इन्हें नहीं लाना है'। श्याम स्वरुप जी को इसका एहसास था। लेकिन वे घुटे हुए राजनीज्ञ थे। इलेक्शन सर पे थे और वे जानते थे इस बार उनकी पार्टी का जीतना मुश्किल है। इसलिए उन्होंने ये 'लेडीज़ चेयर' का मुद्दा उछाला था। क्योंकि कुछ ऐसा करना था जिससे इनकी साख भी रह जाये, जो जीते वह इनके इशारे पे काम करे और इनके सत्ता सुख भोगने में कोई प्रावधान भी न आये।

-''रिज़र्व तो ठीक है पर लड़वाओगे किसे?''

-''दोधारी खेल खेलूंगा बेटा!'' श्याम जी ने ताली बजा कर कहा, ''एक तो महिला और दूसरा किसी नीची जाति की महिला! काम भी हो जायेगा और नाम भी हो जायेगा।''

-''मतलब?''

-''रेज़र्वेशन का ज़माना है सो किसी नीच जाति की महिला को पकड़ो।''

-''नीच जात?''

-“नीच ज़ात? मत कहो....सज़ा हो जाएगी।”

-“सच न बोलें?”

-“नहीं....हम ह्यिपोक्रेट लोग हैं पहले शूद्र था फिर हरिजन हुआ अब दलित हो गया है। इसलिए दलित बोलो।”

-“दलित भी तो वही बात है!”

-“चलो जो भी है, लेकिन ये बात ठीक है, हम दलित समर्थकों में भी आ जायेंगे और जिसे जितवाएंगे वो भी हमारे इशारे पे काम करेगा।”

-“लेकिन दलित एक ब्लैंकेट शंब्द है। मैंलावाले, चर्मकार कोरी, कुर्मी, नाई धोबी किसे लड़वाना चाहिए?” एक ने पूछा।

-“सबसे ज़्यादा त्रासदी किसने भोगी है.....जिन्होने मैला ढ़ोया है ने न..... तो उन्हें ढूंढो।”

श्याम जी की बात सबने मान ली।

बस्तियां खंगाली गयीं। कोई बूढा था, कोई इंटरेस्टेड नहीं था, कोई कोई नौजवान थोड़ा पढ़ पढ़ा चुके थे सो नौकरी में ज़्यादा रूचि रखते थे। सुई जहाँ जा कर अटकी वो थी बिनिया-न बूढ़ी थी न एकदम जवान-पचास के आस पास की उम्र थी, दिखने में ‘प्रेसेंटेबल’ थी, उसका अंदाज भी ‘नो नॉनसेंस’ था और उसकी इमेज़ भी बेदाग़ थी। वह शहर से और शहर का बहुत सा हिस्सा उससे-वाक़िफ़ थे।

-“काय? हमें का आत है जो तुम आये हमाये पास नैक्सन लड़वावे ?”

-“नैक्सन नहीं इलेक्शन!”

-“वोई वोई।”

-“तुम्हें ऐतराज़ का है?”

-“अरे हम का जाने तुमाए जे काम काज।”

-“वो सब हम सिखा देंगे।”

-“तो तुमई काय नईं लड़ लेत....हमें काय फंसा रये?” बिनिया न मानी।

उसके पति ने कहा, “लड़ लियो! तुमाओ का जात!”

-“हओ लड़ लें....तुमई न लड़ लियो!” बिनिया के जवाब ने उसे भी चुप कर दिया।

सात दिन हो गए। दूसरा कोई ठीक ठाक जचा नहीं था। बस्ती में ख़बर फैल गयी थी कि बिनिया कितनी महान है, दुनिया उसे ‘नैक्सन’ लड़ने को मना रही है लकिन वह मान नहीं रही। सब कहते थे- ‘लड़ तो ले, हमाओ वोट पक्को!’ बिनिया न मानी

पार्टी वालों ने 'हाई कमान' से इस सीट को रिज़र्व करवाने की स्वीकृति ले रखी थी और शहर में इस बात की हवा फैल गयी थी। फैल तो बिनिया के मना करने की भी गयी थी। जब नामांकन दाख़िल करने में हफ़्ता भर बचा था श्याम जी का सर दर्द बढ़ गया। उनसे कहा गया, ''आप स्वयं जायेंगे तो शायद बात बन जाये।''

-''उस बस्ती में?''

-''तो क्या हुआ?''

-''एक बार गये तो कौन अपवित्र हो जायेंगे ! हो जायेंगे तो रखा है गंगा जल, छिड़क लेना!....हं हं हं हं!''

श्याम स्वरूप को जाना पड़ा।

रास्ता नईं बस्ती से हो कर जाता था। नईं बस्ती के मुहाने पर सड़क संकरी थी सो उनकी अम्बेसडर गाड़ी को वहीं खड़ा करना पड़ा। वहां से क़रीब दो फ़र्लांग धूल मिटटी में पैदल और फिर दायीं तरफ़ को गली में जा कर बस्ती थी। गली में घुसते साथ उन्होंने अपनी कलफ़ की हुई सफ़ेद धोती को बाएं हाथ से ज़रा ऊपर कर लिया और अपने दाएं हाथ में कुर्ते की जेब से निकाल कर पकड़ लिया रुमाल-बदबू आयी तो!

वे अपने बाटा वाले पम्प शू की पॉलिश बचाते बचाते किसी तरह पहुंचे तो बस्ती में तमाम लोग इधर उधर हाथ जोड़ते हुए भीड़ करने लगे। कुछ बच्चे जाकर बिनिया को ख़बर कर आये।

-''देख बिनिया!'' श्याम जी ने आस पास देखकर अपने बुज़ुर्गाना अंदाज़ में कहना शुरू किया,''तोये मालूम है....हमारी तीन पीढ़ियां देश की सेवा में गयीं हैं. ...हम वकीली में भी गरीबन से फ़ीस नहीं लेते हैं.....सब जानत हैं''

-''हम जानत हैं साहब.....तुम्हारा मोहल्ला हमारे इलाके में रहा।''

-''तो फिर आज हम ख़ुद आये हैं....मना मत करना....''

-''अरे हम पढ़े लिखे तो हैं नहीं हम का जानेंगे तुमाए काम काज।''

-''रैदास पढ़े थे? कबीर पढ़े थे? वाल्मीकि पढ़े थे?....ऐं?....पढ़े लिखे से का होत है....सेवा का जज़्बा होना चाहिए.....सो वो तुमसे ज्यादा कौन जानेगा?''

पंद्रह मिनट की जिरह और समझाई बुझाई का नतीजा ये निकला के अनमने ही सही, लिहाज़ में ही सही बिनिया मान गयी। लौटते वक़्त गाड़ी में बैठते समय श्याम जी ने अपनी धोती पर नज़र मारी और सहयोगी से पूछा, ''देखना पीछे कुछ लगा तो नहीं है!'' सहयोगी ने हाथ से कुर्ता झाड़ा, ''सब स्वच्छ है!''

नामांकन भर दिया गया। पोस्टर छपवा दिए गए। रैलियों भाषणों का इंतजाम कर दिया गया। श्यामजी सारा ज़िम्मा स्वयं संभालते थे। उन्होंने और उनकी पार्टी वालों ने सेवा के नाम पर पिछले कई कई सालों में धेला नहीं किया था सो वे जानते थे कि उन से लोग नाराज़ हैं, अब ये महिला और वह भी दलित महिला का कार्ड खेल कर उन्होंने समाज में और अपनी पार्टी दोनों में अपनी साख दोबारा क़ायम करने की युक्ति लगाई थी उसका कामयाब होना उनकी अपनी ज़िम्मेदारी भी थी और मजबूरी भी थी। हालाँकि ज़्यादा मेंहनत करना ही नहीं पड़ी। नीची जात वालों के एक मुश्त वोट और श्यामजी की पार्टी के तक़रीबन 90% वोट जहाँ पड़े बिनिया का जीतना तय। क्योंकि आख़िरी वक़्त में इस सीट को दलित महिला सीट घोषित किया गया था इसलिए किसी और पार्टी को ठीक ठाक कोई दूसरी प्रत्याशी मिली नहीं। जो मिली वह थी एक तेली की पत्नी लेकिन उसकी शहर में बड़ी बड़ी दुकानें थीं और वे बहुत पैसे वाले थे- कहते थे उन्होंने पैसे दे कर अपनी पार्टी से टिकट लिया था। जो भी हो लेकिन वह महिला लोगों के मन में अपने लिए सहानुभूति पैदा न कर पायी। बिनिया ने भाषणों में माइक पर अपनी बुंदेली भाषा में सीधे सादे कहा, ''हमें भासा ज्ञान न आहे, न हमें तुमाए जे काम काज मालूम....मगर हमें जे मालूम है कि मैला साफ़ करे से साफ होत है, पड़ा रेन देओ तो सड़ात है....और अब तक जो नेता रये सब गंदगी साफ नईं करत रये, सड़ात रये!'' लोग उसकी बातों से मुतमइन हो गए। बिनिया जीत गयी।

शुरू शुरू में उसे अपनी सरकारी गाड़ी/ड्राइवर /दफ़्तर से बहुत अजीब सा लगा और जब कुर्सी पर बैठने की बात आयी तो उसे बैठते हुए बहुत शर्म, संकोच और बेसाख़्ता हंसी आयी। हफ़्ते भर में थोड़ी थोड़ी आदत पड़ने लगी और फिर श्याम बाबू और उनकी पार्टी वालों ने उसे वो काम सुझाना शुरू किये जो उनके हित के थे और बहुत दिनों से लटके पड़े थे। बिनिया ने कहा, ''हमाओ काम का है? ड्यूटी का है?''

-''अरे चिंता न करो वो हम सब बताते रहेंगे।'' पार्टी वाले नेताओं ने कहा। बिनिया जानती थी कि ये वो ही लोग हँ जो कल तक उसे हेय समझते थे,आज उसकी चापलूसी कर रहे हैं- सो ज़ाहिरन इनका कोई मतलब होगा! उसने कलक्टर से मुलाकात की- नया नया आया था, नौजवान था और अंग्रेज़ी में पला बढ़ा था उसने इस गँवार बिनिया को कोई ख़ास तवज्जो नहीं दी। फिर वो मिली कमिश्नर से। कमिश्नर गीता सहाय बुज़ुर्ग थीं, उनकी ये शायद आख़िरी पोस्टिंग थी। उन्होंने बिनिया को समझाया कि क्या क्या काम उसके दायरे में आते हैं। शहर की सफ़ाई,

पानी, सड़कों की देखभाल इत्यादि। दुसरे दिन बिनिया ने मीटिंग बुलाई और तय किया की सबसे पहले शहर में जितना भी अतिक्रमण है उसे हटाया जाये और इस काम का ज़िम्मा उसने खुद लिया। ''हम खुदई चलेंगे साथ में...सहर में हम बरसों घूमे हैं, हम जानते हैं किसने कितनी जगह दबाई है। सड़कें छिड़ियाँ बन के रह गयीं हैं।''

शुरुआत हो गयी। किसी के दासे, किसी के चबूतरे, किसी की सीढ़ियां,किसी किसी के तो कमरे तक तोड़े जाने लगे। हाहाकार मच गया। कुछ ने पुलिस में रिपोर्ट लिखवाई, कुछ श्याम जी के पास फ़रियाद लेकर पहुँच गए। अख़बारों ने पीड़ितों की तस्वीरें छापीं। श्याम जी ने फ़ौरन फ़ोन लगाया। जवाब मिला मेयर साहिबा 'फ़ील्ड में हैं'। शाम को मिलीं।

-''ये क्या कर रही हो बिनिया?'' श्याम जी ने पूछा।

-''जे सबने दबा दबा के सड़कें घेर लईं...इतनी संकरी हतीं का कभऊं.... चलना मुश्किल हो गया है....तुम तो जानत हो।''

-''अरे लेकन सब्र करो...तुम तो आते साथ ही.....''

-''काल कर सो आज कर....सबर का करने....''

श्याम जी ने,पार्टीवालों ने और ऑफ़िस के सहयोगियों ने लाख समझाया बिनिया न मानी। पार्टी के तमाम दिग्गजों ने जो अवैध दुकाने/मकान बना रखे थे - इस ज़ौम में कि 'हम तो नेता हैं, हमारा कौन तोड़ेगा' उन सब की आँखों में खून उतर आया। आपातकालीन मीटिंग बुलाई गयी।

-''और लाओ एक भंगन को....बता दी ने उसने अपनी ज़ात!'' एक नगर सेवक ने अपने तम्बाकू भरे मुंह से उगला।

-''ए...ए....'' उधर से एक ओ.बी.सी. नेता ने लाल आँखें दिखा कर चेताया, ''भंगन किसे बोलै बे....तू साले बड़ा पंडत बन रिया...तुम ही लोग कल सिफारिश कर रहे थे बिनिया को इलेक्शन लड़ाने की....दलित वार्ड बनाएंगे! दलित को जिताएंगे! अब जब वो काम कर रही है तो रोने लगे। असल में तो तुम बेईमान हो।''

-''क्या बोला बे....'' पहला अपनी कुर्सी से उठा और पीक थूक कर दूसरे की तरफ़ बढ़ा।

हाथापाई होते होते बची।

-''देखो....देखो....'' श्याम जी ने सम्भालते हुए कहा, ''बहुमत से इसे हटा देते हैं.....''

-''और इसकी जगह किसे लाओगे? पब्लिक में क्या कहोगे?''

ये आपस में लड़ते रहे, बिनिया अतिक्रमण तोड़ती रही। फिर लाया गया स्टे आर्डर। काम रुक गया। ज़िला नगर निगम के चारों ओर पार्टी वालों ने घेरा डाल लिया, हड़ताल पर बैठ गए- जिनका कुछ नहीं टूटा था उन्हें भी शामिल कर लिया गया।

और इस धरने प्रदर्शन में अतिक्रमण हटाने या उससे उपजे ऐतराज़ का कहीं ज़िक्र नहीं था। इस प्रदर्शन में मुद्दा बनाया गया एक करोड़ रूपए की गड़बड़ी का। गड़बड़ी के लिए बताया गया कि जो पैसा अतिक्रमण हटाने में ख़र्च हुआ वह बहुत ज़्यादा था, उसकी स्वीकृति नहीं थी,वह किसी और हिसाब से अवैध रूप से निकाला गया था और सबसे बड़ी बात ये कि उस पैसे में से 71% बिनिया ने अपने पल्लू में धर लिया। बिनिया ने उसी समय कुर्सी छोड़ने का ऐलान कर दिया। बिनिया कुर्सी छोड़ दे तो श्याम जी की पार्टी को साबित करना पड़ेगा के एक करोड़ खाया है। वो करेंगे कैसे। इसलिए सबने मिल कर युक्ति लगाई और बिनिया को समझाया। -''अरे ऐसे कैसे?....अभी छोड़ दोगी तो लोग कहेंगे सारे इल्ज़ाम सच हैं....मामले की जांच हो जाने दो सब साफ़ हो जायेगा।'' ऐसा ही कुछ आसपास के लोगों और हितैषियों ने भी समझाया। बहरहाल, ग़बन का केस बनाया गया था। ग़बन था नहीं लेकिन केस बनाने में क्या जाता है! इन्क्वायरी में कुछ निकले न निकले अभी तो इसकी 'नकेल' कस दी जाये! एक.एफ.आई.आर. दर्ज करवाई गयी, अदालत में दरख़्वास्त लगाई गयी। अदालत को संज्ञान लेना पड़ा। बिनिया को पूछ ताछ के लिए हवालात ले जाया गया।

शहर में ख़बर आग की तरह फैल गयी।

शहर के आम लोग अतिक्रमण हटाए जाने और सडकों की बहाली से बेहद राहत महसूस कर रहे थे और मन ही मन इस बात से खुश थे कि जिन पैसे वालों/नेताओं ने ज़मीन दबा रखी थी उनकी हेकड़ी टूट गयी। मुद्दतों के बाद बिनिया जैसा ईमानदार कोई आया था जो सही काम कर रहा था। लोग उसे इस तरह घेरने की बदमाशियो से रुष्ट हो गए।

बिनिया को हवालात क़रीब बारह के आस पास ले जाया गया होगा। शाम के तीन बजते बजते इलाइट टॉकीज के पास वाली पुलिस चौकी के चारों ओर पब्लिक जमा होने लगी। चार बजे तक पुलिस स्टेशन घेर लिया गया। पुलिस ने समझाया, फिर धमकाया और आख़िर में गोली चलाने के आदेश का भभका दिया ''चलवा दो.....''लोग बोले, ''लेकिन एक मुद्दत के बाद शहर को एक ईमानदार

काम करने वाला मिला है, उसने शहर में निस्स्वार्थ काम किया है, उसे छोड़ दो ! ये केस झूठा है। उसने कोई ग़बन नहीं किया।'' पुलिस लाइन पास में थी। सुपरिंटेंडेंट साहेब आ गए। उन्हें घेर लिया गया। उन्होंने कहा, ''हम क्या कर सकते हैं.....कंप्लेंट लिखवाई गयी है। जिसने लिखवाई है वह वापस ले ले तो हम छोड़ दें।'' लोग गए श्याम स्वरुप झारखड़िया के घर। भीड़ देख कर श्याम जी डर गए। वे बोले पार्टी का फ़ैसला है।

-आप जानते हैं बनिया निर्दोष है और ईमानदार है।'' ''भीड़ ने एक सुर से कहा।''

-''उस पर एक करोड़ के ग़बन का केस है!''

-''झूठा है।''

-''अदालत फ़ैसला करेगी, मैं क्या कर सकता हूँ।''

-''आप कंप्लेंट वापस लीजिये।''

-''पार्टी से पूछना पड़ेगा।''

-''फ़ोन लगाओ। हम खड़े हैं और अभी केस वापस लो। पुलिस में भी अदालत में भी।''लोगों की आवाज़ में तुर्शी आ गयी।

श्याम जी को इज़्ज़त जाती दिखी। इन्हें कंप्लेंट वापस लेनी पड़ी।

बिनिया ने कहा हमें काम नहीं करना। उसने इस्तीफा दिया। लोगों ने कहा, ''आप लोगों के हित में काम कर रही हैं....आप न जाइये। पूरा शहर आपके साथ है।'' लोगों ने उसे इस्तीफ़ा नहीं देने दिया।

शाम को एक समाचार पत्र वाला इंटरव्यू करने पहुँच गया।

-''आपको इसलिए फंसाया गया क्योंकि आप दलित वर्ग से हैं?''

-''हमें लाये भी इसीलिए थे कि हम दलित वर्ग से हैं।

-''तो फिर ऐसा क्या हो गया?''

-''जिन लोगन को कुछ मिल जाता है वे हमेसा और की जुगाड़ में रहते हैं-बेईमानी की हदों तक। जब उनका उस लूट में से कुछ छिन जाता है तो उनमें हड़बड़ाहट पैदा हो जाती है। सो हो गयी। जिनका टूटा वे बौखला गए।''

-''आपका गुस्सा ऊंची जात वालों पर है?''

-''जात का होती है?। बाहमण के घर में भी शूद्र पैदा होते हैं और शूद्रन के घर भी पंडित पैदा होते हैं। कौन कैसा है ये अपनी अपनी प्रकृति की बात है। जात पांत का काम इन राज नेताओं को करने देओ...अपन अपना काम करो।''

ट्रायल

दुनिया जिसे जीवन कहती है उसका दूसरा नाम ट्रायल भी हो सकता है! क्योंकि जीवन ट्रायल है- हर बात में, हर चीज़ में, हर गाम पर ट्रायल-हर एक का! और ये ट्रायल भी त्रिरूपी है- शास्त्रों में लिखे अनुसार भी और सामान्य रूप से जो दिखता है उस हिसाब से भी! एक है वह ट्रायल जो भाग्य किसी के साथ करता है, दूसरा वह जो समाज और सामाजिक मूल्य किसी के साथ करते हैं और तीसरा वह जो लोग अपनी भावनाओं/इच्छाओं /कुंठाओं या शाबाशियों के हिसाब से स्वयं के साथ करते हैं। अदालतें समाज के क़ानूनों के हिसाब से ट्रायल करने वाली जगहें हैं!

यह मुकदमा हाई कोर्ट के चैम्बर नंबर पाँच में चल रहा था। केस को सुनने वालों की तादाद कमरे की चार दीवारी से कहीं ज़्यादा फैल गयी थी। मीडिया के जितने प्रकार हो सकते हैं सब मौजूद थे। बाहर टी. वी. चैनलों वालों की डिश लगी वैन्स खड़ी थीं- दर्शकों को ये जताने के लिए कि कोर्ट में आज जो हुआ वो 'सबसे पहले आपको हमने दिखाया'! 'स्टेट वर्सिस सलमा' मुक़दमे के बारे में देश भर जानना चाहता था।

-''फ़ैसले इमोशनल बेसिस पर नहीं होते!'' जज ने हथेली से मेज़ पर जैसे थप्पड़ मारा।

-''रॉन्ग योर ऑनर....रॉन्ग!''

-''हाउ डेयर यू....''

-''बिकॉज़....क़ानून की बुनियाद ही इमोशनलिटी है। क़ानून बनते ही सोसाइटी की इमोशनल ज़रूरतों और जज़्बात को देखकर हैं। समाज की इमोशनलिटी और सेंसबिलिटी को हर्ट होने से बचाने के लिए ही तो क़ानून बनते हैं.....और फ़ैसला अदालतों में इन्हीं क़ानूनों के अन्तर्गत होता है। तो ऐसा कैसे मान लिया जाये कि फ़ैसले इमोशनल बेसिस पर नहीं होते!''

-''ये अदालत है एडवोकेट धीर...लफ़्ज़ों से खेलना बंद कीजिये।''

-''योर लॉर्डशिप मैं तो आपके सामने तथ्यों को रख रहा हूँ और ये साबित करने की कोशिश कर रहा हूँ कि मेरी क्लाइंट दर असल बेगुनाह है।''

-''इसने ख़ून किया है......ये ख़ूनी है...इस बात को कैसे नकारा जा सकता है?!''

सलमा बाईस साल की वो लड़की थी जिसका नाम सलमा नहीं था। ये बात और है कि अब जानी वो इसी नाम से जाती थी। उसका असली नाम शान्ता कुशवाहा था और ये शायद वो ख़ुद भी अब भूल चुकी थी। शान्ता कह कर कोई यदि उसे बुलाता तो भी शायद वो रेस्पॉन्ड न कर पाती। इस शान्ता के सलमा हो जाने का सफ़र तेरह साल पुराना है। और यही वजह इस मुक़दमे के इतना पॉपुलर हो जाने की भी है।

बिहार के पूर्णिया ज़िले में एक थे हीरा लाल कुशवाहा। छोटी सी ज़मीन के टुकड़े पर धनिया और पालक उगाकर गुज़र करते थे। ज़मीन छोटी थी लेकिन पुश्तैनी थी और उससे गुज़ारा तो हो जाता था लेकिन मेहनत बहुत थी और उससे बस दाल रोटी की ज़रूरतों से ज़्यादा कुछ नहीं था। बीवी सहयोग करती थी। इधर उधर कंडे पाथ देना, लोगों के घरों में बरियाँ/पापड़ बनाने में मदद कर देना, शादी ब्याह में पूड़ी वूड़ी बेल देना...गुज़ारा चल रहा था। लेकिन चलती गाड़ी को रोक देना क़िस्मत के हाथ में होता है सो एक दिन कंडे पाथते पाथते सड़क के किनारे एक गबरू सांड किसी दूसरे से लड़ते लड़ते भागा भागा हीरालाल की बीवी की पीठ पर कुछ इस तरह आया कि उस का एक सींग सीधा कमर से होता हुआ पेट में घुस गया। सांड़ों की लड़ाई तो इस वजह से हालांके थम गयी लेकिन हीरालाल और उसकी पत्नी की लड़ाई शुरू हो गयी। गाँव में वैद्य हक़ीम ने जो जो दवा दी और जो जो लेप घर में बन पड़े वो लगाए गए। पंद्रह दिन में घाव सड़ने लगा और दस दिन बाद हीरालाल की पत्नी दर्द में चीखते चिल्लाते तपता शरीर लिए ठंडी हो गयी। रह गए हीरालाल और उनकी दस साल की बेटी- शान्ता- शन्नो !

-''बिटिया बड़ी हो रही है, तुम्हारे पास समय है नहीं....इ कहीं ग़लत हाथन में पड़ी न तो गया सब...'' अलग अलग शब्दों में एक ही बात दोस्त, एहबाब, पड़ौसी, रिश्तेदार सब ने कही। कुछ लोग तो सीधे सीधे रिश्ते भी ले आए। इसी चक्कर में बीवी की बरसी भी होने न पायी कि हीरालाल की दूसरी शादी हो गयी। नईं बहू देखने सुनने में तो अच्छी थी लेकिन थी बहुत नकचढ़ी। उसे पैसे से बहुत मोह था और हीरालाल की बेटी शन्नो से सख़्त चिढ़!

-''मर काहे न गयीं तुम अपनी अम्मा के संग!''

पहले तो शन्नो का स्कूल- जैसा भी था, था तो स्कूल ही-- छुड़वाया गया।

-''यहां समय गँवायेगी तो काम का करेगी?...दुइ पैसा कमाओ, हाथ बटाओ. ..समझीं!''

हीरालाल समझाते रहे लेकिन बहू न समझी। शन्नो घर के कामों में उलझी रहती और उसकी नईं माँ बाहर आराम से इधर उधर बतियाती इठलाती औरों के कामों में हाथ बटाती फिरती। शन्नो की सहेलियां छूट गयीं। ज़रा ज़रा लिखना पढ़ना सीख चुकी थी सो वो भी अब भूल चली। कभी बापू को अकेला पाकर उसके कंधे पर रो लेती थी लेकिन जब उसने देखा कि इससे कोई फ़ायदा तो है नहीं, होना वो ही है जो नईं माँ को करना है तो उसने रोना बंद कर दिया और इस सोच में लग गयी कि आख़िर इस नरक से, मार पीट से, ताने बाज़ी से, भूखे पेट रहने से छुटकारा कैसे पाया जाये। और तब ये सोच और शिद्दत पकड़ गयी जब माँ ने इस चौदह साला लड़की का ब्याह इसी गाँव के पचास साला एक काने से तय कर दिया। शन्नो की समझ में कुछ नहीं आया। हीरालाल की भी एक न चली और पक्यात का दिन मुक़र्रर कर लिया गया- 15 अगस्त!

-''हमहुँ आजाद, तुमहुँ आजाद...'' माँ ने शन्नो से हाथ जोड़ कर कहा।

14 अगस्त की रात को शन्नो घर से भाग गयी!

होने वाला दूल्हा गाँव के पंचों में था। दो बीवियां कर के छोड़ चुका था और बच्चा उसके एक नहीं था। दिमाग़ हद दर्जा राजनीति वाला रखता था- किसका कुलाबा कहाँ लगाया जाये, किसकी किससे लगा के अपनी कैसे बनाई जाये- इसलिए उसकी पंचों में पैठ बहुत थी। और पंचों में पैठ थी इसलिए गाँव के लोगों में भी 'पॉपुलर' था। सुबह सुबह जब उसने सुना कि उसकी होने वाली 'छुटनिया' बहू भाग गयी है तो उसने ख़बर देने वाले को चेहरा गड़ा कर दोनों आँखों का भान देते हुए एक आँख से घूरा, ''तो ढूंढो साली को। इत्ता सा गाँव है...जैहै कहाँ!''

रेलवे स्टेशन वहां था नहीं, सड़क पर इतनी आवाजाही भी नहीं थी, ले दे के एक बस अड्डा था सो वो भी रात के बंद होता था। बसें सुबह सात के पहले शुरू नहीं होती थीं। वहां भी देख लिया गया। शन्नो की माँ ने छाती पीटी। हीरालाल कुशवाहा ने पहली बार अपनी बीवी को भद्दी सी गाली देकर उस पर इसका दोष मढ़ा। 'काने' के लोग इधर उधर भागे लेकिन उनका तो कुछ गया नहीं था सो जितना ढूंढ लिया उतना बहुत हुआ। सुबह आठ तक जब कोई पता नहीं चला तो समझ लिया गया कि शन्नो 'अब गयी।' कोई जानवर आनवार उसे खा गया होगा!

हुआ ये था कि घर से निकल कर लड़की पहले तो गयी सड़क पर कि कहीं कोई शहर की ओर जाती लॉरी वॉरी मिल जाये और वो उसके साथ चली जाये। लेकिन एक तो वहां अँधेरा बहुत था और सुनती भी आयी थी कि वहां जंगली जानवरों से ख़तरा बना रहता है। सो डर के मारे शन्नो ने सोचा बस अड्डे जा कर देखा जाये। पहुंची तो देखा कि आस पास छुपने लायक कोई जगह नहीं थी। एक टिकेट बाबू की टपरिया थी लेकिन वो भी बंद थी। अगस्त का महीना था, अचानक बारिश शुरू हो गयी। वहां ले दे कर एक बस खड़ी थी जो शायद सुबह से पहले जाने वाली नहीं थी। बस का दरवाज़ा खोलना न उसे मालूम था न कोशिशों के बावजूद उससे खुला. ... हाँ! उसने एक खिड़की खुली देखी जिसमे जंगले नहीं लगे थे और जो खुली पड़ी थी- शायद आपातकालीन रही हो और उसके शीशे टूट चुके हों!.... शन्नो ने अपनी धोती ऊपर बाँधी और चढ़ गयी बस का हैंडल पकड़कर और कूद गयी उस खुली खिड़की से बस के अंदर। रोते, ठिठुरते, भगवान की चिरौरी करते करते जब पौ फटने को हुई तो मुसाफिर आने लगे। शन्नो एक सीट के नीचे दुबक गयी। बस में कोई छुपा होगा ढूंढने वालों को भी ख़्याल नहीं गुज़रा और चूँके सुबह की पहली बस थी- मुसाफ़िरों की भीड़ भी इतनी नहीं थी। चलते चलते एक रेल क्रॉसिंग पर बस जब रुकी और काफ़ी देर रुकी रही और जम्हाई लेते हुए कंडक्टर ने गर्दन जो मोड़ी तो उसे शन्नो दिखाई दी। उसने ताज्जुब ज़ाहिर किया और टिकिट के लिए पैसे माँगे। लड़की ने कहा स्टॉप पर उसके चाचा आ के दे देंगे। फिर जब किसी अजनबी शहर के एक बड़े से बस अड्डे पर बस रुकी तो शन्नो बस से निकल कर 'बिला गयी!' कंडक्टर तम्बाकू मलते हुए, ''चूतिया बना गयी साली!'' कहता रह गया!

-''इसका मतलब है लड़की शातिर और बदमाश है। वो धोखा देना, झूठ बोलना और बच निकलना अच्छी तरह जानती है।'' सरकारी वकील ने बात पकड़ी।

एडवोकेट धीरहंस दिए।

- ''इस हंसी का मतलब?'' जज ने त्यौरियां चढ़ाकर पूछा।

एडवोकेट धीर ने- जैसे अचानक देखा हो- अपने कोट के ऊपर से एक छोटा सा गोल गोल काला काला कीड़ा नुमा झटका जो जाकर सरकारी वकील के कोट के ऊपर गिरा। सरकारी वकील हड़बड़ा गया और उसने उसे फ़ौरन अपने कोट से झाड़ कर नीचे ज़मीन पर झटक दिया और उस पर जूते के तल्ले को पीटना शुरू कर दिया।

-''ये क्या हो रहा है? व्हाट हैव यू डन मिस्टर धीर?'' जज चिल्लाया।

-''योर ऑनर......मैं यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि मुसीबत में अक़्ल

अपने आप आदमी को बचने के तरीक़े सुझा देती है। सरकारी वकील साहेब जैन हैं और धर्म से भी ये किसी जीव जंतु को मारते नहीं हैं लेकिन इस समय ये छोटे से फ़ाइल के मोटे फ़ीते को कोई ज़हरीला कीड़ा समझ कर उसे मारने में लगे हैं। इस लड़की के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ.......अपनी बे-बसी, बेचारगी और परेशानी के समय में उसे इसके सिवा कुछ और नहीं सूझा। एक चौदह साल की बच्ची को एक पांच रूपए के टिकेट से बचने का और कोई उपाय नहीं सूझा। दिस इस नॉट बदमाशी योर ऑनर.....दिस इस इंस्टिंक्ट!''

-''कट दी स्टोरी शॉर्ट'' सरकारी वकील सामने आ गया, ''वो लड़की जहाँ भी पहुंची वहां से बम्बई चली गयी। वो जैसे भी चली गयी इज़ नॉट इम्पोर्टेन्ट, इम्पोर्टेन्ट ये है कि उसने वहां पुलिस वालों से दोस्ती कर ली।''

-''ऑब्जेक्शन!'' धीर ने ऐतराज़ किया, ''ये हक़ीकत को मरोड़ना है।''

-''ससटेंड!''

लड़की-शन्नो- उर्फ शांता कुशवाहा- ट्रेन के टॉयलेट में किसी तरह छुपते छुपाते भाग निकली। उसे नहीं मालूम था कि वो ट्रेन जिसमें वो बैठी है बम्बई जा रही है। एक बार भुसावल स्टेशन पर टी.टी ने उसे देख भी लिया। उससे टिकेट भी माँगा लेकिन फिर उसकी दशा देखकर उसे भिखारी समझ कर अगले स्टेशन पर उतर जाने की धमकी देकर छोड़ दिया। वैसे टी.टी उसे बग़ैर टिकेट यात्रा के जुर्म में हवालात में बंद करवा सकता था लेकिन इसकी दशा देखकर उसने ऐसा नहीं किया।

शन्नो बम्बई वी.टी. स्टेशन जब उतरी तब रात के दस बज रहे थे और परिसर में भीड. बेहद थी। शन्नो ने इतना बड़ा स्टेशन पहली बार देखा था। पहले तो वह बौखला गयी और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रोने लगी। फिर उसने सोचा ऐसे तो काम चलेगा नहीं। कहाँ जाये क्या करे इस बाबत किसी से तो पूछना पड़ेगा। पूछने के लिए उसने सोचा पुलिस से विश्वसनीय और कौन हो सकता है! लेकिन लड़की घर से भागी थी, छुपती छुपाती यहाँ तक पहुंची थी इसलिए पुलिस से उसने गुरेज़ करना ही बेहतर समझा। पुलिस से नज़र बचाकर शन्नो कॉनकोर्स में लगे नल की तरफ़ पानी पीने चली गयी। नल कुछ ऐसा था कि ज़रा सा दबा तो अच्छा ख़ासा फ़व्वारा छोड़ता था। शन्नो का सारा ऊपरी शरीर पानी से भीग गया और जब वो मुड़ी तो उसकी साड़ी- ब्लाउज उसके स्तनों से चिपटे हए थे।

हवालदार एकनाथ साटम- जो वहीं आस पास डंडा लिए खैनी दबाये 'आख़-थू' कर रहा था- उसने शन्नो को नज़र चुराते हए देख लिया था। वह लगातार

इसे टकटकी लगाए ताड़ रहा था। और अब तो ख़ैर शन्नो की तरफ़ देखने की और भी वजह थी।

-"छूट गया न फव्वारा......कशाला ज़ाती तिकड़े (क्यों जाती हो वहां)....हे घ्या (ये लो)" साटम ने शन्नो को पानी से भरी एक ठंडी बोतल थमाते हुए कहा। चार दिनों की भूखी प्यासी तिरस्कृत लड़की को पहले तो इस सहानभूति पर विश्वास नहीं हुआ। फिर उसने साटम से बोतल ले ली।

-"कुठून अला तुम्हीं?" (कहाँ से आयी हो तुम?)

शन्नो नहीं समझी यह साटम समझ गया। उसे पूछा, "किदर से आया तुम?" लड़की सहमी हुई थी और अविश्वास से घिरी हुयी। बोली, "हियाइँसे।"

-"अकेला है?"

शन्नो ने हाँ में सर हिलाया।

-"कुछ खायेगा?"

शन्नो ने कोई जवाब नहीं दिया।

साटम ने दो क़दम बढ़कर पास के स्टॉल वाले को इशारा करके कहा, "ए ....बिटिया को कुछ खाने को दे....गरम कायए। (गरम क्या है)...पैटिस आहे? (पैटिस है?)" उसने शन्नो की तरफ़ देखकर पूछा, "पैटिस खायेगा?"

शन्नो पैटिस का नाम ही पहली बार सुन रही थी। उसकी समझ में कुछ आया नहीं; लेकिन भूख तो बेतरह लगी थी। खाने को होना चाहिए, कुछ भी चलेगा!

-"ले लो......एक और ले लो....ए!....ला....एक और दे बिटिया को।" साटम ने शन्नो के बग़ल वाली टूटी कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

-"रात कितना हो गया है रे.....किधर जायेगा?"

शन्नो ने कोई जवाब नहीं दिया। जवाब था ही नहीं कोई जो वो देती।

घंटे भर की सहानभूति, पैटिस, पानी, चाय और 'बिटिया' वाले संबोधन ने शन्नो का साटम पर कुछ भरोसा पैदा कर दिया।

-"मेरा ड्यूटी रात को बारा तक है...तब तक तू बैठ...उसके बाद मेरे साथ चल...घर पर...अच्छे से आराम कर....इधर अच्छी लड़कियों के लिए जगह ठीक नहीं है...समझी न!"

-"और इस तरह योर ऑनर!" धीर ने कहा, "साटम बिल्ट हर कॉन्फ़िडेंस!"

-"योर ऑनर एडवोकेट धीर कहानी सुना रहे हैं कि केस की पैरवी कर रहे हैं?... साटम वास् एक्चुअली बीइंग नाइस टू ए डेस्टीटयूट..."

-"और उसके बाद..."धीर ने बग़ैर जवाब दिए बोलना जारी रखा..." साटम

इस अभागी लड़की को...''

-''ऑब्जेक्शन !..ये अभागी नहीं है। ये बहुत शातिर है।''

-''ओ के!...गो ऑन मिस्टर धीर।'' जज ने सरकारी वकील-एडवोकेट जैन- को शांत रहने के लिए हाथ दिखा कर कहा।

-''ओ....के...इस लड़की को,'' धीर ने अपना बयान ठीक करते हुए कहा, ''साटम उस रात अपने दोस्त के घर ले गया जहाँ उस वक़्त दोस्त अपने गाँव गया हुआ था और उस घर में केवल दोस्त की पत्नी ही थी। साटम ने इसे उस औरत के साथ रख दिया। दो दिन रात लड़की उस घर में आराम से रही। साटम रोज़ शाम को उसका हाल चाल लेने आता था। इससे शन्नो का विश्वास साटम की शराफ़त पर और द्रढ़ हो गया। दूसरे दिन शाम को साटम इसे लेकर चौपाटी बीच घुमाने ले गया।

-''कल मेरा दोस्त गाँव से वापस आजायेगा....''

-''तो?''

-''तो.....उस घर में तेरा रहना प्रॉब्लम हो जायेगा......जागा ही किधर है उधर .....एक कमरा तो है।''

-''फिर?'' शन्नो ने सवालिया नज़रों से साटम को देखकर कहा।

-''तू चिंता मत कर...साटम है न....तेरे लिए कफ़ परेड पे जो चाल है न. ...उदर मैं एक खोली देखेला है....क्या?!...उदर रय तू आराम से...''

दूसरे दिन दोपहर में शन्नो को ले कर साटम कफ़ परेड में क्रीक के किनारे वाले स्लम की एक छोटी सी खोली में आ गया। आठ बाई आठ की खोली, टॉयलेट बाहर-सार्वजानिक-और वातावरण में मछली का भभका मारती आर्द्र आर्द्र समंदरी हवा। शन्नो को उबकाइयां आने लगीं।

-''ठैर जा....इसका भी बनोबस करता हे में।'' और शाम होते होते साटम ओल्ड मोंक के दो क्वार्टर और मुर्गे की दो तंदूरी टाँगें ले आया।

-''मैं मुर्गा नईं खाती।''

-''तो अब खाले।''

-''मैं शराब भी नईं पीती।''

-''तो अब पीले.....स्वर्ग पाने का यही एक रास्ता है।''

और साटम ने फिर जिस प्यार और मोहब्बत से शन्नो को गले लगाकर मनाया उससे वो पिघल पिघल गयी। फिर ओल्ड मॉंक के दो पैगों के बाद जिस लगन और नजाकत से साटम ने शन्नो के मुंह से मुंह लगा कर उसे गर्म करना शुरू किया उससे

शन्नो के पोर पोर खुलने लगे। क्वाटर और मुर्गे खत्म होते होते साटम और शन्नो दोनों ने स्वर्ग के दर्शन कर लिए थे और दोनों का निर्वाण हो चुका था।

ऐसा हर शाम अगले पांच दिन तक लगातार चला। और शन्नो को साटम से प्यार हो गया।

-''मार्क किया जाये योर लॉर्ड शिप, जिसे लड़की ने प्यार समझा......ईवन साटम ने भी प्यार ही किया....नथिंग रॉग.....दो कॉनसेंटिंग एडल्ट्स.....''

-''एडल्ट्स नहीं...लड़की जुविनाइल थी...चौदह वर्ष की थी...इस हिसाब से कि अब उसकी उम्र डॉक्टरों ने बाइस निर्धारित की है।''

-''प्रोसीड !''

पांच दिन बाद शराब ओल्ड मोंक से संतरा नारंगी की कंट्री और मुर्ग़े की बजाये खाने के लिए चने और सींग हो गए थे। प्यार और नज़ाकत ख़त्म होकर थप्पड़ और गालियां हो गयी थीं। अब शन्नो वहां से भाग जाना चाहती थी लेकिन सवाल था कहाँ और कैसे! उसकी परेशानी पहले ही जैसी बल्कि और ज़्यादा थी। दूसरी परेशानी ये भी थी कि बग़ल वाली खोली में काली सांड सी बैठी राजम्मा हर बात की बाक़ायदा ख़बर रखती थी। राजम्मा पुलिस वालों की ख़ास थी और साटम पुलिस वाला ही तो था!

पंद्रह दिनों बाद साटम एक दिन सुबह सुबह ही आ धमका।

-''ये जीन्स पैंट पहन ले....शर्ट पहन ले...नया लाया तेरे लिए.....साला कितना बदबू मारता है तेरा साड़ी रे...''

-''ये पहनना तो मुझे आता नईं...''

-''मुझे कपडे पहनते नईं देखा ....सल्लालि...नखरा दिखाती है.....चल पहन ले और चल।''

-''किदर?''

-''चल बोला न....तो चल, बस!''

दोनों चाली से सड़क तक झोपड़ी झोपड़ी होते हुए राजम्मा की पैनी नज़रों से 'पास' हुए। साटम और राजम्मा की आँखों ही आँखों में ख़ामोश 'बाई बाई' भी हुयी। शन्नो साटम के साथ पीछे पीछे ऐसे चली जैसे कि मक़्तल में ले जाती हुई बछिया!

कफ़ परेड से टैक्सी चली तो रुकी कोलाबा के पास्ता लेन नंबर दो की एक चार मंज़िला ईमारत के नीचे। तीसरी मंज़िल तक सीढियां चढ़ने के बाद तीन नंबर के फ़्लैट में साटम ने घंटी बजाई। अंदर से एक निहायत चीमड़ से दिखते दुबले

पतले आदमी ने छह इंच दरवाज़ा खोल कर देखा। साटम को पहचाना और फिर अंदर का दरवाज़ा और बाहर के स्टील फ्रेम का सेफ़्टी डोर पूरा खोल दिया।

-''मैंडम कुठे?'' साटम ने कमरे में पड़े सोफ़े पर आराम से बैठते हुए पूछा। आदमी जिसने दरवाज़ा खोला था बग़ैर कुछ कहे अंदर चला गया।

-''बैठ!'' साटम ने कहा और शन्नो भी उस सोफ़े पर बग़ल में बैठ गयी। दो मिनट भी नहीं गुज़रे होंगे कि एक मोटी सी साड़ी में लिपटी, सोने के ज़ेवरों से लदी और नारियल तैल से महकती औरत अंदर से आयी। उसने शन्नो को आँख भर देखा, फिर साटम की तरफ़ मुड़ी और सोफ़े के सामने कमरे के दूसरे तरफ़ दीवार में एक आले में तस्वीरों से भरे मंदिर नुमा-जिसमें तमाम फूल लगे थे और एक दिया जल रहा था-के ठीक नीचे पड़ी एक पुरानी सी नीम-आराम कुर्सी पर विराजमान हो गयी। फिर वो कुछ बोली नहीं और रह रहकर शन्नो की ओर ऊपर से नीचे तक देखती रही।

-''देखती क्या है....टंच माल है !....टेस्ट कियेला है...!''

-''किसने?...तूने?''

-''और कौन टेस्ट करेगा...हैं हैं हैं हैं....''

-''तब बेकार होएंगा ...तेरा तो कुछ होतई नईं..तू क्या जाने टंच माल क्या होता है।''

-''चल चल.... धंधे की बात कर...''

-''जा....अंदर जा.....गुरु देगा........'' औरत ने साटम से कहा। फिर उसने दृष्टि शन्नो की ओर घुमाई, ''क्या नाम है तेरा?''...साटम अंदर जाते जाते रुका, मुड़कर बोला, ''शन्नो....शन्नो नाम है इसका...और ए शन्नो...ये मैंडम है...इनको मैडम बोलने का ..समझी!''

-''मैं क्या इदर रहने वाली हूँ?'' शन्नो ने सहमते सहमते और उस जगह के लिए हद दर्जा हिक़ारत से भरपूर तबियत से पूछा।

साटम तब तक अंदर चला गया था। जवाब मैंडम ने दिया, ''हाँ...तू इधरछ रैने वाली है।''

अदालत में जज परेशान हो गया। उसने कलम ज़ोर से मेज़ पर पटक कर कहा, ''यू नो....यू आर वेस्टिंग कोर्ट्स टाइम एडवोकेट धीर.......स्टॉप दिस नॉनसेंस...इन फ़ैक्ट्स से आप साबित क्या करना चाह रहे हैं?!''

सरकारी वकील एडवोकेट जैन ने बढ़ कर इत्तेफ़ाक़ किया।

-''योर लॉर्ड शिप ...एक ज़िन्दगी का सवाल है,'' धीर ने दलील दी, ''मेरे

फ़ैक्ट्स पूरे हो जाने दीजिये आप खुद समझ जाएंगे के मैं साबित क्या करना चाह रहा हूँ।''

-''ओह माय गॉड!'' जज ने घड़ी देखकर आह भरी, ''ओ.के. प्रोसीड।''

उस फ़्लैट में जाकर शान्ता कुशवाहा उर्फ शन्नो सलमा बन गयी। अलग अलग लोगों के अलग अलग तरीकों से मन बहलाव का साधन। दिन में रो रो कर, अपने भाग्य को कोस कोस कर और रातों को खिलखिलाते हुए हंस हंस कर उसने साढ़े सात साल काट दिए। और इन साढ़े सात सालों में अगर कोई उसका अपना उसे मिला तो वह थी हीरी- पिछले दो सालों से! हीरी दस साल की वह छोकरी थी जो रोज़ स्कूल जाने से पहले अपनी माँ का हाथ बटाने के लिए आस पास के घरों /दुकानों में हार-फूल की पुड़िया दे जाया करती थी। बच्ची थी, हंसमुख थी, मज़ाहिया थी और छेड़ छाड़ में उसे मज़ा आता था। इसी के चलते हीरी से सलमा की जान पहचान फिर दोस्ती और फिर अपनापा हो गया। शन्नो ही थी जो उससे उसकी पढ़ाई और उसकी परेशानियों के बारे में पूछती थी और हीरी ही थी जो शन्नो से हंसी मज़ाक और चुहुल बाज़ी करती थी। जिसके पास जो नहीं था वह एक दूसरे को एक दूसरे से मिल रहा था। मन मिल गए। मन मिले तो एक दूसरे पर अधिकार की भावना भी जाग गयी और एक अनकहे रिश्ते ने भी घर कर लिया।

सलमा हीरी में अपने आपको, उसके बचपन में अपने बचपन को और उसके सपनों में अपने सपनों को देखती थी। वे सपने जो वक़्त और मुक़द्दर ने मिल कर कुचल दिए थे। शन्नो उर्फ़ सलमा ने कई बार हीरी को कुछ पैसे की मदद करनी चाही लेकिन हीरी ने मना कर दिया।

-''मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ......मुझे तो कुछ आता ही नहीं....मैं तो तुम्हारी तरह स्कूल की पढ़ी भी नहीं हूँ।''

हीरी की माँ का फूलों का बांकड़ा पास्ता लेन के मोहाने पर ही था। हीरी की माँ साटम-जब भी आता-उसे राम राम करती-ये उसकी शायद मजबूरी होती। हीरी को साटम कभी पसंद नहीं आया। उसकी टेढ़ी चाल हमेशा उसकी हंसी छुटा देती थी। -''साली हंसती है....तचाई ला....'' साटम दांत पीस कर सीढियां चढ़ जाता था।

सलमा की जवानी गज़ब की निखर आयी थी। बदन गदरा गया था और अदाएं उतरा गयीं थीं। तजुर्बों के नाम पर रोज़ नए ग्राहक़- कभी फ़्लैट में कभी बाहर होटलों में और और भी न जाने कहाँ कहाँ! साटम भी अक्सर पधार जाता था कभी सलमा के पास कभी किसी और के पास। वह अक्सर यहाँ की लड़कियों को अपने

अफ़सरों, जान पहचान के नेताओं के पास भी ले जाता था। और शायद इसी के चलते उसने पिछले सालों में ग़ज़ब की तरक़्क़ी कर ली थी- वह हवलदार से अब सीनियर सब इंस्पेक्टर हो गया था। वह अब बॉम्बे सेंट्रल रेलवे स्टेशन के पास अग्रीपाड़ा पुलिस स्टेशन पर बैठता था।

उस दिन शाम का समय था। सूर्यास्त हुआ हुआ था और बग़ल की मस्जिद से लाउडस्पीकर ज़ोरों से मग़रिब की अज़ान दहाड़ रहा था। साटम की पुलिसिया अरमाडा बिल्डिंग के नीचे आकर रुकी। साटम किसी तरह गाड़ी से उतरा-नशे में धुत! उसने फूल वाली के बांकड़े से बग़ैर कुछ कहे सुने एक वेणी नोच कर अपनी मुट्ठी में दबाई और नाक से लगा ली। फिर किसी तरह लड़खड़ाते लड़खड़ाते अपनी टेढ़ी चाल से सीढियां चढ़कर वह तीसरी मंज़िल वाले फ़्लैट पर पहुँचा। वह घंटी बजाता इससे पहले दरवाज़ा खुला। वहां से महीने भर का हिसाब लेकर हीरी निकल रही थी। उसने साटम को देखा और उसकी टेढ़ी चाल और सीधे खड़े न रह पाने पर बड़ी ज़ोर से मुंह पर हाथ रखकर हंसी। साटम को मालूम तो था ही कि हीरी उसकी टेढ़ी चाल का मज़ाक़ उड़ाती है, आज वो सामने पड़ गयी और उसे उस पर बेतरह ग़ुस्सा आ गया। नशे ने भी अपना काम मुस्तैदी से किया। साटम ने हीरी को एक हाथ से पकड़ लिया, ठेल दिया फ़्लैट के अंदर और गिरा दिया उसे सोफ़े पर। लड़की डर गयी। डर गयी तो चिल्लाई। चिल्लाई तो अंदर से शन्नो निकल आयी और उसके साथ साथ 'मैंडम'। दो चार और लड़कियां भी निकलीं लेकिन वे सब डर के मारे वापस चली गयीं। साटम हीरी के सामने अपना पैंट उतारता जाता था और हीरी को गालियां पर गालियां दिए जाता था। मैंडम ने साटम को फटकारा, ''साटम! सोड़...सोड़ तेला (छोड़ो, छोड़ो उसे).....देख अच्छा नईं होयेगा।''

-''तेरी मां का साली.....मेरा खा के मुझ पर घुर्राती है.....मैंडम होगी तू इनके लिए....मेरे लिए तो तू भी साली रंडी ही है......चल जा...अंदर जा....आज मैं इसे नईं छोड़ने वाला!''

-''वो छोटी है साटम....''

-''वोई तो मज़ा है...''

शन्नो ने साटम का हाथ पकड़ लिया, ''छोड़ दे इसे....ये मेरी बेटी जैसी है।''

-''तेरी बेटी!,'' साटम ठठा कर हँसा, ''तेरी बेटी!.....तब तो और भी मज़ा आयेंगा.... ''साटम ने पैंट उतार कर एक किनारे फ़ेक दी।

शन्नो ने झट से झुक कर बेल्ट में लगा पिस्तौल निकाल लिया और साटम पर तान कर चिल्लाई, ''छोड़ता है कि नईं?'' मैंडम डर गयी। उसने शन्नो को

समझाया,''ये क्या कर रही है...ये पुलिस वाला है!'' शन्नो ने पिस्तौल और तान दी, ''छोड़ता है कि नईं?!'' साटम और ज़ोर से हँसा और उसने हीरी की फ्रॉक पेट के ऊपर करके उसे कमर के नीचे नंगा कर दिया। लड़की जैसे सन्निपात में थी। उसकी आवाज़, समझ, सोच सब कुछ कुन्द हो चुके थे। शन्नो फिर चिल्लाई, ''छोड़ दे साटम....मैं तुझे और जिंदगियाँ बर्बाद नईं करने दूंगी।''

-''बर्बाद!'', साटम ने हीरी की जांघों के बीच में हाथ फेरते हुए मज़ा ले कर कहा, ''मैं तो इसकी योनि आबाद कर रहा हूँ....है न बेबी!''

साटम बस हीरी पर झुका ही था कि धड़ाम से एक गोली चली और साटम की दायीं बांह मे से ख़ून गिरने लगा। साटम शन्नो की तरफ़ अचम्भे से मुड़ा तो दूसरी गोली चली जो सीधे उसके सीने को पार करती निकल गयी और साटम मुंह खोले सांस के लिए तड़फड़ाता पीठ के बल गिर पड़ा। शन्नो ने हीरी को आकर सीने से लगा लिया। मैंडम ने वरिष्ठ पुलिस अफ़सरों को फ़ोन कर दिया।

एक मासूम ज़िन्दगी को भ्रष्ट होने से बचा लिया गया लेकिन एक भ्रष्ट की जा चुकी मासूम और बेगुनाह जिंदगी कैद कर ली गयी!

-''बेकार की बात है योर ऑनर ...इस बात से कि 'ख़ून हुआ है' तो इनकार नहीं किया जा सकता।'' सरकारी वकील ने कहा।

-''ख़ून हुआ है ये सच है,'' धीर ने फ़ाइल पटकते हुए कहा, ''लेकिन ये आधा सच है...पूरा सच ये है कि एक ज़िन्दगी को बचाने का प्रयास हुआ है. एक क्राइम को प्रिवेंट करने के लिए। एक सुरक्षा प्रदान करने के लिए। एक गुनाहगार से एक मासूम को बचाने के लिए। एक दरिंदे से इंसान को बचाने के लिए। बारह साल की बच्चियों को अगर हम देवी का अवतार मानते हैं तो एक देवी को एक राक्षस से बचाने के लिए....एक ज़िन्दगी को मौत से बचाने के लिए....एक इंसानी फ़र्ज़ निभाने के लिए...इसलिए इसे क़त्ल नहीं माना जा सकता। इसे आत्मरक्षा की श्रेणी में रखा जाना चाहिए....और ये ही अदालत से मेरी दरख़्वास्त है।''

सरकारी वकील से कुछ बोलते नहीं बना। जज ने घड़ी देखी। पांच बज रहे थे। अदालत इस दिन के लिए बर्ख़ास्त हो गयी। टी.वी. कैमरे वाले जो बाहर निकला उसका इंटरव्यू करते रहे।

दुसरे दिन स्टेट वर्सिस सलमा का फ़ैसला सुनाया गया। शन्नो बरी कर दी गयी। उसी वक़्त से टी.वी. में बहसें छिड़ गयीं. क़ानूनी हल्क़ों में केस के चर्चे होने लगे। सलमा ने एडवोकेट धीर को धन्यवाद दिया।

-''शुक्रिया वकील साहेब.......आपकी फ़ीस जमा करवा दी है।''

--"आप पर पूरा यक़ीन है...लेकिन आप चिंता न करें, फ़िल हाल आपको आराम की ज़रुरत है।"

-"अब तो आराम ही आराम है वकील साहेब! तसल्ली ये है कि लाइफ़ में कुछ तो अच्छा किया...और अब इसके बाद इस लाइफ़ का कोई परपज़ भी नहीं रहा।"

हीरी और उसकी माँ जो अब तक शन्नो से अदालत में मिलने नहीं दी जा रही थीं अब आगे आकर उसके सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं। शन्नो ने हीरी को गले लगा लिया। हीरी की सिसकियाँ बंध गयीं। उसकी माँ ने आँचल से अपने आंसू पोंछे। शन्नो ने हीरी को अपने गले से सोने का हार निकाल कर पहना दिया।

-"ये क्या?!" हीरी ताज्जुब में रह गयी।

-"रख ले.......मेरे किस काम का...."

-"दीदी!......." इसके आगे हीरी से कुछ कहते नहीं बना। न शन्नो से ही हीरी से कुछ कहते बना। दोनों ने एक दूसरे को प्यार से देखा और भावनाओं को समझा।

टी. वी. चैनल वाले सलमा को घेरने आ पहुंचे लेकिन वह अपने मुंह पर दुपट्टा लपेट कर, सब की नज़र बचा कर किसी तरह हाई कोर्ट के वरांडे में भागती दौड़ती भीड़ में शामिल होकर ऊपरी मंज़िल की सीढ़ियों की तरफ़ बढ़ ली।

थोड़ी देर बाद धड़ाम से एक आवाज़ आयी और हाई कोर्ट के प्रांगण में औंधे मुंह गिर पड़ा शन्नो का शरीर। फटे हुए सर से रिसता हुआ ताज़ा ख़ून जो उसके बालों को भिगोता हुआ फर्श पर बहे जा रहा था। चारों तरफ़ भीड़ जमा हो गयी। शन्नो ख़त्म हो गयी। टी.वी. और अख़बारों ने सलमा की ख़ुदकुशी की ख़बर दी लेकिन गाँव में उसे सलमा के नाम से कौन जानता था! और वैसे भी अपने गाँव वालों के लिए तो वो कब की मर ही चुकी थी।

''बेटा! ऐ बेटा.....! सुनो तो.....''

भारतीय भाषाओं में पढ़ी गयी भारतीय विद्‌या आदमी को विद्वान् भी बनाती है और संतुष्ट रहना भी सिखाती है। खेती करने वाला या लोहे की नाल बनाने वाला लिखना पढ़ना भी जान सकता है और अपने काम को बखूबी अंजाम भी दे सकता है। दूसरों का लिहाज़ और ख़्याल भी करता है। लेकिन अंग्रेज़ी विद्‌या का असर है कि जो ज़रा पढ़ लिख लिया उसे और चाहिए, और चाहिए- पद, पैसा, सुख, यश, वैभव....सब कुछ! दूसरों का लिहाज़ और ख़्याल का क्या मतलब?!......लेकिन ये तो होना ही है। क्योंकि भाषा संस्कृति से उत्पन्न होती है। भारतीय संस्कृति संतुष्टि और सौहार्द्र सिखाती है। जन्म जन्मान्तर सुधारने की बात करती है। माँ- बाप गुरु की वंदना सिखाती है। पाश्चात्य संस्कृति शरीर और भौतिक चीजों के आस पास ही मंडराती है। उसके हिसाब से आदमी सिर्फ़ एक बार ही जन्म लेता मरता है। ''यु ओनली लिव वन्स!'' और इसलिए ''लिव लाइफ़ टु द फ़ुल्लेस्ट!''

जिसे हम आज़ादी कहते हैं वो झंडा फहराने के लिए बहुत पहले आ चुकी थी और अंग्रेज़ी अंग्रेज़ों के ज़माने से ज़्यादा स्वतंत्र हो कर फैल चुकी थी।

राजीव श्रीवास्तव एम.एस. कर चुका था। शादी भी उसकी हो चुकी थी। बीवी डाक्टर थी- गायनोकोलॉजिस्ट जो एक अस्पताल से अटैच्ड थी। राजीव सर्जन था और अपने देश में पैदाइश का औसत देखते हुए राजीव की बीवी पद्‌मा की डाक्टरी लाज़मी तौर पर ज़्यादा चलती थी। बीवी नासिक की थी। लेकिन झाँसी 'छोटी' जगह थी इसलिए वहाँ प्रैक्टिस डालने का कोई मतलब नहीं समझा गया। राजीव बीवी के कहने पर नासिक चला आया। दोनों ने नासिक में प्रैक्टिस शुरू कर दी।

झाँसी में राजीव का पुश्तैनी बड़ा मकान था। पिता जी थे नहीं। माँ वहाँ अकेले रहती थीं। वो नासिक क्या घर से बाहर कहीं भी जाने को तैयार नहीं थीं। उन्होंने साफ़ कह रखा था कि 'हम यहीं ब्याह के आए थे, यहीं मरेंगे। तुम चाहे हमें देखो या न देखो. यहाँ मोहल्ले वाले बहुत हैं हमें देखने वाले।'

नए मियां बीवी के थोड़े दिन तो नए स्कूटर पर घूम घूम कर प्यार मोहब्बत में निकल गए। बिल्कुल बेफ़िक्री थी। फिर पद्मा के बच्चा ठहर गया।

राजीव और उसकी बीवी दोनों एक दिन अचानक झाँसी आ गए। माँ बड़ी खुश हुईं।

-''अरे वाह! बहुत अच्छा हुआ तुम दोनों आ गए......बहुत दिनों से सोच रहे थे कि देखा नहीं....हम तुम्हारे लिए शाम को खीर बनाएंगे''

-''शाम तक हम नहीं ठहरेंगे!'' राजीव ने कहा। माँ एकदम ठगी सी रह गयीं, ''क्यों?''

-''सामान बांधो, हम तुम्हें लेने आए हैं।''

-''लेने आए हैं?!....क्यों?.......हम नहीं जाते जी कहीं। कह तो दिया तुमसे हम अकेले रह लेंगे लेकिन यहाँ से कहीं और नहीं जायेंगे।''

-''माँ जी!...ज़िद मत कीजिये.....यहाँ आपको कुछ हो जाये तो कौन आयेगा मदद के लिए !....अब उम्र हो चली है और हमारे यहाँ तो डाक्टर का ही घर है।'' पद्मा ने कहा।

-''चलो माँ! बेटा बहू से दूर रहोगी क्या?!...हम तुम्हारे कोई नहीं लगते क्या?.....हमें अच्छा नहीं लगता क्या कि हमारी माँ हमारे साथ रहे?.....सारा ध्यान यहाँ तुम में लगा रहता है।''

बहरहाल ! बातों में रस और स्वाद इतना था कि माँ जी को हार कर नासिक जाना ही पड़ा। झाँसी छूट गया। और छूट गया झाँसी के साथ उन लोगों, उन दीवारों से रिश्ता जिन्होने उन्हें इस घर में परछन से अब तक हर हाल में देखा था, सहारा दिया था और जिनके ही सहारे वे अब तक स्वाभिमान से जी रही थीं। माँ अपने ठाकुर जी को गठरी में सीने से लगाये चलीं!

नासिक का घर छोटा था। तीन कमरे थे। एक ऐसा आँगन नुमा था जिसे आंगन कहा ही नहीं जा सकता था। उससे ऊपर छत पर एक ज़ीना जाता था जिसके नीचे की तिरछी जगह खाने के कमरे में एक अजीब सा ख़ाली तिकोन बनाती थी। पद्मा ने वो जगह दिखा कर कहा, ''माँजी...अपने ठाकुर जी को आप यहाँ रख लीजिये।''

-''नीचे?!..ज़मीन पे!.....कुछ आला, कोई तिपाई ...कुछ ऐसा हो तो देओ।''

-''यहाँ वो सब तो कुछ अभी है नहीं.....लाना पड़ेगा।''

बहरहाल आला तो दीवारों में था नहीं, तिपाई आ नहीं पाई भगवान जी ने ज़मीन पर संतोष कर लिया।

राजीव रात को क्लीनिक से लौटता तो आवाज़ लगाता, ''पद्मा!...माँ ने खाना खा लिया?!'' फिर इस रस्म के बाद बेटा अपने और फर्ज़ निभाने में व्यस्त हो जाता। रात को अक्सर पार्टियों में जाना, किसी को खाने पर घर बुलाना, पिक्चर जाना या यों ही सैर पर निकल जाना आम बात थी।

माँ ने एक दिन कहा, ''राजीव! बेटा !..बहू के दिनभर गए हैं....उसे इस तरह घूमना-फिरना काम करना बंद करना चाहिए और आराम करना चाहिए।''

-''वो ख़ुद ज़च्चा डाक्टर है माँ !......उसे ख़ुद मालूम है कि क्या उसके लिए ठीक है और क्या नहीं।''

माँ पहले चौके में हाथ बटाने पहुँच जातीं थीं फिर बहू ने कहना शुरू कर दिया कि ''माँ जी..आज मैं जल्दी जा रही हूँ....ज़रा खाना बना लीजियेगा'' बूढ़े हाथ थे आदत भी आज के जितने लपड़-झपड़ में और वो भी खड़े हो करे खाना बनाने की नहीं थी। एक दिन राजीव को एक ऑपरेशन के लिए जल्दी जाना था। रात के नौ बजे थे। पद्मा थी नहीं। राजीव का एक दोस्त घर पर आया हुआ था। माँ ने खाना बनाया और मेज़ पर लगा दिया। नज़र की कमज़ोरी कहिये या पाकेट के आयोडीन वाले नमक का अंदाज़ कहिये तरकारी में नमक ज़्यादा हो गया। राजीव मेज़ पर से ही बड़ी ज़ोर से चिल्लाया, ''माँ.......!'' माँ दौड़ी दौड़ी सी खाने की मेज़ के पास आयीं, ''क्या हुआ?''

-''ये क्या किया तुमने?.....तुम ठीक से नमक भी नहीं डाल सकतीं?..... इतना नमक डालता है कोई?....बछिया के लिए ख़ाना बनाया है क्या?''

राजीव बेहद ग़ुस्से में था। उसका दोस्त निगाह नीचे किये खाता रहा। माँ चुपचाप वापस किचेन में चली गयीं और खिड़की के बाहर के अँधेरे को ताकती रहीं-तब तक जब तक कि राजीव की आवाज़ फिर नहीं आयी- ''मेज़ पर से सब उठा लेना। पद्मा आए तो उसे खाना दे देना। हम जा रहे हैं।''

झाँसी में माँ सुबह उठ कर नहा धोकर सीधे पूजा में बैठ जाया करती थीं। नाश्ता उसके बाद करती थीं। यहाँ बाथरूम एक ही था इसलिए नहाना सबके बाद ही होता था। उसके बाद पूजा करके जब उनके नाश्ते का समय होता सब जा चुके होते थे। कभी दिल किया तो नाश्ता किया नहीं तो नहीं किया।

पद्मा के बच्चा हो गया। लड़का हुआ। राजीव की माँ माँ से दादी बन गयीं। क्यों कि दादी नाती को देखने वाली थीं इसलिए राजीव और पद्मा की ज़िन्दगी और ऐश में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं आया। वैसे ही घूमने जाना, वैसे ही पार्टियों में शिरकत करना, पिक्चर जाना, वक़्त बे-वक़्त अस्पताल के कॉल पर चले जाना...सब कुछ वैसे

ही चलता रहा। बच्चे के लिए दूध की बोतल रख दी, पानी रख दिया और चल दिए। माँ को छुआछूत का बहुत ख़्याल था। नहाये बग़ैर पानी नहीं पीना, किसी ने खाना छू लिया तो खाना नहीं खाना। वो सब इस बच्चे और इस माहौल की नज़र हो गया।

बच्चा बड़ा होता गया। डक्टरों की प्रैक्टिस बढ़ती गयी। माँ बूढी होती गयीं और उनकी ज़िम्मेदारियाँ बढ़ती गयीं। बच्चे को जब माँ घर पर न हो तो तैयार करके स्कूल भेजना। उसके लौटने के वक़्त उसे ताज़ा खाना देना। राजीव के लिए वक़्त बे-वक़्त चाय नाश्ता तैयार करना। काम वाली न आए तो घर की सफ़ाई करना.. .वग़ैरह!

माँ की आदत थी कि दिन में दो तीन बार सुपारी खाया करती थीं। घर में पानदान रखती थीं जो कि बहुत काम वाला और पुश्तैनी था। इसलिए राजीव ने कहा, ''लाओ इसे ड्राइंग रूम में सजावट की तौर पर रख देते हैं। सुपारी का क्या है, डिब्बे में रख लिया करो।'' झाँसी के घर में माँ अपने लिए सुपारी ख़त्म होने से पहले ही और सुपारी मँगा लिया करती थीं। यहाँ अक्सर किसी को फ़ुर्सत न होने की वजह से कई कई दिन बग़ैर सुपारी के निकल जाते थे।

-''बेटा सुपारी का याद रहा तुम्हें!''

-''अरे ला देंगे माँ!....तुम्हारी सुपारी देखूं कि अपना काम देखूं....काम चलेगा तो सुपारी भी आ जायेगी।''

माँ के लिए सदियों की तरह और राजीव और पद्मा के लिए मिनिटों के हिसाब से दिन गुज़र रहे थे। घर की ज़िम्मेदारी सँभालते सँभालते माँ दिन ब दिन और बूढ़ी होने लगीं। लड़का और बड़ा होने लगा। प्रैक्टिस और बढ़ने लगी। स्कूटर से गाड़ी और फिर दूसरी गाड़ी आ गयी। इस छोटे से किराये के घर से एक बड़े से घर में शिफ़्ट किया गया- जो कि ख़रीद लिया गया था। इस मकान में ठाकुर जी को किसी फालतू चीज़ की तरह जगह दी गयी। माँ के कमरे में वो चद्दरें बिछने लगीं जो राजीव या उसके लड़के के पलंग के लिए पुरानी हो जातीं थीं। अब माँ के लिए ब्लाउज भर सिलवाये जाते- वो भी दो तीन साल में एक बार। साड़ियां उन्हें बहू की पुरानी दे दी जातीं। माँ का स्वाभिमान टूट गया था। राजीव को अब माँ के होने से कोफ़्त होने लगी थी। बहू के लिए माँ एक 'न जाने कहाँ आ धमकी हुई औरत' थी और लड़का स्कूल से आने के बाद ठाठ से कहता था- ''ए....! जूते खोलो!''

एक दिन राजीव घर पर ही था। दोपहर का वक़्त था। माँ ने उसके सामने चाय रखकर कहा, ''बेटा, बहुत दिन हो गए यहाँ तुम्हारे पास। अब तो लड़का भी

बड़ा हो गया। हमें तो तुम घर छोड़ आओ।''

-''कौन से घर?''

-''झाँसी!......और कौन से घर?!''

-'' वो घर तो बिक गया!''

-''बिक गया!?''

-''और क्या!......नहीं तो यह बड़ा घर लिया कैसे?.....अब यही घर है!....यहीं रहो!''

-''तुमने हम से पूछे बग़ैर पुरखों की निशानी बेच दी!''

-''उसमें पूछना क्या था माँ!.....बेकार खँडहर हो रहा था। अच्छे पैसे मिले, बेच दिया।''

-''हमारा यहाँ जी नहीं लगता....हम क्या करें!?''

-''तो ये करो कि जी लगाओ ! लड़का है, बहू है, नाती है और क्या चाहिए तुम्हें! सब आराम तो है यहाँ!......जी क्यों नहीं लगता?''

राजीव के एक चचेरे चाचा थे राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव। लखनऊ में रहते थे। राजीव के पिता जी और उनमें अच्छी पटा करती थी। वे शिर्डी दर्शन के लिए आए तो उन्होंने सोचा नासिक पास है मिलते चलें।

-''कैसी हो भौजी?''

-''अरे रज्जू तुम!....आओ भैय्या! बहुत दिनों बाद याद आयी।'' माँ की आँखों में बहुत दिनों बाद ख़ुशी झलकी।

-''अरे यहाँ बाबा के दर्शनों के लिए आए थे सोचा मिलते चलें।''

-''अच्छा किया...बैठो.....नाश्ता वाश्ता बनायें तुम्हारे लिए।''

-'' बनायें मतलब?.....तुम बनाओगी?''

-''अब भैय्या...और कौन बनाएगा....वो दोनों तो चले गए हें बाहर।''

-''भौजी इस उम्र में भी काम करती हो?....हम तो समझे थे चैन से राम-भजन हो रहा होगा।''

-''अब सब राम भजन ही हो रहा है भाई।''

-''और....ठाकुर जी रखे हो अभी के छोड. छाड़ दिया सब कुछ?!''

-'' हाँ...रखे है!.....ए रज्जू!.....तुम तो हमें ले चलो यहाँ से!''

-''ले चलो! काहे भौजी?...ख़ुश नहीं हो यहाँ! कोई तकलीफ़?''

-''नहीं ....बस !.....झाँसी का घर सुना बेच दिया है....तुम को कुछ मालूम है?''

-''हाँ पता तो चला था लेकिन हमने समझा तुम से पूछ के हुआ होगा ये सब।''

-''अरे हम से पूछ के क्या होता है यहाँ.....''

-''चलो तो हमारे पास लखनऊ चलो....कुछ दिन वहाँ रह लेना। तबियत बदल जायेगी।''

उस दिन शाम को इत्तेफ़ाक़ से सब घर पर ही थे। सब ने खाना साथ खाया। राजेंद्र प्रसाद बोले, ''हम सोचते हैं भौजी बहुत दिन यहाँ रह लीं, थोड़े दिन इन्हें हम लखनऊ ले जाएँ।''

-''क्यों इनको कोई तकलीफ़ है यहाँ?'' राजीव ने पूछा।

-''लेयो..!...तकलीफ़ की बात कहाँ से निकल आयी...हम तो ये कह रहे हें की इनके लिए थोड़ा चेंज हो जायेगा।''

-''ले जाइये!'' पद्मा ने सपाट सा जवाब दिया।

-''इनकी नज़र भी कुछ कमज़ोर हो गयी है,'' राजेंद्र प्रसाद बोले, ''शायद मोतियाबिंद उतर आया है।''

-''हाँ तो बुढ़ापा है, उतर आया होगा।'' राजीव ने कहा।

-''तो इनका ऑपरेशन वग़ैरह का कुछ सोचा है?''

-''अरे मोतिया बिन्द उतरा है तो क्या सीधे ऑपरेशन के लिए ले जाएँ?.. ..पक जाये, डाक्टर जब कहे तब करेंगे कि ऐसे ही!?''

-''तुम तो ख़ुद डाक्टर हो यार!''

-''तो हम आँख के डाक्टर थोड़े ही हें!''

-''तो किसी आँख वाले को दिखाया है क्या?''

-''अरे क्या चाचा!...आप तो पीछे ही पड़ गए....! माँ ने आपसे कुछ कहा है क्या कि हम उनकी देख भाल नहीं करते?!''

-''अरे नहीं भाई, भौजी से तुम्हारे बारे में कोई बात ही नहीं हुई''

-''नहीं, ये औरत बहुत तकलीफ़ दे रही है आज कल....पड़ौसियों से जा कर दुखड़े रोने शुरू कर दिए हैं इस ने! लोग समझें कि हम इसे बहुत दुःख देते हें!''

पद्मा खाने से उठ गयी। राजीव ने अपने बेटे से बात करना शुरू कर दिया। राजेंद्र प्रसाद हाथ धोने चले गए। माँ प्लेटें समेटने लगीं।

रात को बीवी ने राजीव से कहा, ''क्या सोचा है माँ के लखनऊ जाने का?''

-''ले जाएँ''

-''वहाँ जाकर भद्द तो अपनी होगी...कुछ कपडे वपड़े सिलवाने पड़ेंगे...दो दिन में ये सब कैसे होगा!''

-''तो?''

-''कह दो टिकट की बहुत मारा मारी है। अगली बार आइयेगा तो ले जाइयेगा।''

राजेंद्र प्रसाद जब जाने लगे तो माँ ने उन्हें पास बैठा कर उनके चेहरे को टटोला।

-''ये क्या कर रही हो भौजी?''

-''अच्छी तरह देख लूं एक बार.....फिर मौक़ा मिले न मिले!'' उनकी आँखों में आंसू उतर आए। राजेंद्र बाबू ने उन्हें गले लगा लिया। माँ बिलख पड़ीं।

-''ना भौजी ना! तुम फ़िक्र न करो हम अब के जल्दी ही आएंगे। अब के दो टिकटों का बंदोबस्त करके ही आएंगे।''

लेकिन राजेंद्र प्रसाद ख़ुद ही चले गए। लखनऊ पहुँचने के तीन महीनों बाद वो नहीं रहे।

माँ को दिखना एकदम बंद हो गया था। टटोल टटोल कर चलती थीं। एक दिन रात में इसी तरह बाथरूम जाते में उन्होंने समझा दरवाज़ा है, थी अलमारी। धक्का लगा तो उस पर रखा कटग्लास का एक बेश क़ीमती गुलदान गिरकर चकनाचूर हो गया। आवाज़ से पद्मा और राजीव दोनों अपने कमरे से बाहर आ गए। गुलदान के नुक़सान और बिखरे हुए कांच को देखा तो पद्मा उफन पड़ी-'' ये क्या मज़ाक है यार!...इसको ले जाओ यहाँ से राजीव....!''

-''क्या हुआ?'' राजीव ने मामले को समझने की कोशिश की।

-''जीना दूभर कर दिया है इस औरत ने. न मरती है न जीती है न जीने देती है!''

उधर माँ के सीने की तकलीफ़ भी उभर आयी। बोलीं, ''अरे दिखता नहीं तो क्या करें....इतना बमकती क्यों है......कांच ही तो है। साफ़ हो जायेगा!''

-''सुना! सुना तुम ने राजीव...! दिन भर काम करो, रात में इसकी फैलाई तोड़ फोड़ साफ़ करो!''

-''हे भगवान्! कैसी बहू दी तू ने...लड़के को पहले घर से ले गयी फिर ज़िन्दगी से भी ले गयी!'' माँ रो रही थीं।

-''देखा!....देखा....! अब ये औरत यहाँ नहीं रह सकती...इसे यहाँ से कहीं ले जाओ!...बस!''

-''अरे हम यहाँ ख़ुद नहीं आते....वो तो तुम्ही ले के आए थे! भीख मांगते हुए!...हे भगवान्! तू उठाता भी नहीं निष्ठुर!''

-''माँ! चुप रहो! बहुत हुआ तुम्हारा नाटक! एक तो तोड़-फोड़ करती हो, तमाशा करती हो ऊपर से झगड़ा करती हो!'' राजीव बोला।

-''राजीव इसे यहाँ से ले जाओ..!

-''कहाँ?''

-''कहीं भी!..लेकिन इसने चैन लूट लिया है मेरा! ये इस घर में नहीं रह सकती!''

बहुत लड़ाई झगड़ा, रोआ-पीटी हुई।

दुसरे दिन पता लगाया गया कि क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ इतने बूढ़े लोगों को रखा जा सकता है। किसी जगह सिर्फ़ उन लोगों को रखते थे जो अपना काम ख़ुद कर सकते थे। कोई जगह सिर्फ़ आदमियों के लिए थी। कोई जगह बहुत दूर बैंगलोर वग़ैरह में और बहुत महंगी थी। ढूंढते ढूंढते एक जगह मिली, बम्बई के पास न्यू बॉम्बे में। वहाँ डेढ़ हज़ार रूपए महीने पर वे लोग माँ जी को रखने के लिए तैयार हो गए। दवाओं का ख़र्च अलग।

एक दिन सुबह उठकर राजीव माँ के पास गया।

-''माँ!''

-''क्या?''

-''चलो! तैयार हो जाओ हम एक जगह चलते हें।''

-''हमें दिखता नहीं, हम कहाँ जायेंगे!''

-''तुम चलो तो...कुछ दिन वहाँ रहना। तबियत ठीक हो जाये तो हम तुम्हें वापस ले आयेंगे।''

-''तबियत तो अब हमारी क्या ठीक होगी बेटा!....अब तो बस भगवान् उठा ले बस!''

-''चलो तैयार हो जाओ...''

-''अरे हम नहीं जाते जी.....कहाँ जायेंगे?!''

-''कहा न! चलो!'' राजीव ने इतना तुर्श और सपाट कहा कि माँ ने चलना ही ठीक समझा।

माँ को लाकर वृद्ध आश्रम में रख दिया गया। राजीव ने आश्रम के ऑफ़िस में जाकर साल भर के पैसे एडवांस भर दिए। फिर माँ के पास आया।

-''माँ कुछ दिन यहाँ आराम से रहो....तबियत ठीक हो जाये तो मैं तुम्हें

आकर ले जाऊँगा।''

-''इन को मालूम है तुम्हें कहाँ इत्तेला करना है?''

-''हाँ इनके पास मेरा पता है।''

-''बेटा एक काग़ज़ पर लिखकर अपना पता तुम मुझे भी दे दो...क्या पता ये खो दें तो मेरे पास तो रहेगा।''

राजीव ने एक काग़ज़ माँ के हाथ में थमा दिया। माँ ने उसे सावधानी से मोड़कर अपने तकिये के नीचे रख लिया।

राजीव चला गया।

वृद्ध आश्रम में सुबह साढ़े छः बजे उन्हें उठाकर नहाने ले जाया जाता। कपड़े बदले जाते। फिर नाश्ता दिया जाता- कभी पोहा कभी ब्रेड-बटर कभी इडली और एक प्याला मक्खन निकला हुआ दूध। माँ को ये सब खाने की आदत नहीं थी सो कभी खातीं कभी नहीं खातीं। खाने में गुजराती तौर का खाना होता था। एक थाली में सब कुछ एक साथ-फरसाण, नमकीन, मीठा-सब! शाम को कम पत्ती और कम दूध वाली बग़ैर शकर वाली चाय। रात को फिर क़रीब क़रीब वैसा ही खाना। साढ़े आठ बजे बत्ती बंद कर दी जाती। आयाएं ड्यूटी पर ताश खेलते खेलते जागतीं और वृद्ध अपनी खुली आँखों से लाचारी के खेल देखते देखते...सोचते सोचते! यहाँ सबका सब कुछ था और किसी का कुछ भी नहीं!

छः महीने यों ही गुज़र गए। न राजीव आया न उसकी कोई ख़बर तो माँ ने एक दिन आया से कहा, ''बेटे को ख़बर कर दो कि वो हमें आकर ले जाये!'' आया ने कहा, ''डाक्टर आयेगा उससे कहना''

डाक्टर रोज़ सुबह विज़िट पर आता था। माँ ने उससे कहा। डाक्टर बोला, माँ जी, आपका बेटा बाहर गया है...आयेगा तो कह देंगे। ''डाक्टर ने टाल दिया। दो तीन महीने और निकल गए।

-''अरे राजीव से कहो आकर ले जाये...हम कोई बीमार थोड़े ही हें!'' माँ जी कहती रहीं।

-''वो अब कभी नहीं आयेगा माँ जी!'' आया ने एक दिन कह ही दिया।

-''क्या बकवास करती हो!''

-''हाँ! वो तुम्हें छोड़कर चला गया है। पैसे भी एडवांस में भर गया है।''

माँ का स्टाफ़ पर से भरोसा उठ गया। एक दिन बग़ल वाले वृद्ध के पास एक आदमी आया। देख पाती नहीं थीं। आवाज़ की दिशा में चलीं। उस आदमी का उन्होंने हाथ पकड़ लिया, ''बेटा!''

-''क्या है?''

माँ ने एक परचा उस आदमी के हाथ में दिया, ''बेटा! ये हमारे लड़के का पता है। तुम इसे फ़ोन कर दो कि वो आकर हमें ले जाये।''

आदमी ने परचा देखा। उस पर कुछ लाइने खिचीं थीं। लिखा कुछ नहीं था।

-''इस पर तो कोई पता नहीं लिखा है!''

-''हट...तू भी झूठ बोलता है...तू भी इनके साथ मिला हुआ है!...ये लोग हमें अपने बेटे से नहीं मिलने देते....!''

फिर ऐसे वाक़यात अक्सर होने लगे। माँ ने किसी की आवाज़ सुनी और पहुँच गयीं। उस दिन फिर पहुँच गयीं।

-''बेटा...! ए बेटा....! ये देखो हमारे लड़के का पता है।''

-''अरे कौन है ये?....'' आदमी घबरा गया।

आया ने आकर हाथ छुड़ाया।

-''हट चुड़ैल'' माँ ने आया को हटाने की कोशिश की, ''तू हमें अपने बेटे से नहीं मिलने देती।''

-''चलो चुपचाप लेट जाओ!'' आया ने हाथ पकड़ कर उन्हें उनके पलंग की तरफ़ घसीटा।

माँ ने आया का हाथ झटक दिया। ''नहीं लेटते...जा!'' वे फिर उस आदमी की ओर लपकीं, ''बेटा! देखो तुम्हारा बड़ा एहसान होगा!...बेटा...!''

आया ने मैंट्रन को मैंट्रन ने डाक्टर को आवाज़ लगाई। ड्यूटी वाला डाक्टर आ गया। माँ जी ने आदमी का हाथ और कस कर पकड़ लिया।

-''बेटा!....ए बेटा...!....सुनो तो......''

डाक्टर ने ज़बरदस्ती माँ जी के हाथ में इंजेक्शन लगा दिया। माँ का शरीर सुन्न पड़ने लगा। आँखें मुंदने लगीं। आदमी के हाथ से उनकी पकड़ छूट गयी। उनके मुंह से बौराई सी, स्वप्निल सी आवाज़ एक बार फिर निकली, ''बेटा!...ऐ बेटा......! सु....नो.....तो....''

उसके बाद माँ बेहोश होकर पड़ गयीं।

दौर

रात के ग्यारह के आस पास भूटानी का फ़ोन आया, ''भदौरिया नहीं रहा''। हालाँकि मौत ज़िन्दगी की एकमात्र सच्चाई है लेकिन मौत वह भी है जो अतीत की तमाम यादों को साफ़ साफ़ सामने ले आती है। घुंघराले बालों वाले, दुबले पतले,सांवले और इंटेलेक्चुअल से दिखने वाले संतोष कुमार भदौरिया- से मेरा मिलना पहली बार छटी कक्षा में हुआ था। झाँसी का गवर्नमेंट इंटर कॉलेज छटवीं से शुरू हो कर बारहवीं तक था। हम सब पांचवी कक्षा अलग अलग स्कूलों से पास कर के यहाँ आये थे। इस दुबले पतले, सांवले, घुंघराले बालों वाले दब्बू लड़के से मेरी वहीं मुलाकात हुई थी। और वहीं मुलाकात हुई थी अरविन्द कंचन से, राम प्रसाद अग्रवाल से, सुरेश जैन से, हारून रशीद और चंद्रकांत त्रिपाठी से। ये नाम याद रह गए क्योंकि इनसे अच्छी दोस्ती हो गई थी और लम्बी चली वरना तो क्लास में 55 लड़के थे। वहां से इंटरमीडिएट करने के बाद मेरे कुछ सहपाठी जैसे कंचन, रस्तोगी, हारून रशीद मेडिकल कॉलेज चले गए, कुछ के पेरेंट्स का ट्रांसफ़र हो गया सो वे शहर के बाहर चले गए। मैं ने, भदौरिया, सुरेश और भूटानी ने झाँसी के ही बी. बी. सी. डिग्री कॉलेज में बी. एस. सी. में दाख़िला ले लिया। इस कॉलेज में हमारे दोस्तों में योगेंद्र सक्सेना भी जुड़ गया।

इंटरमीडिएट तक कॉलेज सिर्फ़ लड़कों का था और बी. एस. सी. में अचानक एकदम को- एजुकेशन। लड़के और लड़कियां एक साथ एक क्लास में। सभी के जवान होते शरीर, तबीयतें, भावनाएं और इच्छाएं ! लेकिन 1970 का ज़माना था तब आज जैसा स्वतंत्र वातावरण नहीं था इसलिए लड़के लड़कियों की तरफ़ देख देख कर (शायद लड़कियाँ भी लड़कों की तरफ़....कौन जाने) चुपचाप लार टपका टपका कर,आहें भर भर कर सिर्फ़ देखते रह जाते थे, हिम्मत नहीं होती थी कि जा के किसी से बात कर पाएं। हम में से सुरेश तो वैसे भी चुप्पा था। सेंटीमेंटल बहुत था, लेकिन क्या मजाल कि किसी से कुछ कहे। अपने भाव

व्यक्त नहीं करता था। त्रिपाठी बाग़ी था- ज़रा ज़रा सी बात में सीधा गाली पे उतर आता था। अन्याय उससे बर्दाश्त नहीं होता था। भूटानी हम सब में सबसे सेंसिबल था। वह सब को सब स्थितियों में सम्भाल लेता था। भदौरिया मस्त था! संगीत का शौक़ीन था और हर तरह से 'डीसेंट' और 'पोलिटिकली राइट' रहने में विश्वास करता था। मैं बदमाशी में अव्वल था। क्लास में टीचर्स को तंग करना, सही जानते हुए भी पूछे जाने पर ग़लत जवाब बताना ताकि क्लास- ख़ास कर लड़कियां- हंस पड़ें इत्यादि। क्लास में लड़के एक तरफ़ बैठते थे लड़कियां दूसरी तरफ़। टीचर्स ब्लैक बोर्ड पर लिखने लगते तो लड़के कनखियों से लड़कियों की तरफ़ देख लेते थे। देखने का मौक़ा सिर्फ़ दो जगह ही तो मिलता था- या तो साइकिल स्टैंड पर या क्लास में क्योंकि लड़कियां कॉलेज आ कर सीधे अपने कॉमन रूम में चली जातीं थीं, लड़के गार्डन में घूमते रह जाते थे।

-''गुप्ता जी का पीरियड बैठना है क्या?'' भूटानी ने पूछा। वैसे भी उसे गुप्ता जी का पीरियड पसंद नहीं था।

-''नहीं तो क्या करेंगे?'' सुरेश ने अपनी हथेली को सवालिया बना कर गर्दन टेढ़ी कर के पूछा।

-''कल्ला की चाय पिएंगे।''

-''मैं नहीं जाता, तम लोग साले मुझे गाने नहीं देते!'' भदौरिया रिरियाया।

-''अबे गा लेना बे....''

- ''लेकिन अभी से कल्ला के यहाँ क्यों,'' भदौरिया ने सवाल किया, ''मैं तो कॉलेज की छुट्टी हो तब जाऊंगा।''

-''ये भला अभी क्यों जायेगा!'' त्रिपाठी चिल्लाया,'' इसे तो बीना निगम को घर तक छोड़ कर आना है न, और वो लास्ट पीरियड से पहले जाएगी नहीं!''

-''चल चल''.....भदौरिया चिढ़ा। योगेंद्र बग़ल में खड़ा था,बोला,'' बीना निगम नईं मिलेगी तुमें बेटा!''

-''तुमसे पूछा?'' त्रिपाठी गुर्राया, ''तुम चुप रहो। वो भदौरिया का माल है।''

-''ओये होय.....पंडित! तू अपनी ये बेकार की बातें फैलाना बंद कर......मैं किसी का पीछा नहीं करता!'' भदौरिया ने त्रिपाठी को धमकाया।

-''तो बीना के पीछे पीछे साईकिल दौड़ाता उसके घर तक उसे कौन छोड़ के आता है रोज़ाना?''

-''छोड़ यार.....'' भूटानी झल्ला गया, ''कल्ला के यहाँ चलना है या नहीं चलना! इतनी सी बात है....'' हम सब इंटरवल में गार्डन में बैठे कल्ला के यहाँ जाने

न जाने पर चर्चा कर रहे थे कि योगेंद्र की गर्दन गेट से कॉमन रूम जाती हुई किसी की तरफ़ पड़ी। उसने मेरे कंधे पर थपथपाया ,''अबे ओये....उधर देख!'' फिर आँखें नचा कर पूछा ''ये कौन है? नाम क्या है इसका?''

-''ये!'' मैं ने झलक भर भी मुश्किल से ही देख पायी थी, ''क्या पता।'' मैं ने कहा।

-''ये भाइयो कोई नईं आयी है,'' योगेंद्र अपनी रिसर्च उंडेलते हुए बोला।

-''मिड टर्म में?''

-''तो क्या हुआ? इसके बाप का ट्रांसफ़र हुआ होगा।''

-''जो भी हो,'' योगेंद्र बोलता गया, ''लेकिन ये गर्ल्स कॉमन रूम से निकल कर नज़र उड़ाते हुए वो इतराती है कि बस! टीज़ करती है! लड़कों की तरफ़ नज़र करती है फेर लेती है....चालू लगती है।....इसे मेरे सेक्शन में भेज दे भगवान्!''

-''सेक्शन में आ जाये तो तू तो जैसे इससे शादी ही कर लेगा?'' भदौरिया चिल्लाया।

-''अशोक कर भी लेगा!'' भूटानी बोला, ''ये साला जब फोर्थ क्लास में एक लड़की को प्रपोज़ल देने उसके घर पहुँच सकता है तो अब तो ये बड़ा हो गया है।''

-''तुम सबको बता दो सब कुछ.....!'' मैं ने गुस्सा जताते हुए भूटानी से कहा।

लेकिन बात सही थी और चौथे क्लास की ही थी। पांचवीं तक सब बच्चे-लड़के लड़कियां-साथ पढ़ते थे और साथ ही बैठते थे।

उस उम्र में कहाँ किसी को जेंडर जैसी चीजों ज्ञान होता है। उस समय अपने क्लास की एक लड़की मुझे बहुत पसंद थी- आशा देवधर! मैं ने अपनी कॉपी के एक पेज पर लिखा कि तुम मुझे अच्छी लगती हो,चलो हम लोग शादी कर लें। उस पेज को मोड़ कर जेब में ले जा कर स्कूल के बाद मैं उसके घर गया। उसे बाहर बुलाया लेकिन आस पास कोई और होने की वजह से न वो पत्र उसे दे पाया न उससे कुछ कह पाया। बात याद रह गयी और दिल में रह गयी।

बी.एस.सी. में बॉटनी मेरा पसंदीदा विषय था। इसमें मेरे प्रैक्टिकल्स और पेपर्स दोनों अच्छे होते थे। ये बात सारे क्लास को मालूम थी। कुछ लड़के और दो एक लड़कियां मुझसे मेरे नोट्स भी मांग लिया करते थे। लेकिन मुझे अच्छा जब लगता था जब परवीन नोट्स मांगती थी। परवीन होमी साहिर! हमेशा सफ़ेद फ्रॉक में, कटे बालों वाली, गोरी ,भरे बदन की गोल चेहरे वाली लड़की जो शक्ल से ही पढ़ी लिखी और नो- नॉनसेंस लगती थी। वादे की पक्की थी। जब वो दो दिन का

वादा कर के नोट्स लेती तो ठीक दो दिन बाद वापस दे देती। और मज़ा ये कि मेरे नोट्स में वह मेरी अंग्रेज़ी की ग़लतियां भी ठीक कर देती थी। फिर भी न उसने कभी जताया कि वह मुझसे ज़्यादा अच्छी अंग्रेज़ी जानती है न कभी ये कहा कि उसने मेरी ग़लतियाँ सुधार दी हैं। अक्सर मुझे उससे बात करने का जी करता था लेकिन तब न समय होता था न मौक़ा ।

-''पकौड़ी खायेगा?''

-''खाया तो बे!''

-''एक प्लेट और?''

-''चलो।''

कल्ला की दुकान पर हम पांच छह लोगों ने तीन पीरियड गुज़ार दिए। लड़कियां/कवितायें/साहित्य/ राजनीति/शहर की आबोहवा/आजकल शहर में कौन कितना बड़ा दादा है और क्यों इत्यादि इत्यादि पर तमाम तन्क़ीदों के बाद जब कॉलेज की छुट्टी का समय हुआ तो हम बाहर निकले। सबने अपनी अपनी साइकिलें संभालीं और इंतजार करने लगे कि कब किसकी वाली निकले और कब वह साईकिल की घंटी टनटनाता हुआ उसके पीछे उसे घर तक सुरक्षित छोड़ आये। हम बाहर निकले ही थे कि योगेंद्र ने अपनी भूरी भूरी आँखों को छोटी करके, दांत निपोरते हुए कहा- ''ये देखो!'' वह अपनी हथेलियों में रख कर तक़रीबन पंद्रह बीस एल्युमीनियम की चम्मचें दिखा रहा था।

-''अबे!....तू साले आज फिर चुरा लाया!'' एक ने कहा

-''चम्मच उठाने को चुराना नहीं कहते।'' दूसरा बोला।

-''होटल वाला पकड़ेगा तो अपना आना बंद कर देगा।'' कई ने एक साथ कहा।

-''वो जानता होगा!'' योगेंद्र ने हल्के से मुस्कुरा कर कहा।

-''मैं कल तेरा भंडाफोड़ करता हूँ,'' त्रिपाठी गुस्से से बोला, ''तू चोर है.... .हम चोर से दोस्ती नहीं रखेंगे।''

-''चल यार दो चम्मचें तू भी रख ले इसमें से!'' योगेंद्र ने हंसकर कहा।

-''रिश्वत?'' त्रिपाठी गुर्राया ।

-''त्रिपाठी'' भूटानी बोला, ''शांत हो जा....ये चोरी नहीं है, ये शैतानी है... ..न समझ में आये तो पिताजी से शाम को पूछ लेना!...शाबाश!''

सुरेश हालाँकि चुप्पा था लेकिन था तो इंसान। उसके दिल की बात भी अभिव्यक्ति मांगती थी और दिल की बात दोस्तों से न कहता तो किस से कहता

! एक दिन बोला, ''यार अशोक, ये कौन है जो उस तरफ़ कोने में बैठती है....छोटी सी....?''

'कौन है' तीन दिन इसी देखने में निकल गए। कभी क्लास नहीं हुई कभी हुई तो कोने में कोई और बैठा था। एक दिन शायद वह आयी ही नहीं। फिर एक दिन सुरेश क्लास में मेरे साथ बैठा और उसने अंग्रेज़ी की क्लास में मुझे धक्का मारा-'' वो देख....उधर....फ्रंट रो में!''

-''यहाँ से तो शक्ल ही नहीं दिख रही!'' मैं ने कहा। फिर छुट्टी के बाद उसने उसे साईकिल स्टैंड पर दिखाया।

-''ये?....इसको तो सीपरी की तरफ़ जाते देखा है....ये तो तू भूटानी से पूछ ....उसी के आस पास रहती होगी....''

-''ये?'' भूटानी बोला, ''ये स्टेशन के पास वाली रेलवे कॉलोनी में कहीं रहती है। चित्रा चौराहे से मुड़ जाती है।''

-''यार ग़ज़ब है!'' सुरेश ने दिल की बात कही।

-''अबे देख लिया न.....बस!....अब इन सब में टाइम बर्बाद नहीं करते.. ..'' भूटानी ने ज्ञान दिया।

-''तुम साले अपने आप को सेंसिबल कहने वाले लोग भावनाओं को कभी नहीं समझोगे।'' भदौरिया ने हिक़ारत से कहा, ''ये लाइफ़ है न....ये कोई ब्लैक एंड व्हाइट नहीं है....इसमें हर तरह के रंग हैं और रंगों में भी हर तरह के शेड्स हैं... .ये जीने के लिए है, और जीने के लिए दिल चाहिए.....तुम जैसे बेहूदा सो कॉल्ड दिमाग़ वाले लोग नहीं चाहिए।''

-''बेटा बी.एस.सी. पास करना है न तो दिमाग से ही काम लेना पड़ेगा... .दिल से एग्ज़ाम्स पास नहीं होते!...क्या अशोक.....ठीक है न?''

-''बात तुम्हारी भी ठीक है और तुम्हारी भी,'' मैं ने कहा, ''लेकिन ग़ालिब साहेब ने लिखा है 'शम्म हर रंग में जलती है सहर होने तक'।''

-''साला! पॉलिटिशियन! दोनों तरफ़ बैलेंस कर के बोला!'' त्रिपाठी ने चाय का गिलास मेज़ पर पटकते हुए कहा, ''एनी वे.....सुनो अशोक.....मैं बहुत दिनों से कहना चाहता हूँ मगर दिमाग़ से निकल जाता है.....तुम क्लास में शैतानी मत किया करो।''

-''क्यों गुरु जी?'' मैं ने पूछा।

-''इसलिए कि तुम डिस्टर्ब करते हो।''

-''अबे लड़कियां तक डिस्टर्ब नहीं होतीं और तू डिस्टर्ब हो जाता है?''

-''अच्छा तो ये सब तुम लड़कियों को इम्प्रेस करने के लिए करते हो? शर्म करो.....'' भदौरिया ने मज़ाक़ उड़ाते हुए लेकिन सीरियस हो कर कहा।

उस समय कौन सोच सकता था कि संतोष कुमार भदौरिया इंडियन अग्रि रिसर्च इंस्टीटूट का डाइरेक्टर हो कर रिटायर होगा। उसने केमिस्ट्री में पी.एच.डी. किया था और तमाम रिसर्च पेपर्स लिखे थे और अपना और देश का दूर दूर तक नाम किया था। कार्यकाली जीवन में कभी एक आध बार ही मुलाक़ात हुई लेकिन जब वो रिटायर हो गया तब उसने सिलसिलेवार सब दोस्तों से दोबारा राब्ता क़ायम करना शुरू किया था। उसने अपनी दोनों बेटियों की शादी कर दी थी और झाँसी में वापस आ कर बस गया था। सुबह से शाम तक किसी न किसी चीज़ में, पढ़ने-लिखने में या गप-शप में व्यस्त रहता था और शाम को चार से सात तक बांसुरी बजाना सीखता था- बाक़ायदा संगीत टीचर लगा कर। कहता था, ''हमेशा से सीखनी थी.....मौक़ा ही नहीं मिला।''

मैं बम्बई में बस गया था। झाँसी से मेरा ताल्लुक़ एकदम टूट गया था। कुछ साल पहले यादें ताज़ा करने के लिए लखनऊ जाते जाते रास्ते में एक दिन के लिए रुका तो भदौरिया से मिला। पुराने दोस्त मिल जाएँ तो चुहल बाज़ियां अपने आप उभर आती हैं। मैं ने पूछा, ''अच्छा उसका क्या हाल है जिसके पीछे घंटी बजाते बजाते तुम उसे घर तक छोड़ आते थे?....याद है अब तक?''

-''बीना निगम?.....हाँ हाँ.....शी इज़ इन जर्मनी....वह यूनिवर्सिटी ऑफ़ इश्टुटगार्ट में केमिस्ट्री की अस्सिटेंट प्रोफ़ेसर है। तीन साल पहले एक कॉन्फरेंस में जब मैं लन्दन गया था तब वहीं उससे मेरी मुलाक़ात हुई थी। उसे भी हमारी याद है।'' इन दोनों को ले कर और उन दिनों की याद का जो मज़ाकिया भाव मन में उठा था वह अचानक मिडिल ऐजेड सभ्य लहजे में बदल गया और हम 'शैतान बच्चों' के मनोभाव से उठ कर सभ्य वयस्कों के ख़्याल वाली मनोवृत्ति में पदार्पण कर गए। इसके बाद ''आई सी, वैरी गुड'' कहने के आलावा कुछ बनता नहीं था।

-''बट यू नो.....ये नौकरी कर के मैं बहुत पछताया!'' भदौरिया ने अपना दुःख ज़ाहिर करते हुए कहा।

-''क्यों? तुम तो बड़े ओहदे पर थे।''

-''अरे क्या ख़ाक बड़ा यार ! मैं साइंटिस्ट हूँ......मैं क्लर्क बन के रह गया। न मैं रिसर्च कर पाया, न रिसर्च को गाइड कर पाया, मैं बस फ़ाइलें चलाता रहा। बाबू की तरह। मुझे केमिस्ट्री लैब देखे मुद्दतें हो गयीं। बस बॉस के सामने 'यस

सर' 'यू आर राइट सर'....नहीं तो बेटा नौकरी तो नहीं जाती, सी.आर. ज़रूर बिगड़ जाती।''

-''अच्छा तुम्हारी किसी से मुलाक़ात है क्या?'' उसने मुझसे पूछा ।

-''त्रिपाठी, ''मैं ने कहा,'' चीफ़ इंजीनियर है नेवी में....बम्बई आता है तो मिलता है।''

-''अभी भी वो ही तेवर हैं सत्यवादी लठैत वाले या सुधर गया है?''

-''पता नहीं हम सुधर जाते हैं या बिगड़ जाते है। ज़िन्दगी जीने का हौसला ले कर चलते हैं और धीरे धीरे सिर्फ़ चलते रह जाते हैं ज़िन्दगी भूल जाते है। फिर कुछ दिनों में ज़िन्दगी हमें भूल जाती है और हम बस जीते रहते है।''

-''वो नेवी वाला है पता नहीं किस किस देश में उसने घर बनाये होंगे।''

-''नईं बम्बई में रहता है।''

-''शादी की उसने?''

-''जब अकेला था तब चेम्बूर में रहता था। वहीं महाराष्ट्रियन मकान मालिक की लड़की से उसका इश्क़ हो गया.....शादी हो गयी। अब दो बच्चों का बाप है।''

इधर उधर की बातों के बाद भदौरिया बोला, ''चलो आओ तुम्हें बांसुरी सुनाता हूँ।''

पंद्रह मिनट मुझे उसकी राग काफ़ी का विकृत रूप झेलना पड़ा। तब मुझे त्रिपाठी की कमी खली। वह होता तो फ़ौरन बोलता ''बंद कर बे अपना ये चाय-कॉफ़ी राग!'' मगर मैं यह नहीं कह सका क्योंकि हम अब कॉलेज में नहीं थे, हम बड़े और सभ्य हो चुके थे! लेकिन त्रिपाठी का ख़्याल आया था तो मैं ने कहा, ''पिछले दिनों सुरेश की बीबी बम्बई आयी थी तो उसने मुझे फ़ोन किया और त्रिपाठी को भी किया। उसे मालूम था कि त्रिपाठी और सुरेश कभी अच्छे दोस्त थे। और वो चाहती थी कि किसी मामूली सी मिस-अंडरस्टैंडिंग के कारण इनकी गहरी दोस्ती सफ़र न करे। उसने त्रिपाठी से कहा, हमारे बेटे की शादी है अगले महीने, आप ज़रूर आइयेगा।''

-''वो समंदर में हुआ तो कैसे आएगा!'' भदौरिया ने लापरवाही से कहा।

-''असल में त्रिपाठी और सुरेश एक दूसरे से टॉकिंग टर्मूस पे नहीं हैं।''

-''क्यों?'' भदौरिया बांसुरी एक तरफ़ रख कर एकदम कंसर्नड हो गया।

तुम्हें याद है वो स्टेशन रोड वाली लड़की....जिसके बारे में उसने भूटानी से पूछा था?....उसको वह बहुत पसंद आने लगी थी, उसने उसके घर आने जाने के भी सिलसिले कर लिए थे। जब वह तीन महीने के लिए एकशार्ट कोर्स करने इंग्लॅण्ड

जाने लगा तो उसने त्रिपाठी से कहा, 'ज़रा इसका ख़्याल रखना।' त्रिपाठी साला ख़ुद उसके प्यार में पड़ गया और जब सुरेश लौट कर आया तो लड़की त्रिपाठी के साथ स्कूटर पर बैठ कर घुमाई कर रही थी और सुरेश देखता रह गया था।''

-''ये बेवफ़ाई उसकी बीबी को मालूम है?''

-''बेवफ़ाई नहीं, ग़द्दारी!''

-''ख़ैर, अब तो वो न जाने किस किस को किस किस देश में घुमा रहा होगा।''

-''अब नहीं.....एक तो वो अब रिटायर होने वाला है, दूसरे उसकी बीबी जो है न वह एकदम चंडी का अवतार है। घर का सारा माहौल मराठी कर दिया है और इसे उसने ऐसा कंट्रोल में रखा है कि पूछो मत।''

सितम्बर के महीने में कॉलेज का एलुमिनाई- डे होता था। भदौरिया नहीं जाता था। क्यों? ''क्योंकि,'' वह कहता था, ''ये बेकार का सेलिब्रेशन है। ये कोई सेलिब्रेशन ही नहीं है। सेलिब्रेट लाइफ़ करनी चाहिए, सेलिब्रेट प्यार करना चाहिए, सेलिब्रेट पॉज़िटिविटी करनी चाहिए....ये तो साथ के जो जो लोग बड़े आदमी हो गए उन्हें सेलिब्रेट करने का फ़ंक्शन है।''

-''परवीन की याद है?'' मेरे दिल की दबी बात निकली ।

-''परवीन होमी साहिर?....हाँ हाँ....जब मैं दिल्ली से रिटायर हो कर आया तो एक दिन सीपरी का जहाँ तांगा स्टैंड होता था उस तरफ़ निकला। वहीं पास वाली भाजी मंडी में वह सब्ज़ी ख़रीद रही थी। बूढ़ी हो गयी है, चश्मा चढ़ गया है और उसे शायद सुनने में भी दिक़्क़त होती है। मैं ने हेलो किया तो उसे पहचानने में ज़रा देर लगी....अब परवीन वो स्मार्ट परवीन नहीं रह गयी....उम्र से ज़्यादा बूढ़ी लग रही थी।''

-''कुछ करती है?''

-''आर्य कन्या स्कूल में साइंस टीचर थी.....लेकिन जब से उसका हस्बैंड नहीं रहा उसने नौकरी छोड़ दी है। बच्चे हैं नहीं, अकेली रहती है।''

उस शाम हमारी कितनी और बातें हुई। योगेंद्र के बारे में, जो चम्मच चुराने का मास्टर था, कि कैसे उसने पी, डब्लू, डी, का चीफ़ इंजीनियर बनकर बेईमानों को बेनक़ाब करने के चक्कर में अपना कैरियर बर्बाद कर लिया। सुरेशके बारे में जो बी.एच.यु. में जूलॉजी का प्रोफ़ेसर था और आजकल के एजुकेशन सिस्टम से किस क़दर नाख़ुश था। भूटानी के बारे में जिसने एम्.एस.सी. करके इंडियन ग्रास लैंड में नौकरी कर ली थी और एक डीसेंट घरेलु ज़िन्दगी जी रहा था। रहता झाँसी में ही

था, ख़बर सबकी रखता था, लेकिन ज़्यादा किसी से मिलता जुलता नहीं था। गौतम नाथ आर्य, देश के चीफ़ इलेक्शन कमिश्नर, के बारे में जो रोज़ाना टी.वी. पे आता है, जिसे मैं पैदल जाता देख कर अक्सर अपनी साईकिल पर कॉलेज के लिए लिफ़्ट देता था और अब उसे मेरा नाम तक याद नहीं है ।

-''तुमने उसे फ़ोन क्यों नहीं किया?''

-''किया था....उसके पी. ए. के पास दो दो मैंसेज छोड़े, कहा कि मैं उसका क्लासमेट हूँ और मुझे कोई काम नहीं है। उसने कोई जवाब नहीं दिया।''

फिर उस शाम और भी न जाने कितनी बातें निकलीं। वो सब बातें जो हमें उस दौर की ज़िंदगी दोबारा जिलातीं जिस दौर में हम बेफ़िक्र, बेबाक़ और बेकार हुआ करते थे।

वो भदौरिया आज मर कर एक बार वो सब फिर याद दिला गया। लेकिन आज वह उस दौर में जिला नहीं गया- आज वह उस दौर की याद दिला कर अफ़्सुर्दगी पैदा कर गया कि हाय! क्या दौर था, क्या हम थे और समय के साथ सब कुछ कैसे अपने आप बदलता गया है!

अपना अपना शून्य

प्रकृति अपूर्ण है और पूर्णता की तलाश में भटक रही है। पेड़-पौधे हों, जीव-अजीव हों, इंसान-जानवर हों, कीड़े -मकौड़े हों अपूर्णता सब में है। हर एक के अंदर एक शून्य है। कुछ ख़ाली है। कमी है। और इसीलिए हर एक को पूर्णता की तलाश है क्योंकि आनंद केवल पूर्णता में है। कष्टों का दुखों का निवारण केवल पूर्णता में है। हर एक के अंदर की यह अपूर्णता उसके अपने प्रकार की अपनी है और वैसी ही अनोखी है जैसे के उसका अकार या उसका मन और हर एक की यह अपूर्णता-शून्य-व्यक्त भी उसकी अपनी तरह अलग अलग और अपनी अनोखी तरह ही होता है। हर एक का व्यवहार और आचरण उसके इन्हीं लेकुनाज़-शून्यों-को भरने की कोशिश है। उसकी अपनी अपूर्णता से पूर्णता की ओर का सफ़र। आनंद की तलाश, सुख की प्राप्ति, मनुष्य की दैवत्य से तादात्म्य की कोशिश! इत्यादि इत्यादि...!

जैसे अंक गणित का शून्य एक को लाख और करोड़ बना देता है, अंदर का शून्य लोगों को पता नहीं क्या क्या करने को प्रेरित करता है और क्या क्या करने पे मजबूर करता है- सही भी ग़लत भी! वैसे भी सही क्या है और ग़लत क्या है! अंदर का शून्य केवल शून्य होता है-एक वैक्यूम-एक ख़ालीपन! उसका अमीरी ग़रीबी, इक्लौतेपन या रिश्तों के अम्बार या समाजिक यश होने न होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि ये सब बातें तो वाह्य हैं, शून्य तो अंदर है। मन के सारे क्रिया कलाप तो इस शून्य को भरने के हैं। और मन की भटकन और आकांक्षाओं को अमीरी ग़रीबी, यश इत्यादि से क्या लेना देना। और क्या लेना देना उसका उम्र से! क्या कभी बड़े बड़ों को समझ में आता है कि वे जैसे हैं वैसे क्यों हैं, जैसा बर्ताव करते हैं वैसा ही क्यों करते हें?...उम्रें गुज़र जाती हैं लोग अपने आप को ही नहीं पहचान पाते। अक्सर लोग खुद अपने व्यवहार, अपने रिएक्शनों से खुद ही चकित रह जाते हैं। फिर दीपक, बाड़ और गोविन्द तो बच्चे थे।

झाँसी के नरसिंघ राओ टौरिया मोहल्ले में यूँ समझिये के बस ये तीन ही आठ-दस साल की उम्र के थे। और या तो बड़े हो गए थे या बड़े हो रहे थे। तीनो के मकान एक दूसरे से जुड़े हुए थे। एक तरफ़ बाड़ का छोटा सा मकान जिसका चबूतरा बहुत बड़ा था-शायद उसकी वजह ये रही हो कि उन्होने उस पर बग़ैर कुछ बनवाये उसे वैसे ही छोड़ दिया हो। बाड़ के घर की एक दीवार से जुड़ा हुआ गोविन्द का मकान था जिसे नाज़िर जी का घर कहा जाता था। नाज़िर जी का इसलिए क्योंकि गोविन्द के ताऊजी-जिनका ये मकान था-वे कचहरी में नाज़िर रह कर रिटायर हुए थे उन्हीं के नाम पर इस मकान का नाम पड़ गया था और चला आ रहा था। नाज़िर जी के मकान के दूसरी तरफ़ की दीवार लगी थी दीपक के मकान से जो कि उस मोहल्ले का ही नहीं बल्कि शहर के तीन चार बड़े बड़े मकानों में से एक था और उसे श्रीवास्तव साहेब की हवेली के नाम से जाना जाता था। तीनों मकानों के दरवाज़े एक मैदान नुमा ख़ाली जगह में खुलते थे। वहाँ बच्चे खेलते भी थे और जाड़ों में कभी कभी बड़े लोग-जब आँगन में धूप नहीं आती थी- तो कुर्सी डाल कर बैठ भी लेते थे।

आज़ादी के बाद जिस तरह शहरीकरण ने अपनी जड़ें फैलानी शुरू कीं उसके नतीजे ये हुए के लोग गाँव से शहर और शहर से और बड़े शहर की ओर पलायन करने लगे। उसी की बदौलत हवेली भी अकेली रह गयी वरना इसमें एक बार में पच्चीस से कम लोगों ने खाना नहीं खाया। अब तो ख़ैर हवेली ही हवेली रह गयी है और उसमें रह गए हैं श्रीवास्तव साहेब, उनकी बूढ़ी बेचारी माँ और उनका सबसे छोटा लड़का दीपक। दीपक की माँ उसकी पैदाइश से ही पागल थीं सो उनका होना न होना बेकार था। कहते हैं दीपक से बड़ा भाई जब पैदा हुआ था उसके एक साल के अंदर ही वे पागल हो गयी थीं। इस बारे में भी तमाम क़िस्से थे कि किसी की नज़र लग गयी, किसी ने हवेली की खुशियां देख कर कोई करनी कर दी...जो भी हो....बहरहाल दीपक और उसके बड़े भाई की पाल-पोस, पढ़ाई-लिखाई सब श्रीवास्तव साहेब ने अकेले ही की। दीपक जब तक पांच साल का हुआ तब तक उसका बड़ा भाई शहर के बाहर पढ़ने जा चुका था।

दीपक क़तई तौर पर अकेला रह गया था। तो स्कूल से आ कर क्या किया जाये? या तो ख़ाली छतों पर दौड़ लगाई जाये या बाहर की ख़ाली पड़ी जगह में गिल्ली-डंडा खेला जाये..बरसातों में तो वो भी नहीं। क्योंकि सारे मोहल्ले के लड़के तो उस दौरान कंचे खेल रहे होते थे और कंचे खेलने पर घर में सख़्त मनाही थी-'कंचे आवारा लड़के खेलते हैं'....अच्छा अगर स्कूल की छुट्टियां हों तो? तो क्या

करें?..इसलिए होता ये था कि गोविन्द, दीपक और बाड़ तीनों आपस के घरों में-जब जैसा मन हुआ तब-कुछ खेलने चले जाते थे।

नाज़िर जी-घनश्याम स्वरुप सक्सेना-के एक छोटा भाई था श्याम स्वरुप सक्सेना। 'था' इसलिए कि पिछले दस सालों से वो लापता है और है भी के नहीं ये भी किसी को मालूम नहीं। गोविन्द उन्हीं की औलाद था। गोविन्द की माँ थीं। और जैसे कि तमाम हिंदुस्तानी औरतें हिंदुस्तानी घरों में इन हालात में जी लेती हैं वैसे ही वे भी जी रही थीं। बाहर वो ही शिष्टाचार, वो ही रीति-रिवाज वो ही जैसे सब कुछ ठीक-ठाक है और अंदर....! अंदर क्या है ये शायद वे भी ठीक से नहीं जानती होंगीं क्योंकि अपने बारे में सोचने की न तो कभी पुरातन समाज ने औरत को फ़ुर्सत दी है न ही इजाज़त। और दो चार पल उधार जोड़-जाड़ कर अगर उसने अपने हाल का अवलोकन कर भी लिया तो जिन सीमाओं में वो बाँध दी गयी थी उन्हें तोड़ना मुश्किल ही नहीं ग़ैर मुमकिन था। बहरहाल...घनश्याम स्वरुप जी अब रिटायर हो चुके थे और घर में मर्दों के नाम पर या तो वे थे या फिर गोविन्द! औरतों के नाम पर गोविन्द की माँ और उनकी जेठानी। घनश्याम जी के औलाद कोई थी नहीं।

नाज़िर जी-घनश्याम स्वरुप सक्सेना-बड़ी रौबीली पर्सनालिटी के थे। सफ़ेद मूंछें, सफ़ेद बाल, गोरा रंग और जब वे अपनी सफ़ेद धोती और कुर्ते में छड़ी ले कर निकलते थे तो क्या मजाल कि ऐरे ग़ैरे की नज़र मिलाने की भी हिम्मत पड़ जाये। नाज़िर जी दो बार ही घर से निकलते थे-एक सुबह जब वे नरिया बाज़ार तरकारी ख़रीदने जाते थे और दूसरे शाम को जब वे क़िले के मैंदान की तरफ़ घूमने जाते थे। जिंदगी एकदम रूटीन से बे-ज़लज़ला-ओ-तूफ़ान चल रही थी कि एक दिन न जाने उनको क्या सूझी घरों के सामने पड़ी खुली जगह के एक कोने में उन्होने मुनगे का दरख़्त बो दिया। जिसने घर के तुलसीघरे में कभी जल नहीं चढ़ाया उसने पेड़ लगा दिया और रोज़ाना सुबह शाम उसमें पानी देने जाने लगा तो ताज्जुब तो होना ही था। ''मुनगे का पेड़ है,'' सक्सेना साहेब ने कहा, ''फलियां आएंगी तो सारे मोहल्ले वाले खाएंगे।'' इत्तेफ़ाक़ से पेड़ जम गया और बढ़ने लगा। फिर सावन की फुहारें शुरू हो गयीं सो पेड़ की परवरिश से फ़रागत हो गयी। लेकिन बस क्वांर में पितृ पक्ष खत्म हुए हुए ही थे कि नवरात्रि की दूझ को नाज़िर जी ने घर में मधुमक्खियां पालने का कार्यक्रम शुरू कर दिया। दिन भर उसी में लगे रहते थे। छत्ता लगा तो उनकी बीवी बेतरह चिल्लाईं, ''मक्खियन से डसवाहो? मार डारहो!'' लेकिन नाज़िर जी ने भरोसा दिलाया कि कुछ नहीं करेंगी ये पालतू मक्खियाँ हैं।

नज़रायन के कलेजे को ठंडक जब पहुंची जब शहद निकलना शुरू हो गया। लेकिन उनका चिल्लाना तब फिर शुरू हो गया जब बोतल भर भर के शहद नाज़िर जी दुनिया को बांटने लगे।

-''मुफत!?''

-''अरे हम पैसा कमाने के लिए थोड़ो किये हैं ये सब....हमको शौक़ रहा हम कर लिए...बैठे बैठे क्या करें...और आज तक कभी किसी के लिए कुछ किये हैं क्या?''

इस तरह सक्सेना साहेब अपना ख़ाली पना भरते रहे और ज़िन्दगी काटते रहे।

तीसरा था बाड़- बाड़ डोंगरकर! मराठी थे, झाँसी ग्वालियर और इंदौर तो मराठी लोगों का गढ़ है। यही लोग कभी वहाँ राज गद्दी भी सँभालते थे। या तो पहली वजह से दूसरी रही हो या दूसरी के कारण पहली.. इतिहास कौन जाने...और लिखा हुआ इतिहास कितना सच्चा है यह भी कौन जाने! बाड़ के पिता थे, माँ थीं और एक छोटा भाई था। उसका घर काफ़ी छोटा था। अंदर जाओ तो एक ज़रा सा कमरा नुमा पड़ता था जिसे चाहे तो पौर कह लीजिये चाहे तो छतरी-चप्पल रखने की जगह। उसके बाद कोई छह सात फुट का ज़रा सा आँगन नुमा और उसके बाद दोनों तरफ़ एक एक कमरा। छज्जे थे लेकिन छत पे जाने का कोई इंतजाम न था। गर्मियों में ये लोग बाहर खुली जगह में चारपाई डाल कर सोते थे। पिता हनुमंत राव को अन्ना बुलाया जाता था और माँ को आई। खाना पीना रस्म-ओ-रिवाज सब क़रीब क़रीब महाराष्ट्रियन पद्दति का ही था। क़रीब क़रीब इसलिए क्योंकि अब सब कुछ न तो पूरी तरह महाराष्ट्रियन रह गया था न इस तरफ़ का ही हो पाया था। कुछ था-एक बैलेंसिंग एक्ट! भाषा हालांकि आपस में अक्सर मराठी ही बोलते थे लेकिन उसका लहजा बाक़ायदा और बिलकुल हिंदी की तरह ही होता था। बाड़ के यहाँ सब कुछ अपना था-अंदर, बंद, स्वयं में संतुष्ट। दरवाज़ा बंद किया तो दुनिया से विदा ले ली। इसलिए बाड़ के यहाँ दीपक और गोविन्द का जाना कम और बाड़ का इन दोनों के यहाँ आना ज़्यादा होता था।

हनुमंत राव की माली हालत कोई ख़ास अच्छी नहीं थी। रेलवे के किसी मुहकमे में क्लर्क थे। झाँसी रेलवे का जंक्शन था,लोको वर्कशॉप था इसलिए रेलवे यहाँ बहुत बड़ी इंडस्ट्री थी और ज़्यादातर लोग रेलवे के मुलाज़िम थे या फिर कचहरी के- क्योंकि झाँसी जिले के और आस पास की सारी तहसीलों के दीवानी और सेशन के मुक़दमे यहीं आते थे।

दीपक, गोविन्द और बाड़ तीनों ही अपनी अपनी तरह अपने अंदर कहीं

कमप्लेक्सेस के मारे थे और अकेले थे। लेकिन इनमें से किसी को न इस बात का ऐहसास था न ये सब समझने की उनमें बुद्धि थी कि उनके अंदर की साइकोलॉजी क्या रंग ले रही है और जो कुछ भी ये करते सोचते हें वैसा क्यों करते सोचते हें। उम्र होगी कोई आठ-दस साल। जवानी गदराई नहीं थी लेकिन गदराने को तैयार बैठी थी. सबसे ज़्यादा गर्मी गोविन्द को चढ़ रही थी। वो पहले तो दीपक के नैकर पे हाथ फिराता रहा फिर एक दिन बोला- ''यार एक दिन आओ दोपहर में, दिखाऊँ तुमको जलवा।'' दीपक ज़रा शरीफ क़िस्म का था, समझा तो नहीं....लेकिन 'जलवा' देखने में क्या है!...बाड़ से गोविंग इतना खुला नहीं था। सो गर्मी की दोपहर में एक दिन गोविन्द ने दीपक के आने के बाद दरवाज़ा बंद कर लिया। घर में दोनों औरतें काम निबटा कर ज़रा लेट रही थीं। नाज़िर जी दोपहर की नींद ले रहे थे।

''एय्य्य...!..'' गोविन्द ने अपने नैकर के बटन खोलते हुए कहा, ''ये देखो. ...!'' गोविन्द कमर के नीचे एकदम नंगा हो गया। फिर उसने अपने छोटे-से को हिलाया और दीपक से कहा, ''अब तू दिखा।''

दीपक पहले तो शर्माता, टालमटोल करता रहा फिर उसने अपने जांघिये के नाड़े को अपने हाथों में थाम ही लिया के 'चलो हो ही जाये' बोला, ''यार.....मेरे एक तिल है यहाँ पर....''

-''देखें देखें....'' और गोविन्द ने दीपक का नाड़ा पकड़ कर खींच दिया। एक तो था ही, दूसरा भी नंगा हो गया।

हुआ हवाया कुछ नहीं क्योंकि उम्र ही ऐसी नहीं थी कि कुछ हो सकता। न कोई कुछ जानता था। लेकिन गोविन्द अक्सर अब दीपक के सामने कपड़े उतार कर अलग अलग तरह से करतब करने कि कोशिश करता। दीपक को पहले तो कुछ समझ ही में नहीं आता था। मज़ा भी नहीं आता था....लेकिन गोविन्द क्योंकि दोस्त था इसलिए वो उसे इस तरह एक्सेप्ट करने लगा। इससे ज़्यादा कुछ नहीं। पार्टिसिपेशन का तो ख़ैर, दोनों का ही, सवाल नहीं उठता था।

ये सेक्स था भी और नहीं भी था। सेक्स अंग्रेज़ी भाषा में जना और आजकल सर्व-व्याप्त बड़े महदूद मानी वाला शब्द है। अगर इसके मानी और फैलाये जाएँ और अगर इसे औरत और मर्द के दर्मियान से उठा कर समझा जाये तो दरअसल सारा कुछ इस जग में सेक्स ही है। पूर्णता कि तलाश। पूर्णत्व से ही निकल कर-अधूरा हो कर-अपने स्त्रोत्र की तलाश में भटकता हुआ। एक से दूसरे के प्रति आकर्षण जो केवल नर और मादा ही नहीं बल्कि उससे कहीं ऊपर। शायद अर्धनारीश्वर और पूर्ण-पुरुष कि व्याख्याएं ही इसे सही रूप में समझा पाएं। अंदर के मानवीय शून्यों

को भरने की तलाश शायद इसी का नाम है। स्थूल रूप से इस गुण को सतही तौर पर सेक्स ही माना जाता है। शायद दीपक और गोविन्द अपने अपने शून्यों - लकुनाज़ - की भरपाई इस तरह- उन्हें भूलने की कोशिश से करते हों ! लेकिन ये तो वे जानते नहीं थे!

बाड़ की उदय करंदीकर से ज़्यादा पटती थी। दोनों मराठी बोलते थे। उन दोनों का एक दूसरे के घरों में आना-जाना था। बाड़ का उदय के घर में ही ज़्यादा वक़्त बीतता था। उदय का घर उसी मोहल्ले में तीन मकान छोड़ कर था। उदय के यहाँ जाने के पीछे दो बातें थीं। एक कि उदय के यहाँ काफ़ी बड़ा और खुला खुला आँगन था जिसमें इधर उधर फूलों के पौधे लगे थे और वो बाड़ के घर के उस छह फुटा टुकड़े से कहीं बड़ा 'आँगन' था जहाँ वो दुनिया पर दरवाज़ा बंद कर के आसमान निहार सकता था। और दूसरी बात थी-ज्योत्स्ना ! उदय की बहन। ज्योत्स्ना करंदीकर अच्छी ख़ासी लम्बी थी। छरछरा बदन, गोरा रंग....लेकिन बस! दांत उसके ज़रा ज़रा बाहर निकलते हुए से थे। ख़ूबसूरत वो नहीं थी लेकिन उसकी हंसी बहुत बेबाक़ और दिल से निकलती हुई होती थी। वो बाड़ से बड़ी थी-तक़रीबन छह-सात साल लेकिन वो बाड़ को अच्छी लगती थी और उसे उसके पास होने में एक अजीब से न बताये जा सकने वाले सुख का अनुभव होता था। अब इसमें कोई मर्द-औरत की बात नहीं थी, क्योंकि बाड़ अभी इस उम्र तक ही नहीं पहुंचा था। लेकिन शायद वो ही बात-अपने अंदर के ख़ाली पन को- शून्य को- भर पाने कि इच्छा...! जो भी हो! बाड़ घंटों वहीं रहता। कमरे उस घर में ज़्यादा नहीं थे। पानी आँगन में ही चिमनी लगा कर गर्म किया जाता था और नहाना धोना ज़्यादातर आंगन में ही होता था। ज्योत्स्ना को नहाने के बाद गीली साड़ी में लिपटी देख कर बाड़ नज़र हटा न पाता था। फिर घंटों अपनी ख़लवत के तसव्वुर में इस तस्वीर को दोहरा दोहरा कर देखता रहता।

एक दिन बाड़ वहीं था। उदय को किसी काम से माँ ने ऊपर बुलाया था। ज्योत्स्ना स्कूल से आयी आयी थी। उसने कापियां रखीं,चप्पल उतारी और हाथ मुंह धोने के लिए साड़ी का पल्लू समेट कर पीठ पर डाला कि पीछे से बाड़ आकर उससे चिपट गया।

-''काय करतोय बाडू...?'' (क्या करते हो बाडू)

-'' मला चांगला वाटता!'' (मुझे अच्छा लगता है)

-''सोड..सोड मला...!'' (छोड़ो छोड़ो मुझे)

इतने में उदय के ज़ीना उतरने की आवाज़ आयी और बाडू को ज्योत्स्ना को

छोड़ना पड़ा। वो नहीं चाहता था कि उसकी ये बात कोई और जान पाये। कभी कभी बड़े हो जाने पर भी कुछ बातें होती हैं जिन्हें हम किसी के भी साथ शेयर नहीं करना चाहते। कहीं किसी हद तक हर शख़्स 'इंडिविजुअल' है। ये 'सोशल एनिमल' वाली बात तो सोसाइटी को सूट करती है....बहरहाल! बाडू को अपनी समझ में ज्योत्स्ना से प्यार हो गया था। ये बात और है कि उस उम्र और उस ज़माने में प्यार के मानी भी उसे कितने मालूम थे!

ज्योत्स्ना की सहेली थी गीता निगम। दोनों एक ही स्कूल में दसवें दर्जे में पढ़ते थे। गीता गदराये बदन की भरी भरी सांवली सी लड़की थी। चेहरा भी उसका गोल गोल था। क़द उसका ठीक ठाक था लेकिन उसकी बनावट कुल मिलाकर उसे क़रीब क़रीब नाटी नहीं तो नाटी होने का भरम ज़रूर पैदा करती थी। बड़ी बड़ी गोल गोल काली काली आँखें, लम्बी चोटी में गुथे घुटनों तक लटकते बाल, तेल पिया चमकता चेहरा और हमेशा साफ़ सुथरी साड़ी। उस ज़माने में सभी लड़किया इस उम्र से साड़ी पहनने लगती थीं। गीता ज़रा फ़ैशनेबुल थी। माँ उसकी थी नहीं। पिता भर थे। बाक़ी सिर्फ़ एक बुआ थीं जो मऊरानीपुर में रहती थीं और तीन-छह महीनों में कभी चक्कर लगा जाती थीं। बस! घर का सारा काम गीता करती थी। पिता जी कलक्टरी में हैड क्लर्क थे। सुबह दस बजे साइकिल पर खाने का डिब्बा बाँध कर जाते शाम को साढ़े पांच बजे वापस आते। रात को गीता पिताजी को खाना खिलाकर ख़ुद खाती और फिर पढ़ने बैठती। दिन में झाडू लगाने, बर्तन मांझने वाली एक थी जो आती थी। बाक़ी वक़्त गीता का या तो ख़ाली होता था या पढ़ाई में बीतता था या फिर घूमने-फिरने में। घूमने-फिरने का उसे बेहद शौक़ था। और उसकी चाल में तब और तुर्शी और आँखों में और चमक आ जाती थी जब 'जै जै' इधर उधर कहीं दिखाई दे जाता।

जै जै राम शरद! सुडौल, खाया-पिया, दंड पेला कसरतिया बदन, चमकता चेहरा, लम्बा कद और ऊंचे सुर की भारी आवाज़। अखाड़े और कुश्ती का बादशाह! शहर का मशहूर दादा...क्या मजाल कि कोई उसे सलाम किये बग़ैर गुज़र जाये। उम्र में बड़ा हो तो पूछे तो ज़रूर कि 'भाई जै जै, सब ख़ैरियत!?' और जै जै भी शिष्टाचार से हाथ जोड़ कर नमस्कार करे। सब जानते थे कि एक बार जै जै ख़िलाफ़ हो गया तो बेडा ग़र्क़! सरिये, फरसे, साइकिल की चेनें, हॉकियां, चाकू और और भी न जाने क्या क्या! तमंचे तब तक फ़ैशन में नहीं आए थे। जवानी जोश पे थी। लेकिन कसरतियों का उसूल था कि लड़कियों की तरफ़ रुझान नहीं रखते थे। इसलिए जै जै को अंदाज़ा तो था गीता की नज़र का....उसकी नज़र भी गीता को देख तो लेती

ही थी, लेकिन वो इस तरफ़ भाव नहीं देता था। गीता को उसके तेवर, इधर उधर बे-वजह किसी को हड़का देना, दम दे देना बहुत भाता था। गीता अपने ख़्यालों में कितनी बार जै जै के साथ अखाड़े में उतर कर उसे कुश्ती में मात दे चुकी थी। जिंदगी में लेकिन उसे धीरे धीरे लगने लगा था कि जै जै किसी लड़की के चक्कर में नहीं आने वाला।

मज़ा ये था कि इत्तेफ़ाक़ से अगर जै जै कहीं किसी ओट में खड़ा हुआ होता या गीता की नज़र उस पर न पड़ती तो गीता दिखी नहीं की जै जै बड़ी ज़ोर से खंखारता और फिर 'आख़-थू'...यूँ ही....फ़िज़ूल....या फिर बड़ी ज़ोर से डकार लेते हुए 'ॐ-तत्सत्त' की आवाज़ करता ताकि गीता उधर मुड़े और उसे एक नज़र देख ले। साथी जै जै के सब जानते थे। गीता की तरफ़ किसी की क्या मजाल शहर का कोई आँख उठा कर देख तो ले...''दद्दा का माल'' जो था.... और जै जै का दिल दोहरा हो कर अखाड़े और दुनियादारी की दुविधा में पड़ा है ये भी सब जानते थे!

-''दद्दा! अब जे तो बताओ के कब तक चलेगा ऐसे?'' मुन्ना ने पूछा। मुन्ना क़रीबी था, पूछ सकता था।

-''कैसा?'' जै जै ने समझा मगर फिर भी न समझते हुए बोला।

-''जेई...उतै बे फिर रईं तुमाये लिए और इते तुम खखार रये उनके लिए.. .तो ये जो ॐ तत्सत हो रिया....जे कब तक एसई चलेगा?''

-''चुप बे.....साला...लड़की देख के खखारा क्या मैं ने?''

-''नईं वो तो तुमाये मोह में मच्छर चला गया होगा इसलिए खखारा, लेकिन नैक उनकी भी तो सोचो...बे फिर रईं मीराबाई बनीं...तुमाये भजन गातीं...उनका क्या होगा?''

-''बहुत मेहनत से बनती है बॉडी बेटा! अखाड़ा, कसरत, दूध, मलाई....ऐंह. ..क्या क्या नईं किया मैं ने.....! क्या इसलिए?'' जै जै ने मुन्ना की पीठ पर धौल जमाई।

-''तो फिर किसलिए?!...जे जो बॉडी बनाई, इत्ती बढ़िया बनाई तो किस लिए बनाई?...ऐंह...?....ऐसेइ बेकार करने के लिए......?....तो अब बखत आ गया है जिसके लिए बनाई है उसे दे दो.....घर बसाओ! कोई काम धंधा डाल लो।''

-''शाबाश बेटा! ...उसका बाप तो तैयार बैठा है कन्यादान के लिए!?....लोग ताने देंगे सो अलग!''

-''बाप को तैयार कर लिया जायेगा और रही बात लोगों की सो किस साले में हिम्मत है जो दद्दा के खिलाफ़ जाये!....आग लगा देंगे झाँसी भर में।''

इतने में बड़े बड़े गिलासों में मोटी मोटी मलाई डली लस्सी आ गयी और पांच-छह जितने भी थे साथ में सब ने पी। बात गई आयी हो गयी। लेकिन गर्मी की शाम में मुन्ना की वो बात जै जै के ज़हन में इत्र की ख़ुश्बू की तरह घुस गयी। कई बार ख़्याल आया कि गीता लड़की तो अच्छी है. भरी भरी ! ले जाओ इसको ग्वालियर....वहीं शादी कर लेंगे पंडित बुला के। फिर वापस आये तो कोई क्या कर लेगा! लेकिन बस ये सब वो कभी कभी सोचता ही रहा।

गीता की ज़िन्दगी का ख़ालीपन उसके सामने आये दिन मुंह बाये खड़ा हो जाता था। अपनी तन्हाइयों में जै जै का ख़्याल बहाना था, सहारा तो नहीं था। इसी आपा-धापी में गीता बारहवीं पास हो गई और निगम साहेब ने उसके लिए शिवपुरी में रिश्ता भी ढूंढ निकला। ठीक-ठाक लोग थे। लड़के के पिता दांत के डाक्टर के नाम से जाने जाते थे। डाक्टर क्या थे.....थे कुछ बहरहाल!....एक डिग्री नुमा भी कुछ उन्होने अपने नाम के आगे लगा रखी थी बोर्ड पर और दांत उखाड़ते-बैठाते भी थे। तो डाक्टर हो गए। आज़ादी के बाद ऐसे तमाम क़िस्म के डाक्टरों को सनद दे दी गई थी। लड़के ने भी कुछ छह-आठ महीने का दरभंगा वग़ैरह से कोर्स किया था सो वो भी दांत का डाक्टर बन गया और बाप की गद्दी सम्भालने लगा।

शादी में बरात कोठी कुआँ की धर्मशाला में ठहराई गई। वो जै जै के इलाके में थी। सो जै जै और उसके साथियों ने बरातियों की भरपूर सेवा की। सेवा की गई अपने इलाक़े की लड़की के ब्याह के नाम पर, लेकिन सब जानते थे कि जै जै के दिल में उसकी मोहब्बत उससे ये सब करवा रही है।

गीता चली गई-जै जै के तने तने गठीले सख़्त बदन को छूने-महसूस करने के ख़्वाब ले कर। जै जै ने उस दिन विदा के बाद रोज़ से कम से कम तीन गुना दंड पेले और काफ़ी देर तक बावड़ी में बैठा दूध के कटोरे पे कटोरे डकारता रहा। कोई आता तो वो उसे भगा देता।

पिछले दो-तीन सालों में दीपक की आवाज़ में कुछ भारीपन आना शुरू हो गया था। अब गोविन्द से उसका मिलना कम ही होता था। गोविन्द के ताऊ जी गोविन्द को गणित की ट्यूशन पढ़ने भेजने लगे थे। बाड़ू कभी कभी आ जाता था वरना दीपक अकेला घंटों छतों पर टहलता रहता कभी झिंझरी पर खड़ा इधर उधर देखा करता। पतंग उड़ाने का उसे शौक़ बहुत था लेकिन कभी ठीक से उड़ा नहीं पाया न किसी से उड़ाना सीख ही पाया। उसका बड़ा भाई छुट्टी में आता था, एक आध महीने के लिए, तो वो भाई कम और दूर का मेहमान ज़्यादा था। उसे तो ये भी याद नहीं रहता था कि दीपक किस दर्जे में पढ़ता है और ज़रा ज़रा सी बात पे दे दनादन-थप्पड़ पे

थप्पड़....शायद उसका अपने शून्यों-अपने लकुनाज़-को भरने का यही तरीक़ा होगा! इसलिए दोनों में रिलेशनशिप कहने भर को ही थी!

दीपक के पिता उसके अकेलेपन को समझते थे इसलिए उन्होने उसमें तरह तरह की किताबें पढ़ने की आदत डलवा दी थी। किताबें उस ज़माने में इतनी महंगी भी नहीं थीं। उसके बाद दीपक ने ख़ुद अपने आप को पढ़ने और फिर लिखने में समो लिया। कोर्स की किताबों में अलबत्ता उसे कभी दिलचस्पी नहीं रही। फिर और रास्ते खुलते गए-छोटे छोटे मुशाइरे, छोटी छोटी नशिस्तें, स्थानीय अख़बारों में पार्ट टाइम काम, लिखना और उससे सीखना- ऐसे जैसे कोई छोटी सी नाव खुली हवा में आवारा, लहरों के साथ रोमांस करती हुई इठ्लाती-अठखेलियां करती चली जाये—यूँ ही...लापरवाह...न जाने कहाँ...या कहीं भी!....दीपक को इसमें मज़ा इसलिए आता था कि वो इस सब में अपने बारे में और अपने से जुड़ी तमाम बातों को भूल जाता था। जीवन का सत्य तो यही है न-आनंद की तलाश। इसी में तो सब भटक रहे हैं- फिर चाहे वो गद्दे दार कुर्सी पर बैठने की इच्छा हो या ठंडा पानी पीने की या नेता बनने की या फिर कोई और...जिसको जिसमें आनन्द मिले! और आनन्द अपूर्णता में कहाँ!

वैसे तो शाम को अक्सर दीपक घर पर होता नहीं था लेकिन अगर हुआ तो जैसे ही आरती की घंटी की आवाज़ आयी कि सीधे प्रसाद लेने पूजा वाली कुठरिया में पहुँच जाता था। उसकी दादी क़रीब अस्सी की तो होंगी या होने आयी होंगीं लेकिन साहेब जाड़ा गर्मी बरसात-क्या मजाल कि उनका नियम बदल जाये। भिनसारे उठतीं थीं। घर का क़रीब क़रीब एक हिस्सा ही उनकी तरफ़ था। एक आँगन जिसमें वे नहाती थीं, उससे लगे हुए दो कमरे, एक दालान जो चौके में जा कर खुलती थी, उसी के बग़ल में ठाकुर जी के लिए एक कमरा-जिसमें ठाकुर जी का ही सामान रहता था-गद्दा, चद्दर, धूप, ऊदबत्ती, कपूर, चन्दन, पोथियाँ और और भी कुछ कुछ इधर उधर का छोटा मोटा। वहाँ किसी का भी दाख़िला मना था। छुआ छूत बहुत मानती थीं, ज़रा चौके में किसी ने क़दम रख दिया कि उस दिन वो खाना न खाएं। वे ख़ुद सुबह सुबह उठकर पवित्र हो कर सीधे पूजा में बैठ जाती थीं। पूजा क़रीब दो घंटे चलती थी.फिर सीधे उठ कर चौके में जा कर चाय बनायेंगीं, नाश्ता बनाएंगीं सारे घर को बुला कर खाने के लिए देंगीं फिर ख़ुद खाएंगीं। घर में ले दे कर वो ही एक औरत थीं। उसके बाद खाने का सारा इंतजाम करेंगीं-दाल निकालना, चावल बीनना वग़ैरह।....ताकि जब महराजिन आए तो खाना बना सके। दोपहर में ज़रा लेटे तो लेटे नहीं तो पापड़-वापड़ कुछ बनाना हुए तो वक़्त कट गया और अगर कोई

मिलने-मिलाने आ गया तो फिर तो बस......लेटने आराम करने का सवाल ही नहीं। ....तब तक फिर चाय बनाने का समय हो गया। वे अक्सर कहा करती थीं कि ग़रीबी बड़ी बुरी चीज़ है। ''हमारे पिता के पास पैसा होता तो हम को दोहाजू से काहे ब्याहते?'' दीपक के बब्बा से हालांकि उन्हें कोई शिकायत नहीं थी लेकिन फिर भी उनके दिल में ये ख़्याल बराबर बना रहा कि जिस शख़्स से उनकी शादी हुई उसकी पहली बीवी मर चुकी थी और वे उसकी दूसरी बीवी थीं। बब्बा के मरने के बाद जब भी फ़ुर्सत मिलती सर्दी की दोपहरों में वे रामायण या कल्याण पत्रिका के पुराने अंक ले कर बैठ जातीं और एक एक लफ़्ज़ जोड़ जोड़ कर पढ़ने की कोशिश करतीं। धीरे धीरे इसी तरह उन्होने पढ़ना सीख लिया था। शाम को दिया बत्ती के समय उनकी पूजा फिर चलती थी-क़रीब डेढ़ घंटा। उसके बाद आरती....फिर भोग। वो भोग लेने घर के छोटे छोटे बच्चे ख़ूब जमा हुआ करते थे। अब तो ख़ैर कोई रहा ही नहीं। दीपक भी बड़ा हो गया। लेकिन जब भी वो घर में होता भोग लेने ज़रूर जाता। आरती में भी खड़ा होता। ये और बात है के बाद में दादी जिस हाल में जिस तकलीफ़ के साथ मरीं वो देखने के बाद दीपक ने फिर कभी पूजा की तरफ़ रुख़ नहीं किया और ग्रेजुएशन तक-जब तक वो झाँसी में रहा-यही सोचता रहा कि इतनी पूजा करने का क्या सिला मिला दादी को!...कोई उसे यह नहीं समझा पाया कि पूजा कोई भगवान के लिए थोड़े ही करता है! और क्या हर शख़्स रामायण बार बार राम कथा जानने के लिए ही पढ़ता है!

उधर गीता के ब्याह के बाद निगम साहेब अकेले भी हो गए थे और ज़माने के डर से बेफ़िक्र भी हो गए थे। कहानियां तो उनकी बहुत दिनों से मोहल्ले में घूमती थीं लेकिन ठीक से कोई न कुछ जानता था न कह पाता था.....अब मौक़ा मिला तो निगम साहेब ने अपने घर में झाड़ू-बर्तन करने वाली को बाक़ायदा रख लिया। कोई क्या करेगा....बातें करेगा?!...पीछे से हंसेगा?!...हँसे...! निगम साहेब को जो अच्छा लगा उन्होने किया।

श्रीवास्तव साहेब अपने ज़मींदार पिता की इकलौती औलाद थे इसलिए प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं लेकिन परोक्ष रूप से- पैसे से, संसाधनों से, लोगों को जोश दिलाने से- आज़ादी की लड़ाई में बराबर हिस्सा लेते रहे। चंद्रशेखर आजाद, भगवान दास माहौर, मास्टर रूद्र नारायण जैसे तमाम आज़ादी के सिपाही उनसे छुप छुप कर मिलते रहते, मदद लेते रहते और अगर कभी ज़रुरत आन पड़े तो हवेली के पिछवाड़े शरण भी लेते रहते। ये मामला 1947 के बाद समाप्त हो गया। श्रीवास्तव साहेब ख़ाली हो गए तो बहुत विचलित रहने लगे। लेकिन उनकी पत्नी की बीमारी और बच्चों

की परवरिश ने उनके पास कुछ और सोचने का समय ही नहीं छोड़ा। दीपक जब हाई स्कूल पास हो गया और उन्हें लगा कि अब वह बड़ा हो गया है और अपना ख़्याल ख़ुद रख सकता है तो उन्होने हवेली के पिछवाड़े के तीन कमरों को जोड़ कर एक वीथी नुमा बनवा दी और वहां खोल दिया एक पुरातत्व का संग्रहालय जैसा और कुछ कुर्सियां डाल कर बना दिया एक रीडिंग रूम। 'संग्रहालय' में तमाम आस पास के गावों/मंदिरों से लायी गयी मूर्तियां, पुराने पुराने सिक्के, डाक टिकट और इस प्रकार के कई और मोनुमेंट्स सजाये गए ताकि नईं पीढ़ी का इतिहास से सम्बन्ध बना रहे। रीडिंग रूम में उन्होने भारत में अंग्रेज़ी राज से जुड़ी और अंग्रेजों के भारतियों के ऊपर अत्याचार पर लिखी गयी तमाम किताबें और दस्तावेज़ रखे। इस निजि 'म्यूज़ियम कम रीडिंग रूम' को श्रीवास्तव साहेब स्वयं सुबह नौ बजे खोलते थे और दोपहर के एक बजे तक खुला रखते थे। इसमें आने, देखने, पढ़ने की कोई फ़ीस नहीं थी।

कुछ दिनों बाद जब दीपक ग्रेजुएशन के लिए कानपूर चला गया और उसकी माँ जो अपनी क़िस्मत के किसी भोग भुगतने के लिए जी रही थीं चल बसीं श्रीवास्तव साहेब और उनकी माँ ही हवेली में रह गए।

आज़ादी के बाद जिस प्रकार का 'डेवलपमेंट' शुरू हुआ उसके चलते झाँसी में नगर पालिका ने खंडेराव दरवाज़ा तोड़ कर सड़क चौड़ी करने का ऐलान कर दिया। लोगों ने आपस में तो खुसुर पुसुर करना शुरू कर दिया लेकिन सामने मुख़ालफ़त करने की हिम्मत किसी की न पड़ी। श्रीवास्तव साहेब ने सुना तो बोले खंडेराव दरवाज़े का तो रानी लक्ष्मीबाई के अंग्रेजों से युद्ध के दौरान बहुत महत्व रहा है। इसे मैं टूटने नहीं दूंगा। सबने सलाह दी 'काहे इस झंझट में पड़ते हो। सरकारी काम में आड़े आओगे तो अंजाम अच्छा न होगा। कोर्ट, कचहरी, मार पीट, लाठी चार्ज, सज़ा हवालात कुछ भी हो सकता है और एक बार इज़्ज़त पे आंच आई तो-बदनाम!'

श्रीवास्तव साहेब ने नगर पालिका के चेयरमैंन से बात की। उसने हंसी में उड़ा दिया। जिस दिन दरवाज़ा तोड़ने का कार्यक्रम तय था श्रीवास्तव साहेब अपने तीन दोस्तों को ले कर दरवाज़े के सामने बैठ गए। बोलो 'अब तोड़ो'! अब चार आदमियों को मार कर दरवाज़ा तोड़ने की हिम्मत तो नगर पालिका में थी नहीं। धमकाया गया, धकियाया गया, समझाया गया, पुलिस बुलाई गयी, कलक्टर आया, कमिश्नर आया....लेकिन तब तक इन चारों की देखा देखी शहर के तमाम और लोग भी आंदोलन में जमा होने लगे। जै जै और उसके साथी भी इससे जुड़ गए और मजमा बढ़ता गया। मामला तीन दिनों तक चला। न वहां से श्रीवास्तव साहेब हटे न लोग।

अख़बारों ने रोज़ छापा। तब मामला 'डिस्कशन' पर आया। मिल कर तय किया गया कि दरवाज़ा न तोड़ा जाये, दरवाज़े के बीचों बीच एक खम्भा और खड़ा करके दो तरफ़ा सड़कें निकाली जाएँ ताकि आवा जाही भी सुचारू हो जाये और इतिहास की निशानी खंडेराव दरवाज़ा भी न तोड़ा जाये।

कुछ दिनों बाद इसी खंडेराव गेट के पास हनुमान जी के मंदिर से ज़रा पहले गोविन्द ने सनद मिलने के बाद अपना वकालत ख़ाना खोल लिया था। वकालत भी ठीक ठाक चलने लगी थी। फिर न जाने उसे क्या सनक सवार हुई कि उसने तय किया कि मंगल वार की शाम को उसके पास जो भी मुवक्किल आएगा उसका मुक़दमा वो बग़ैर फ़ीस लिए लड़ेगा।

कुछ दिनों ऐसे चला फिर अचानक वो सब कुछ छोड़ छाड़ कर हरिद्वार जा कर साधु हो गया। कुछ साल पहले बद्रीनाथ से जो पंडा जी आये थे कहते थे कि 'शायद' उन्होने गोविन्द को केदरनाथ की तरफ़ जाते देखा था। लेकिन उसे पहचानना मुश्किल था और दुनिया से अब उसका कोई वास्ता नहीं रह गया था।

किसको किसका शून्य कहाँ और कैसे ले जाये- क्या पता!

''धरती पर भगवान''

-''प्राइस की बात तो ठीक है लेकिन रिबेट देने में तू फिसड्डी है देसाई...''

-''डाक्टर भाटिया!....आप भी न...''

शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी थी। रात के दस बज रहे थे। बीच समंदर में चांदी सी चमकती लहरों की मार से हिचकोले खाती 'यॉट' किसी तरह एक जगह थमी थी जिसमें इधर उधर आलीशान गद्देदार सोफ़ों के किनारे मद्दम जलते एक एक पेडस्टल लैम्पों की रौशनी थी. हल्का हल्का विवाल्डी संगीत था। संगीत न होता तो, शांति इतनी थी कि, सिर्फ़ ज़रा ज़रा उठती गिरती लहरों की आवाज़ें ही सुनाई देतीं। बीच बीच में कभी कभी समंदर की कोई जागती चिड़िया चीख़ कर ख़लल पैदा कर देती थी, बस! बम्बई में जनवरी की हवा की निहायत ख़ुशगवार ख़ुनकी थी। डाक्टर भाटिया अरब सागर में अपनी यॉट में एक नवोदित फ़िल्म तारिका के साथ वीकेंड मना रहे थे। साथ में आया था अमित देसाई। लड़की अपना सोशल सर्किल बढ़ाने में लगी थी और देसाई अपना धंधा। दोनों आदमियों का काम एक दूसरे से जुड़ा था। दोनों काम के सिलसिले में ही मिले थे और फिर दोस्त बन गए। डाक्टर भाटिया वो ऑर्थोपेडिक सर्जन थे जो घिस गए कमज़ोर घुटनो या कूल्हों इत्यादि के बदलने के लिए नामी थे और अमित देसाई उन आर्टिफिशियल घुटनों, कूल्हों, कन्धों या ऐसे ही दूसरे इम्प्लांट बनाने वाली एक अमरीकन कंपनी का रीजनल मैंनेजर था।

-''कितना रिबेट चाहिए आपको? 41% कम है क्या?....जॉनसन से पूछ लो, किसी और कंपनी से पूछ लो वो 25% के ऊपर दे दें तो मैं अपनी मूंछ काट दूँ!''

-''योर मूंछ इन एनी केस इज़ सो स्मॉल!...हैं हैं हैं हैं.......''

नईं नवेली अठारह साल की जवान फ़िल्म तारिका ने अपनी हवा से उघड़ती हुई मिनी स्कर्ट को सम्भाला और अपना गिलास ख़ाली करते हुए दूसरी तरफ़ से चहक़ी। अमित देसाई ने उधर ध्यान नहीं दिया। डॉ भाटिया ने एक उचटी निगाह से लड़की की तरफ़ देखा फिर फिक्क से मुस्कुरा कर उसे बाहें फैला कर अपने पास

घसीट लिया। तारिका छुई मुई सी डॉ. भाटिया के आग़ोश में ख़ुद सिमट गयी।

-''देखो साब रिबेट की बात तो करो मत....रिबेट तो मैं आपको अच्छा दिलवा ही रहा हूँ...ये सोचो कि प्रैक्टिस कैसे बढ़े...प्रैक्टिस बढ़ेगी तो इम्प्लांट भी ज़्यादा ख़रीदोगे...और फ़ीस भी ज़्यादा आएगी। तब एक यॉट और आ जाएगी और इस टैलेंटेड एक्ट्रेस के लिए फ़िल्म भी फ़ाइनेंस हो जाएगी।''

-''यॉट तो एक और नहीं चाहिए मुझे....अब तो सिर्फ़'' डॉ. भाटिया ने सिने तारिका के गालों को हल्के से चूम कर कहा, ''इस ख़ूबसूरत बला के लिए पिक्चर बनवानी है....साउथ के डायरेक्टर तेजा से मैं ने बात भी कर ली है....वो तैयार है।''

-''तेजा ....!'' लड़की डाक्टर की गिरफ़्त से निकल कर जैसे उछल गयी, ''ओह मई गॉड !...तेजा!....आई लव हिम!''

डॉक्टर ने लड़की के उछलने पर ध्यान नहीं दिया। देसाई ने नज़र लड़की की तरफ़ कर के अपने गिलास से चुस्की ली और दो तीन नमकीन पिस्ते फांक लिए। लड़की-ईरा मुंशी- ने अपने छोटे बालों की लटें आँखों पर से हटा कर सर को अदा से झटका दिया और आसमान में चाँद देख कर अपने हाथों के अंगूठों को आपस में मूक प्रार्थना में जोड़ा-जिसे किसी ने देखा नहीं. ऊपर वाले ने ईरा की प्रार्थना सुनी कि नहीं ये कौन जाने!

ईरा फ़िल्मों के लिए नयी नहीं थी। सिर्फ़ एक्टिंग उसने अभी शुरू की थी। वह फ़िल्म डिस्ट्रीब्यूटर हरि देव मुंशी की इकलौती लड़की थी। हरि देव मुंशी अपने समय के बहुत कामयाब डिस्ट्रीब्यूटर रहे- 'हिट' होने वाली फ़िल्म पहचानते थे। पिछले दिनों की सबसे बड़ी स्टार शैला देवी की तक़रीबन सभी फ़िल्में इन्होने ही डिस्ट्रीब्यूट कीं। शायद इसीलिए शैला देवी ने इनकी मुहब्बत पर क़ुर्बान हो कर और अपनी ढलती जवानी के चलते इनसे शादी रचा ली। क़िस्से हालाँकि शैला के और उस समय के हीरो देव कपूर के मशहूर थे लेकिन जब तक बात शादी तक पहुँचती शैला की उम्र होने लगी थी और उसकी फ़िल्में पिटने लगी थीं। हरि देव से शादी के बाद ईरा जब पैदा हुई तो चर्चे यहाँ तक हुए कि हरि देव मुंशी का तो बस नाम ही नाम है, औलाद तो ये लड़की देव कपूर की ही है! बहरहाल....वक़्त गुज़रा और वक़्त ने पलटा खाया...और मुंशी साहेब ने एक बड़े बजट की फ़िल्म क्या उठाई-पूरी तरह सड़क पर आ गए। लेकिन तब तक शैला से उनकी इकलौती औलाद-ईरा -जवान हो चुकी थी और क्योंकि ये ख़ानदान फ़िल्मों के सिवाय और कुछ जानता नहीं था इसलिए इन्होने ईरा को हीरोइन और एक नए लड़के को हीरो ले कर प्रोडक्शन शुरू कर दिया।

फ़िल्म का शोर चारों तरफ़ था और ईरा रातों रात शौहरत चूमने लगी थी। ईरा जवान थी, तीखे नैन नक़्श की बहुत कटीली लड़की थी। ज़रा सी सांवली भले ही थी लेकिन उस साँवले पन में भी एक अजब नमकीनियत और आकर्षण था। जिस अदा से चितवन टेढ़ी कर के वह मुस्कुराती थी वो अच्छे अच्छों को दीवाना कर देता था। 'फ़िक्की' के एक प्रोग्राम में बतौर नवोदित कलाकार उसे आमंत्रित किया गया था और वहीं तमाम बड़े बड़े लोग उसके मुरीद हो गए थे। उन मुरीदों में एक डॉ. भाटिया भी थे!

डॉ. भाटिया बम्बई के ही नहीं बल्कि देश भर के एक कामयाब ऑर्थोपेडिक सर्जन थे। पैसा उन्होंने बेशुमार कमाया था-जिसे वे शेयरों में, प्रॉपर्टी में और कुछ कुछ फ़िल्मों में लगाते थे। यही वजह थी कि फ़िल्मी सितारे भी इनसे मेल जोल बढ़ाते थे। इस शनिवार ईरा डॉ. भाटिया की प्राइवेट यॉट पर डिनर के लिए इन्वाइटेड थी।

-''आपकी फ़िल्म का ज़ोरों से इंतजार हो रहा है!'' देसाई ने ईरा की तरफ़ देख कर जैसे बे-मतलब सा कहा।

-''बस, नेक्स्ट मंथ आ रही है!'' ईरा गद्गद् होते हुए खिलखिलाई।

- ''तुम्हारे पास हर मर्ज़ की दवा है...हर एक के लिए सलाह है....मुझे कोई ढंग की सलाह दो।'' डॉ. भाटिया ने जैसे कुछ सोचते हुए आँखें मिचमिचा कर देसाई की तरफ़ देख कर कहा.

--''सलाह? ....पिक्चर बनाने की?''

डॉक्टर की नज़र देसाई कि तरफ़ तुर्श हो गयी।

-''ओह...प्रैक्टिस बढ़ाने की....'' देसाई ने मज़ा लेते हुए कहा। फिर बोला, ''देखो जी, नाम तो आपका हैगा। पेशेंट्स तो आपके पास आते हैंगे....अब और प्रैक्टिस बढ़ाने का तो एक ही रास्ता हैगा—और वो है मीडिया हाइप! जहाँ दो चार धांसू न्यूज़ बनीं, आप टी. वी. पे दिखे,दो चार सेलिब्रिटी ने आपका नाम लिया बस पब्लिक आपके पास ऑपरेशन के लिए टूट पड़ेगी। तब फ़ीस भी बढ़ा देना! हं हं हं हं....''

-''डॉ. शर्मा....वो तेरा हार्ट स्पेशलिस्ट...उसने कौन सा मीडिया हाइप कर रखा है...उसकी प्रैक्टिस देख....''

-''शर्मा की बात छोड़ो साब....उसका स्टाइल बहुत अलग हैगा....एक तो वो किसी को घास नहीं डालता, सीधे मुंह बात नहीं करता,बात करो तो जवाब नहीं देता। जैसे लोगों का सीना चीर के ऑपरेशन करता है वैसे ही उनका सीना चीर के फ़ीस लेता है...फिर उसको हॉस्पिटल वाले सबसे ज़्यादा कमीशन देते हैं....देखा नहीं किस

तरह वो अंजिओप्लास्टी को हार्ट ऑपेरशन में तब्दील कर देता है...''

- हाँ! और साला पेशेंट भी कुछ नहीं कह पाता!''

-''कहेगा क्या....ऑपरेशन के बीच में थिएटर से निकल कर जिस तरह वो परिवार वालों से कहता है 'हार्ट ऑपरेशन ज़रूरी है...नहीं तो पेशेंट मर जायेगा' तो पेशेंट का बाप भी बोलेगा के सर जो ठीक समझिए कीजिये!''

-''शर्मा भी क्या करेगा यार....ये हॉस्पिटल साले धंधे वालों ने खोल रखे हैं। उन्हें हर महीने फ़िक्स्ड रक़म चाहिए...डाक्टर उसी में मारा जाता है...इसीलिए पचास टेस्ट करवाओ, ऑपरेशन के बाद जल्दी जल्दी बेड ख़ाली करो....एनीवे.. .वो सब तो तुम भी जानते हो...लेकिन तुम्हारी ये मीडिया हाइप वाली बात समझ में आती है...बात तो ठीक है...पर ये हो कैसे...मीडिया के पास तो मैं जा नहीं सकता न!''

-''आपको मीडिया के पास जाने को कौन कहता है...ऐसा कुछ करो कि मीडिया वाले साले ख़ुद चल के आपके पास आवें!''

-''वो कैसे होगा?''

-''वो कैसे होगाा....!?'' देसाई ने डाक्टर के शब्दों को प्रतिध्वनि की तरह दोहराया, दो मिनट आसमान की ओर देख कर सोचा। इतनी देर में भाटिया ने उसके ख़ाली गिलास में वोडका, बिटर्स, सोडा और बर्फ़ के टुकड़े डाल दिए।

-''एक काम करो जी...'' देसाई ने लम्बी सांस ले कर ताज़ा भरे गए गिलास से बड़ा सा घूँट लिया, '' गिनिस बुक ऑफ़ वर्ल्ड रिकार्ड्स में किसी तरह नाम करा लो....दुनिया भर के लोग आएंगे इलाज करवाने।''

डाक्टर भाटिया जो अब तक दीवान पर अधलेटे थे अब पाँव नीचे कर के उठकर सीधे बैठ गए। लड़की को उन्होंने एक किनारे कर दिया और बड़े जतन से देसाई की बात भन्वें तानकर आँखें गड़ा कर सुनने लगे। जब देसाई बड़ी देर तक और कुछ नहीं बोला तो उन्होंने पूछा, ''वो कैसे होगा?''

-''एक बात बताओ....'' बड़ी देर बाद देसाई ने पूछा।

-''क्या?''

-''एक दिन में कितने ऑपरेशन करते होंगे आप?''

-''पांच कभी छः।''

-''दस कर सकते हो?''

-''दस बहुत है....इतना कैसे.....''

-''कैसे वैसे भूल जाओ....कर सकते हो क्या?''

-''अरे लेकिन इतने ऑपरेशन एक दिन में!...इतने तो दिन में घंटे नहीं होते यार!''

-''आप डाक्टर हो....सेल्स या मार्केटिंग वाले नहीं हो इसलिए ये सब नहीं समझोगे.....एक तो रखो जूनियर्स की टीम। ऑपरेशन शुरू करो खुद और बाक़ी काम उनको करने दो....सुपरवाइज़ करते रहो.....और दूसरी बात जिसका एक घुटना करते हो उसी पेशेंट के साले के दोनों कर दो तो एक साथ में दो ऑपरेशन हुए कि नहीं!?....इस तरह ऑपरेट करोगे पांच पेशेंट्स, ऑपरेशन होंगे दस!..है कि नईं. ...!''

-''ब्रिलियंट!'' डॉ. ने देसाई की हथेली पर ताली बजाई।

इतने में भाटिया का फ़ोन बजा.

-''हाँ डॉ. मेहरा! बोलिए !......आप यार रिकॉर्ड तो रखते नईं हो आजकल ....नईं नईं.....आपने जितने केसेस मेरे पास भेजे थे उन सबका चैक आपको भेजा जा चुका है.....व्हाट डू यू मीन कम है?....देख यार मेहरा दस हज़ार पर पेशेंट के हिसाब से दस पेशेंट्स का एक लाख हुआ......तो तो?....मैं एक केस का ढाई लाख लेता हूँ तो?....उसमें तुम्हारी क्यों सुलगती है? वो सारा पैसा क्या मेरी जेब में जाता है? अस्पताल है, इम्प्लांट्स हैं, स्टाफ़ है वो सब दिखता नईं तुमको?....महंगाई बढ़ गयी है? पंद्रह हज़ार पर केस दूँ तुमको?.....देख मेहरा...मैं अभी बाहर हूँ, मंडे को बात करते हैं...ओ के!'' भाटिया ने फ़ोन कट करते हुए एक भद्दी सी गाली दी और अपने गिलास में बची वोडका एक साथ पूरी डकार ली-गुस्से में !

-''मूड ख़राब हो गया?!''

-''साला मेहरा! जनरल प्रैक्टिशनर है.....मुलुंड चौक नाके पर जब टपरिया में बैठ कर स्ट्रगल करता था तब किसने सपोर्ट किया-मैं ने!...वहां से उठा के वडाला फाइव गार्डन के पास प्रैक्टिस किसने डलवाई-मैं ने!''

-''जानता हूँ मेहरा को....'' देसाई ने बीच मैं कहा, ''वो ही न जिसके बाप ने उसे जायदाद से बेदख़ल कर दिया था और इसीलिए वो एडमिशन मिलने के बाद भी एम .डी. नहीं कर पाया था?!''

-''साला आपने नाम के आगे जो इंग्लॅण्ड की डिग्री लगाए फिरता है न...वो किसने दिलवाई?...मैं ने!''

-''आपने इंग्लॅण्ड भेजा उसको ?''

-''अरे नहीं यार...ब्रिटिश फार्मा की एक स्कीम थी कि डाक्टर साल भर उनकी

कंपनी की दवाइयां मरीज़ के लिए लिखे तो कंपनी डाक्टर को इंग्लॅण्ड की डिग्री दिलवाएगी....घर बैठे....कहीं जाने की ज़रुरत नहीं...फ़ार्मा वालों को मेहरा का नाम सुझाया किसने? मैं ने!''

-'लेयो!...आपने तो उसको उसके बाप से भी ज़्यादा सम्भाला और वो ही आपसे नड़ रहा है!''

-''बंद कर दूंगा साले के पेशेंट्स लेना.....बर्बाद कर दूंगा साले को........''

-''अरे दुनिया है बॉस ...करने दो...अपने पैर पर क्यों कुल्हाड़ी मारते हो।. ..दे दो साले को जो मांगता है...अपनी फ़ीस बढ़ा दो...ढाई से तीन लाख कर दो।''

-''बहुत ज़्यादा होगी....और तब तुम साले इम्प्लांट वाले आपने पार्ट्स की प्राइस भी बढ़ा दोगे...मारवाड़ी अपने अस्पताल का चार्ज बढ़ा देगा...यू नो...चेन रिएक्शन हो जायेगा.....''

-''कुछ नईं होता........लोगों के विश्वास की कोई क़ीमत नईं होती डाक्टर भाटिया.......ये साले नाम पे मरते हैं......और बीमारों के लिए आसमान के भगवान के बाद धरती पर डाक्टर ही भगवान् होता है....भगवान से लोग मरीज़ के ठीक होने की दुआ मांगते हैं, डाक्टर से मरीज़ को ठीक करने की भीख मांगते हैं!.......स्टाइल वोई रखने का....डॉ. शर्मा वाला...थिएटर में पेशेंट लिए, दो मिनट बाद बाहर निकले, मरीज़ के रिश्तेदारों से कहा- 'एक घुटना करूँ कि दोनों?' अभी अभी पता चला है कि ख़राब दोनों हैं। अभी नहीं करोगे तो दूसरा छः महीने बाद करोगे, फिर उतना पैसा ख़र्च करोगे....अभी एक साथ करना हो तो मैं दस पर्सेंट रिबेट देता हूँ......तीन लाख के हिसाब से दो घुटनों का हुआ छः लाख....रिबेट चलो साठ हज़ार की बजाये पचहत्तर ले लो....तब भी फ़ायदा ही फ़ायदा है तुम्हारा।''

इतने में डॉ. भाटिया के सेल फ़ोन से लता मंगेशकर के पुराने गाने- 'अंग लग जा बालमा' -की रिंग टोन बजी। ''हू दि हेल इस दिस?'' डाक्टर ने हिक़ारत भरी नज़रों से फ़ोन उठा कर देखा।

-''पर्सनल नंबर पर किया है....कोई ख़ास ही होगा!'' देसाई ने नीबू चखते हुए कहा।

-''मरने दो साले को.....रॉन्ग नंबर होगा।'' डाक्टर ने फ़ोन काट कर रख दिया।

'अंग लग जा बालमा' फिर बजा। डाक्टर ने चिढ़कर फ़ोन लिया और स्पीकर ऑन कर दिया..''यस?''

--''फ़ोन काट दिया?!''

-''कौन चाहिए?''

-''डाक्टर भाटिया?''

-''हाँ जी''

-''मैं बिट्टा भाई का जमाई बोल रहा हूँ।''

-''कौन बिट्टा?...मैं तो किसी बिट्टा को नहीं जनता।''

-''बिट्टा....आ!....नईं जानते?!''

देसाई ने दबी ज़बान से मुंह के एक ओर हाथ लगा कर कहा, ''बिट्टा... माफ़िया.....दादा....अंडरवर्ल्ड....''

डाक्टर ने पलकें ऊपर उचका कर जैसे देसाई की बात समझ ली।

-''बिट्टा....डॉन....अंडरवर्ल्ड.....रोज़ पेपर में देखते हो....नईं जानते?! ''फ़ोन पर दूसरी तरफ़ से आवाज़ आई।

-''तो?''

-तो ये कि मेरी माँ को तुम्हारे दवाख़ाने ले गया था....तुम्हारे यहाँ कोई अंग्रेज़ी बोलने वाली लौंडिया बैठी थी....वो तुमसे बात नईं करने देती और अपॉइंटमेंट देती है पंद्रह दिन बाद का.....''

-''डेट फ़्री नहीं होगी तो वो क्या करेगी....'' डाक्टर ने संभल कर कहा.

-''इसके लिए तो हमको फ़ोन करना पड़ा।''

-''तो पंद्रह दिन बाद आ जाइये आप माँ को ले कर....नाम लिखा दीजिये क्लीनिक में अपना।''

-''मैं क्या बोर्रा हूँ तू समझ ही नईं रा....अबे पंद्रह दिन अपनी माँ को क्या दरगा में मन्नत मांगने भेजूं कि हज करवाऊं...वो दरद से मर रयेली है....और तू बोलता है..पंद्रह दिन बाद आओ....''

-''मैं इसमें क्या कर सकता हूँ?''

-''तू डाक्टर है कि हज्जाम! हं हं हं हं...! कल सुबु दस बजे तेरे दवाख़ाने में ले के आता है माँ को....देख ले।''

-''कल दस बजे तो मैं बम्बई में ही नहीं हूँ...संडे है.....और मंडे से ले के थर्सडे तक मेरे ऑपरेशन्स फ़िक्स्ड हैं...''

-''ओये....!'' आवाज़ डाक्टर की बात काट कर चिंघाडी। भाटिया ने फ़ोन कान से हटा कर देखा और देसाई की तरफ़ नज़र की। देसाई ने भाटिया को मुंह पर हाथ रख कर चुप रहने की हिदायत दी। भाटिया ने नज़ाकत समझ कर कहा, ''देखिये अगर इतना अर्जेंट है तो मंडे को लाइए देख लेता हूँ।''

-''देख लेता नईं....वो दरद से बेहाल है....हिप ट्रांसप्लांट करने का है....तो देख लेता नईं....सीधा सोम्मार को ऑपेरशन करछ डाल....रोकड़ा फ़ीस में ले के आताए। समझा न....''

-''मंडे को अपॉइंटमेंट है....किसी दूसरे का ऑपरेशन फ़िक्स्ड है।''

-''कौन है साला...बोल टपका डालता उसको..ऐं....!...सोम्मर को फ़ज़र में ऑपरेशन कर डाल...समझा न...नईं तो अपना घोडा दब जएयंगा...क्या!..कल मई हॉस्पिटल में अम्मी को एडमिट करता हूँ।''

फ़ोन कट गया। डाक्टर भाटिया का नशा उतर गया। अचानक चांदनी की शीतलता उष्णता में बदल गयी, समंदर के बीच का सुकूत परेशानी में और शाम चिड़चिड़ाहट का बाइस बन गयी। ईरा मुंशी की जिन नंगी/जवान/थिरकती/उचकती जांघों के बीच मोहब्बत जवान होनी थी उन्हीं से तबियत उचाट होने लगी और नज़र उधर से हट कर लग गयी फ़ोन पर। वक़्त सेक्रेटरी को यह समझाने में लग गया कि किस तरह सोमवार वाले 'केस' को किसी और दिन और क्या वजह बता कर शिफ़्ट किया जाये और बिट्टा के जमाई की माँ को कैसे फ़ौरन कल ही अस्पताल में दाखिल करवाकर उसके ऑपरेशन के लिए तैयारियां करवा दी जाएँ। ईरा मुंशी ने डॉ. भाटिया की परशानी से अपना कोई सरोकार न समझते हुए अपने कानों में लगे हैडफ़ोन्स में आते किसी 'संगीत' में डोलते उचकते हुए यॉट के नरम गदद्दों का आनंद लिया और तेजा के साथ अपनी नयी फ़िल्म के सपने देखे। देसाई ने पी पी कर दो तीन बार समंदर में उल्टियां कीं। सुबह दस के आस पास देसाई और ईरा-दोनों-वापस चले जाने वाले थे इसलिए वो सो गए। भाटिया को नींद नहीं आई।

दूसर दिन इतवार था और भाटिया के तीन दोस्त यॉट पर खाने पर आमंत्रित थे। खाना बग़ल के पांच सितारा होटल से आने वाला था। ओबेरॉय होटल ट्यूलिप स्टार के नाम से अवतरित हुआ हुआ था और वे किसी के लिए भी ऐसा नहीं करते थे लेकिन डॉ. भाटिया मालिक के दोस्त थे और इसलिए उन्होंने यॉट पर खाना पहुँचाना कुबूल किया था।

स्किन स्पेशलिस्ट डॉ. नौशिर इंजीनियर, कैंसर स्पेशलिस्ट डॉ. फड़नवीस और आई.वी. फर्टिलिटी स्पेशलिस्ट डॉ. मनचंदा-तीनों बारह के आस पास पहुंच गए। यॉट तक उन्हें लाने के लिए 'बोट' का इंतजाम था और आते साथ 'चिल्ड' बियर के साथ गरमा गर्म कबाब और बर्फ में लगा कर रखे गए मिनी हनी-डोनट्स का इंतज़ाम था। तीनों डॉ. भाटिया के दोस्त थे-इंजीनियर और फड़नवीस सायन मेडिकल

कॉलेज में सहपाठी रहे थे और मनचंदा उनके ब्रिटेन में बने दोस्तों में से थे। डॉ. भाटिया एम.एस.(ओर्थोपेडिक) करने के बाद जब प्रैक्टिस में उतरे तो उनकी समझ में आया कि भारत में प्रैक्टिस करनी है तो नाम के साथ विलायत की कोई डिग्री ज़रूरी है। उन्होंने सोचा कि अगर वे लंदन से एफ.आर.सी.एस.कर आएं तो उनका नाम भी बढ़ जायेगा और प्रैक्टिस भी। पैसे की चिंता थी नहीं। पिता कस्टम अफ़सर होकर रिटायर हुए थे और जायदाद के नाम पर उनके दो बंगले जुहू में थे और एक फ़ार्म हाउस कर्जत में था। लेकिन लंदन जाकर भाटिया के सारे सपने ध्वस्त हो गए। बावुजूद एम.एस. के उन्हें एक मामूली हाउस सर्जन का काम मिला-वो भी बड़ी मुश्किल से क्योंकि वहां की हालत तो ये थी कि कुछ लोग जिन्होने बड़ी बड़ी फ़ीस दे कर मेडिकल डिग्री लंदन से पास की थी उन में से कई तो डाक्टरी की बजाये टैक्सी चला कर अपना गुज़ारा कर रहे थे।

इस हाउस सर्जन की नौकरी में भी इनका सीनियर अँगरेज़ काम तो भरपूर करवाता था लेकिन मौक़ा बे मौक़ा बेइज़्ज़ती करने से भी नहीं चूकता था। एफ. आर.सी.एस. में इन्होने देखा कि सब ठीक होते हुए भी इन्हें फ़ेल कर दिया गया-शायद -इन्हें लगा-इसलिए की ये हिंदुस्तानी थे। तब भाटिया ने अक्ल लड़ाई और सीधे एडिनबरा (स्कॉटलैंड) का रुख़ किया और वहां से एफ.आर.सी.एस.की उपाधि हासिल की। एडिनबरा में ही इनकी मुलाकात डॉ. मनचंदा से हुई थी। दोनों पंजाबी थे और परदेस में अकेले थे। खाना-पीना, घूमना-फिरना, हंसना-रोना-जब मौक़ा मिले तब- साथ साथ!

हालाँकि मनचंदा अपना इम्तेहान दूसरी बार में पास कर पाया और भाटिया से दो साल बाद भारत वापस आया लेकिन बम्बई में उसे सेट्ल करने में भाटिया का काफ़ी सहयोग रहा। अब दे सब डाक्टर अच्छे दोस्त थे और जब जब मौक़ा मिलता-महीने में कम से कम एक रोज़ या शाम-साथ गुज़ार लेते थे।

-''अरे चंदू भाई जरीवाला का क्या मामला है यार!?.....न्यूज़ में बोलते हैं आई.सी.यू. में है.....तीन दिन से....'' मनचन्दा ने यूँ ही पूछा।

-''मर गया है साला।''

-''डिक्लेर तो नहीं किया।''

-''कैसा करेंगा?'' डॉ. इंजीनियर ने गर्म कबाब खा कर मुंह खुला रख कर बार बार हवा छोड़ते हुए जीभ को जलने से बचाते हुए कहा,'' दो हज्जार करोड़ का इंडस्ट्रियलिस्ट हाय......वारिस तय हो रहे होएंगे...जायदाद के झगरे हो रहे होएंगे ...दो लरका लोग हाय किसको क्या मिलेंगा...यु नो!...और दूसरे सरकार का भी

दखल होएंगा.....जब तक ये सब सेटल नई हो जाता उसको मरा कैसा डिक्लेअर कर देंगा।''

-''उसकी बीवी को तो कैंसर है न...'' डॉ. भाटिया ने जोड़ा।

-''वो कभी ठीक ही नहीं होगा....'' मनचंदा ने बियर का घूँट लिया।

-''क्यों?''

-''डॉ. सहाय की पेशेंट है वो...और डॉ. सहाय इज़ ऐन इंटेलीजेंट मैंन....उसने देखा इतनी बड़ी इंडस्ट्रियलिस्ट की वाइफ़ है अगर उसका कैंसर जड़ से निकाल दो तो फिर वो दोबारा क्यों आएगी? और वो नहीं आएगी तो माल भी नहीं आएगा. ..इसलिए उसने 90% तो जला दिया है, 10% सेल्स छोड़ दीं हैं। अब हर छह आठ महीने में उसके इलाज का सिलसिला चलता रहता है। वो समझती है कैंसर बीमारी ही ऐसी है कि कभी ठीक नहीं होती और डॉ. सहाय को भरोसा है कि ये पेशेंट तो परमानेंट है...हं हं हं हं।'' मनचंदा ने मज़ा ले कर कहा।

-''करते तो साले तुम भी वो ही हो...''

-''तुम क्या मतलब? तुम नहीं करते?....सब करते हैं!....पेशेंट वापस आना चाहिए....''

-''नो...मैं नई करता..आई एम ऑनेस्ट।'' इंजीनियर ने सर हिलाया।

-''चल रहने दे इंजीनियर, ''फड़नवीस ने चुटकी ली, ''फ़िल्म स्टार शिखा चोपड़ा का गोनोरिया तो तू आजतक ठीक नहीं कर पाया....हं हं हं...या जानबूझ कर....हं हं हं हं...''

-''धीरे बोल,'' इंजीनियर ने दांत चबाकर धीमी आवाज़ में कहा, ''किसी ने सुन लिया तो मीडिया पीछे पड़ जायेंगा और लड़की बेचारी बदनाम हो जाएंगी।''

-''लड़की बदनाम हो जाएगी पर तेरी तो चल जाएगी कि साला फ़िल्म स्टार्स का डॉक्टर है....हं हं हं हं''

-''यार ये फ़िल्म स्टार्स को पेशेंट्स बनाने के लिए क्या करना चाहिए?'' भाटिया ने सीरियसली पूछा।

-''करना क्या,'' इंजीनियर बोला, ''तू तो ऑर्थो है....तोड़ दाल सालों की हड्डियां!.....हं हं हं हं हं....''

हू-हक् होता रहा। खान पान चलता रहा। सभा समाप्त हुई शाम के छः के आस पास। बोट से वापस किनारे तक आ कर सब अपनी अपनी एयर कंडिशन्ड गाड़ियों में अपने अपने घरों को चले गए।

सोमवार की दोपहर चार के आसपास जब बिट्टा के जमाई की माँ का ऑपरेशन

करके डॉ. भाटिया बाहर निकले तब अस्पताल की बारादरी में ज़बरदस्त जमावड़ा था और ज़ोर ज़ोर से आवाज़ें लगा कर अस्पताल और किसी डाक्टर को गालियों पर गालियां दी जा रही थीं। बिट्टा के जमाई ने अपने लम्बे कुर्ते की लटकती बाहें चढ़ा कर लोगों से पूछा 'क्या हुआ' तो पता चला कि अस्पताल के एक डाक्टर ने ससुर की मौत की जगह बहू को मृत घोषित कर दिया था और रिश्तेदारों में इसी का रोष था।

-''लाखों रिश्वत ले के मेडिकल में भर्ती करेंगे तो ऐसाइच्छ होएंगा न....'' बिट्टा का जमाई हंसा।

-''लाखों ले के नईं....रिज़र्वेशन दे दे के गधे गधे पास करवा देते हैं।''

-''कैंची और छुरी तो अच्छे अच्छे आजकल पेट में ही छोड़ देते हैं....''

तमाम आवाज़ें एक साथ कुछ न कुछ कहने लगीं। लेकिन तब तक बिट्टा के जमाई का इंटरेस्ट इसमें समाप्त हो चुका था और वो वापस बेंच पर आकर अपनी जगह बैठ गया।

डॉ. भाटिया चेंज करके कॉरिडोर में अवतरित ही हुए कि लोगों ने घेर लिया और उनके साथ साथ चलते बतियाते/पूछते-कहते रहे। तब तक ड्राइवर ने गाड़ी दरवाज़े से सटाकर खड़ी कर दी और दरवाज़ा खोल दिया। डॉ. भाटिया अपनी लेटेस्ट मॉडल की ऑटोमैटिक बी.एम.डब्ल्यू. में बैठ कर बग़ैर किसी की तरफ़ देखे चले गए। बिट्टा का जमाई जब उनके पास आया तो उन्होंने उसे अपने जूनियर से मिलने का इशारा कर दिया। जूनियर ने उसे उसकी माँ के कमरा नंबर की जानकारी दे दी। गाड़ी में पीछे बैठ कर भाटिया ने एक फ़ोन लगाया, ''रंजन जी!...मैं क्लिनिक जा रहा हूँ.....छः के आस पास मिल सकते हैं?'' लीगल फ़र्म राजीव रंजन एंड एसोसिएट्स के मालिक ने उधर से कहा, ''आपके लिए एनी टाइम! आ जाइये।''

-''डाक्टर साब!'' एक सीधे सादे पैंतीस चालीस साल के किसी क्लर्क नुमा दिखते सज्जन ने एक जूनियर डाक्टरका ध्यान आकर्षित किया।

-''हाँ?''

-''सर एक तो जमा कर दिया है.....लेकिन और तीन लाख का बंदोबस्त अचानक हो नहीं पा रहा है।''

-''पहले ही पूछा था...इंशोरेंस है?...आप बोले है.....'' जूनियर ने लम्बी सांस ले कर बड़ी तकलीफ़ से आँखें बंद करते हुए कहा।

-''आपने इन्शुरन्स पूछा तो मैं समझा आपने मेरे लाइफ़ इन्शुरन्स के बारे मे पूछा है......मैं ने कहा हाँ...''

-''मेडिक्लेम इन्शुरन्स यार....मेडिक्लेम इन्शुरन्स। अस्पताल में आपकी लाइफ़ से हमें क्या मतलब!''

-''वैसे भी सर पिताजी की उम्र सत्तर पार की है....उन्हें तो मेडिक्लेम मिलता ही नहीं है।''

-''तो मैं क्या करूँ, बताइए?''

-''सर अब मैं क्या करूँ...कुछ टाइम दीजिये....''

-''जब तक पैसे नहीं आएंगे पेशेंट रिलीज़ नहीं होगा...और तब तक हॉस्पिटल का बिल बढ़ता जायेगा....ठीक है!'' जूनियर डाक्टर ने मुंह मोड़ कर दूसरे की दिखाई हुई रसीद देखकर कहा, ''पूरे पांच लाख जमा करा दिए....वेरी गुड...ले जाइये पेशेंट को...दो हफ़्ते बाद अपॉइंटमेंट ले कर चेक-अप के लिए ले आइएगा. ...ओ.के!''

शाम साढ़े छः के आस पास डॉ. भाटिया नरीमन पॉइंट के रहेजा चैम्बर्स की लिफ़्ट से उतर कर चौथी मंज़िल पर दाख़िल हुए। दाहिनी तरफ़ राजीव रंजन एंड एसोसिएट्स-एडवोकट्स, नोटरीज़ एंड सॉलिसिटर्स का ऑफ़िस था। रिसेप्शनिस्ट ने मुस्कुरा कर अभिवादन किया और सीधे रंजन साहेब के केबिन का दरवाज़ा खोल कर उन्हें दाख़िल होने दिया।

-''डॉ. भाटियाआ..आ!'' रंजन ने गर्म जोशी से कुर्सी से उठ कर हाथ मिलाया और दराज़ से निकाल कर स्विस चॉकलेट के एक बॉक्स को खोल कर उनके सामने किया। भाटिया ने एक चॉकलेट उठाकर उसका रैपर आहिस्ता आहिस्ता खोलना शुरू किया तो रंजन ने बात शुरू की, ''जी तो डाक्टर साब?''

भाटिया ने बताया कि किसी पेशेंट का तीन साल पहले उन्होंने शोल्डर रिप्लेसमेंट का ऑपरेशन किया था जो थोड़ा 'कम्प्लीकेट' हो गया। इस वजह से वह ऑपरेशन उन्हें दोबारा करना पड़ा लेकिन उससे भी मरीज़ की तकलीफ़ ठीक नहीं हुई। पहले तो वो शिकायत करता रहा फिर उसने डाक्टर के खिलाफ़ कंस्यूमर कोर्ट मैं केस कर दिया।

-''इंडियन मेडिकल एसोसिएशन मैं कोई है क्या अपना दोस्त?'' वकील साहेब ने पूछा।

-''जैसे सब असोसिएशन्स मैं हैं वहां भी नेता लोग हैं....और नेता कब से दोस्त होने लगे....वैसे भी सकससफुल आदमी से तो सब लोग जलते हैं....सो वहां का तो छोड़िए....''

रंजन ने पूछा-''कोई करेस्पोंडेंस?''

भाटिया ने एक फ़ाइल में लगे हुए कुछ कागज़ात सौंपे। रंजन ने कागज़ों पर सरसरी नज़र मारते हुए कहा, ''नॉट टू वरी डाक्टर!'' फिर उसने नज़र उठा कर भाटिया की तरफ़ देखा और कागज़ मेज़ पर रख दिए, ''न लटका दिया सालों को दस साल तो हमारा तो दुनिया में आना ही बेकार है...हं हं हं हं हं....''

-''और वो गुंडे वुंडे ले के आ गए तो?''

-''ऐसे कैसे गुंडे ले के आ जायेंगे....पुलिस कंप्लेंट न कर देंगे हम....डरिये मत....मामला कोर्ट में है वो ऐसा कुछ नहीं करेंगे....मीडिया में दे दूंगा,साले मर जायेंगे....''

-''किसी मीडिया वाले को जानते हो...''

-''मीडिया वालों को जानने की ज़रुरत ही नहीं है....आजकल ज़रुरत होती है पी.आर.एजेंसी वालों को जानने की. मीडिया वालों को पी.आर. वाले ही उँगलियों पर नचाते हैं। मेरे दोस्त की एक पी.आर. एजेंसी है जिसके कई केस हमारी फ़र्म के पास हैं।''

-''तो मेरा एक काम करेंगे प्लीज़?''

-''आप कहिये तो''

-''थोड़ा मीडिया हाइप हो जाये अपनी तो....''

-''उनकी एक फ़ीस होती है हर काम करने की।''

-''नो प्रॉब्लम.....एनीवे...सॉरी..केस की बात कर रहा था....''

-''ये तो आपका मामूली केस है...अभी हाल ही में एक केस हुआ कि एक डिलीवरी करते में औरत को ऑक्सीजन देनी पड़ी...ज्यों ज्यों ऑक्सीजन देयो उसका बदन नीला पड़ता जाये.....आख़िरकार वो मर गयी। डाक्टर भी परेशान कि ऐसा हुआ कैसे. बाद में पता चला कि ऑक्सीजन सिलिंडर सप्लाई करने वाले ने सिलिंडर में नाइट्रोजन सप्लाई की थी! केस हुआ। इन्क्वायरी बैठी। हर्जाना मुक़र्रर हुआ। अस्पताल अपने दोस्त का था, हमने हर्जाने की रक़म वन थर्ड करवा के केस सेटल करवा दिया...एनीवे....ये मैं रख लेता हूँ, और कोई पेपर्स आएं तो वो भी हमें भिजवा दीजिएगा....इसका रिटेन रिप्लाई में भिजवाए देता हूँ।''

मीटिंग तक़रीबन साढ़े सात पर खत्म हुई। बाई बाई के बाद रंजन भाटिया को लिफ़्ट तक छोड़ने आए। रहेजा चैम्बर्स के गेट पर अपनी गाड़ी में बैठते हुए डॉ. भाटिया ने ड्राइवर को आदेश दिया- ''ताज''! गाड़ी दाहिने तरफ़ मुड़ गयी।

ताज होटल की पहली मंज़िल पर सी-लाउन्ज में भाटिया को देख कर पियानो प्लेयर और उसके साथियों ने झुक कर उनका अभिवादन किया। भाटिया ने हल्के

से मुस्कुरा कर जवाब दिया और फिर उनकी नज़रें इधर उधर किसी को ढूँढ़ने लगीं।

समंदर की तरफ़ खिड़कियों के पास एक दो-कुर्सी वाली टेबल पर उन्हें वह दिख गयी। साँवले रंग वाली लम्बे क़द की एक लड़की जिसने अपने बाल ऊपर को बांध रखे थे,जिसकी आँखें बड़ी बड़ी थीं, नाक लम्बी और ज़रा सी गोलाई लिए हुए थी और उसने एक चितकबरा टॉप और काली चुस्त जीन्स पहन रखी थी, जो अपनी चप्पलें उतारकर समंदर की तरफ़ की रोशनियाँ तकती हुई अपनी डी-कैफ़िनैटेड कॉफ़ी की चुस्की ले रही थी।

डॉ. भाटिया की ''हाय मैरीएन!'' से उसका सर पलटा और उसने अपने उभरे उभरे दांतों को उघाडते हुए नज़रों से शहद टपकाते डॉ. भाटिया को बैठने का इशारा किया और पूछा, ''व्हाट विल यू हैव?...पीच मलबा ऐज़ यूज़ुअल!''

मैरीऐन सेक्वेरा एक नामी फाइनेंस कंपनी की सीनियर रिलेशनशिप डायरेक्टर थी जो पोर्टफ़ोलियो मैंनेजमेंट,आई.पी.ओ. और उससे जुड़े तमाम काम करती थी. जो बात ज़्यादातर लगों को नहीं मालूम थी वो ये कि यह कंपनी बड़े बड़े पैसे वालों के पैसे विदेशी बैंकों में सुरक्षित जमा करवाने में भी मदद करती थी।

वेटर जब आर्डर ले कर चला गया तो डॉ. भाटिया ने पूछा, ''सो?''

-''पच्चीस करोड़ हो चुके हैं। लेकिन एक साथ इतना पैसा एक ही देश में रखना मैं ने ठीक नहीं समझा इसलिए इसमें से दस करोड़ हम मॉरीशस ट्रांसफ़र कर रहे हैं।''

-''पच्चीस करोड़...'' भाटिया ने भौंहों पर बल डाल कर, आँखें मिचमिचा कर कुछ सोचते हुए कहा,'' तो एक काम करो...एक आई.पी.ओ.(पब्लिक शेयर इशू) प्लान करो....मैं एक अस्पताल खोलना चाहता हूँ, जिसमें इस पच्चीस करोड़ में से दस करोड़ एन.आर.आई. फंडिंग दिखा देना, बाक़ी पब्लिक से आ जायेगा...''

-''हाउ वेरी ह्यूमन ऑफ़ यू!...ये अस्पताल आप विकलांग बच्चों के लिए खोलना चाहते हैं!''

-''नो नो....ये ऑर्थोपेडिक स्पेशलिटी हॉस्पिटल होगा।''

-''ओह! आई आम सॉरी....मैं ने सोचा शायद आप अपने विकलांग बच्चे का सोच कर.....''

डाक्टर ने अपनी झुंझलाहट छुपाते हुए अपने कपड़े के नैपकिन को ज़ोर से झटका दिया और मन में अपनी बीवी को विकलांग बच्चा पैदा करने के लिए कई भद्दी सी गालियां दीं। इतने में आइसक्रीम आ गयी और मैरीऐन ने सब समझ कर बात बदल दी।

ताज से निकलते निकलते दस बजने लगे थे। बम्बई की जवान रोशनियाँ और जवानी पर थीं। गाड़ी मरीन ड्राइव से गुज़र रही थी। चौपाटी के समंदर के ऊपर हवा में तने किसी कंपनी का इश्तिहार करते एक गैस के बड़े गुब्बारे को देख कर भाटिया के मन में आया, 'आदमी को ऐसा होना चाहिए। सबसे ऊपर, सबसेऊंचा, सबको अपने नीचे देखते हुए'! गुब्बारा पीछे छूट गया, गाड़ी सिग्नल से बाबुलनाथ मंदिर वाली सड़क पर मुड़ गयी।

अल्टामाउंट रोड की सीगल बिल्डिंग की छटवीं मंज़िल पर पहुँच कर भाटिया ने अपने फ़्लैट की 'बैल' बजाई। नौकर ने दरवाज़ा खोला, बीवी फ़ौरन अंदर वरांडे के सिरे पर आ गयी, शायद इंतजार ही कर रही थी। भाटिया को देख कर 'हेलो' में मुस्कुराई, ''आज तुम्हारी फेवरेट पाव भाजी बनी है, आ जाओ।''

भाटिया ने मुंह फेर कर अपनी टाई ढीली की। इतने में फ़ोन पर 'अंग लग जा बलमा' बजा।''

-''यस?''

-''डॉ. भाटिया?''

-''यस।''

-''आई एम रिया फ्रॉम सी.एन.बी.सी....हमारा एक प्रोग्रैम है 'यंग डॉक्टर्स' हम उसमें आपका इंटरव्यू करना चाहते हैं।''

जब बात खत्म हो गयी तब भाटिया त्यौरियों पर बल दे कर ये सोचने लगा कि क्या यह इंटरव्यू रंजन ने फिक्स करवाया होगा! मगर उसने इस ख़्याल को बर्ख़ास्त करते हुए सोचा कि 'मैं हूँ ही इतना बड़ा कि मुझे किसी की रिक़मेन्डेशन की क्या ज़रूरत है!'

फिर डॉ. भाटिया अपने आप पर खुश हो कर, मुस्कुराते हुए पाव-भाजी खाने बैठ गया।

मान गए सर!

साढ़े चार घंटों के इंतज़ार के बाद जब मुझे अंदर बुलाया गया तब तक मैं ऊब चुका था और मेरा सर बेतरह दर्द कर रहा था। अंदर डिपार्टमेंट के डायरेक्टर, मिनिस्ट्री के सक्रेटरी और शहर के दो नामी फ़िल्मकार बैठे थे। डॉक्यूमेंट्री फ़िल्मों के प्रपोज़ल ऑन-लाइन मंगवाए गए थे। उन प्रोपोज़ल्स में से जो शॉर्ट लिस्ट किये गए थे उन पर विभाग के कुछ अधिकरियों से पहले ही एक प्रारंभिक मीटिंग हो चुकी थी और जिन प्रोपोज़ल्स पर उनकी सहमति/स्वीकृति मिल चुकी थी उन्हीं पर आज की फ़ाइनल मीटिंग रखी गयी थी। इसमें दिल्ली से मिनिस्ट्री के सेक्रेटरी महोदय और विभाग के डायरेक्टर कुछ जाने माने फ़िल्म कारों के साथ प्रपोज़ल कर्ताओं से फ़ाइनल इंटरव्यू करके फ़िल्में असाइन करने वाले थे। मैं उसी मीटिंग के लिए यहाँ बुलाया गया था। फ़ोन पर कहा गया था 'नौ बजे ज़रूर आ जाइयेगा! साहेब समय के बहुत पाबंद हैं' ऐसा शायद सब से कहा गया होगा। इसलिए जब मैं पहुंचा तो पांच लोग वहाँ पहले से ही बैठे हुए थे। मेरा नंबर लाइन में लगा। साढ़े दस के आस पास जब अलग अलग लोगों से मीटिंग शुरू हुई तो हर एक से तक़रीबन आधे आधे घंटे चली। उसके बाद हर एक मीटिंग के बीच में क़रीब दस-पन्द्रह मिनटों का ब्रेक। इसलिए मेरा नंबर क़रीब डेढ़ बजे दोपहर में आया। जब मैं अंदर गया तो शायद एक फ़िल्मकार ने मेरी हेल्लो का जवाब भी दिया। मुझे देख कर डायरेक्टर, जो के बाबू (आई.ए.एस) था, उसने सेक्रेटरी की तरफ़ हाथ से इशारा किया, ''सर!''

''सर'' ने अपने बाएं हाथ की उंगली बाएं नथुने पर लगा कर दायें हाथ से मेरे जमा किये हुए प्रपोजल के काग़ज़ों को पलट कर देखना शुरू किया। ''हूँ...!. ..तो आप ये फ़िल्म बनाना चाहते हैं......!''

मेरे हिसाब से इसका कोई जवाब तो बनता नहीं था। क्योंकि मेरा प्रपोज़ल वो देख ही रहे थे। फिर उन्होंने एक लम्बी सांस ले कर मेरी तरफ़ देख कर कहा,

''यू हैव टू कन्विन्स मी कि हम ये फ़िल्म क्यों बनायें!''

-''ये इतिहास है...''

-''तो?''

-''इतिहास को सुरक्षित रखने का काम कोई प्राइवेट कम्पनी तो करेगी नहीं, सरकार ही कर सकती है।''

-''इतिहास को प्रिज़र्व करने का काम हमारी एक यूनिट ऑलरेडी कर रही है।''

-''वो विडियो पर कवरेज करते हैं जिसके रंग पांच छह सालों में उड़ जाते हैं, दस सालों में विडियो समाप्त हो जाता है.....मैं 35 एम् एम् फ़िल्म की बात कर रहा हूँ जिसकी शेल्फ लाइफ कम से कम 100 वर्षों तक है और उसके बाद सौ सौ वर्ष और.....'' मैंने कहा

-''वो आप हम पर छोड़ दीजिये। हमने इतना इतिहास प्रिज़र्व ऐसे ही नहीं किया है....आप तो ये बताइये के हम ये फ़िल्म क्यों बनायें!''

-''मैं ने आपसे कहा....''

-''वो ठीक है बट यू हैव टू कन्विन्स मी!''

-''आप एक काम क्यों नहीं करते, ''एक फ़िल्मकार जो मुझे जानते थे उन्होंने बात सँभालने की कोशिश की, ''आप बग़ैर पूरे इतिहास के परिपेक्ष को लेने के किसी एक पात्र के जीवन पर फ़िल्म क्यों नहीं आधारित करते।''

-''ये किसी शख़्स की नहीं ये एक समूचे क्षेत्र, एक समूचे समूह के अंग्रेजों के ख़िलाफ़ संग्राम की बात है....''

-''अंग्रेज़ों के खिलाफ़,'' 'सर' ने मेरी बात कुछ इस तरह काटी जैसे कि उन्हें इल्हाम हुआ हो, ''अंग्रेजों के खिलाफ़ तो तमाम लोग लड़े, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी...उन पर फ़िल्में बनाना चाहिए...''

-''जिनका नाम आप ले रहे हें वो लड़े नहीं थे...उन्होंने लड़ाई का नेतृत्व किया था, लड़े तो हज़ारों लाखों वो जिन के नाम तक मिट गए हैं।''

सेक्रेटरी को बात पसंद नहीं आयी। उसकी त्यौरियां चढ़ गयीं। डायरेक्टर ने अपनी कुर्सी में ज़रा शिफ्ट हो कर टांग पर रखी हुई टांग अदली बदली। दूसरे फ़िल्म वाले ने पानी की बोतल से एक घूँट मारा।

-''अपने बताया नहीं कि हम ये फ़िल्म क्यों बनायें?''

-''..........''

-''और आपने ये जो बजेट दिया है वो तो एकदम अन-प्रैक्टिकल है।''

-''इसमें तीन लाख तो केवल सिने फ़िल्म स्टॉक की ही क़ीमत है...''

-''नहीं नहीं..वो नहीं...'' सेक्रेटरी ने हाथ झुलाकर सोफ़े पर पसरते हुए डायरेक्टर को इशारा किया, ''आप बताइये''

डायरेक्टर ने गला साफ़ करते हुए आहिस्ता आहिस्ता बोलना शुरू किया, ''प्लानिंग कमीशन से जो हमारे पास सैंकशन आयी है वो केवल बारह लाख की है. ..आप अट्ठाइस लाख की बात कर रहे हें...''

-''प्रपोजल जमा करते समय यदि मुझे इस बजट का अंदाज़ा होता तो मैं उस तरह का प्रोजेक्ट दाख़िल करता।''

-''तो ये प्रपोज़ल तो प्रैक्टिकल नहीं है न..''

-''प्रैक्टिकल तो है,'' मैं थोड़ा चिड़चिड़ाने लगा था, ''सिर्फ़ आपकी पॉलिसी के हिसाब से पॉसिबल नहीं है।''

-''वो जो भी....'' इतना कह कर डायरेक्टर चुप हो गया। उसने 'सर' की तरफ़ ऐसे देखा जैसे कि मेरा हो गया सर, अब आप!

-''मैं तो यहाँ ट्रीटमेंट डिसकस करने आया था,'' पहले फ़िल्म वाले ने मेरी तरफ़ देख कर कहा, ''हालांकि मैं आपको जानता हूँ लेकिन मुझे केवल आप ये बताएं कि इस फ़िल्म को आप ट्रीट कैसे करेंगे।''

-''ऐ काइंड ऑफ ट्रैवलॉग इन दैट टाइम...'' मैं ने समझाया, ''और उस समय के इतिहास के एक दस्तावेज़ की तरह....जिसमें थोड़ा ड्रामा एलिमेंट होगा, कुछ स्टॉक, कुछ एनीमेशन और कुछ कंप्यूटर ग्राफिक्स....''

फ़िल्म वाले ने जवाब से मुतमइन होकर सेक्रेटरी की तरफ़ देखा। आँखों ही आँखों में दोनों गुणवत्ता से आश्वस्त हुए लेकिन 'सर' ने ये बात ज़ाहिर करना मुनासिब नहीं समझा। न लफ़्ज़ों में न शक्ल से।

-''आपका एक करक्टेर है.....सरस्वती बाई.....'' 'सर' ने फ़ाइल देखते हुए कहा।

-''वो तो मेन करेक्टेर है......वीरांगना तो वो ही है जिसने अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिए थे।''

-''वो ठीक है.....'' 'सर' ने सर ऊंचा करके बोलना शुरू किया, ''मैं ये कह रहा था कि उनकी कहानी तो सब ने सुनी है....तो व्हाई शुड वी मेक ऐ फ़िल्म ऑन हर?''

-''कहानी सुनी है, उन पर किताबें हैं, नाटक लिखे गए हें- खेले गए हैं लेकिन विडम्बना ये है कि फ़िल्म एक भी नहीं बनी है। तो इतिहास जो फ़िल्मों के ज़रिये सुरक्षित रखा जा रहा है उसमें उनके बारे में कल कुछ भी नहीं मिलेगा। पढ़ना लिखना

तो वैसे भी कम होता जा रहा है।''

-''पढ़ना लिखना कहाँ कम हो रहा है.....मैं अभी तक एजुकेशन मिनिस्ट्री में था। साक्षरता मिशन का सारा काम मेरा किया हुआ है....साक्षरता बढ़ रही है, लोग पढ़ रहे हें.....तो ये भ्रम मत फैलाइये कि पढ़ना लिखना कम हो रहा है....पढ़ना लिखना तो बल्कि बढ़ रहा है।''

वो सेक्रेटरी था। फ़िल्म देना न देना उसकी मर्ज़ी पर निर्भर था। देश के सारे आँकड़ों का उसे पता था। न पता होता तो भी वो जो बोलता वो ही आंकड़े हो जाते। मैं ने कुछ भी कहना मुनासिब नहीं समझा। इतने में डायरेक्टर के कक्ष-जहाँ ये मीटिंग चल रही थी-उसके द्वार पर लगी घंटी टन्न से बजी जो इस बात का द्योतक थी कि कोई अंदर दाख़िल हुआ है। दरअसल डायरेक्टर का कक्ष अंग्रेज़ी के अक्षर 'एल' की शक्ल में था। प्रवेश द्वार पर एक छोटी सी घरों में भगवान के सामने बजाई जाने वाली घंटी बंधी थी जो कि जैसे ही कोई दरवाज़ा खोलता या बंद करता था बज उठती थी। दरवाज़ा एक छोटे से केबिन नुमा कमरे में खुलता था। वहाँ से दायें मुड़े कि साहेब का ऑफ़िस था जिसमें उनकी मेज़ ऐसे रखी गयी थी कि आने जाने वाले से उनकी नज़र तब तक चार न हो जब तक कि शख़्स उनकी मेज़ के सामने न आ जाये। इसलिए घंटी सिर्फ़ किसी के दाख़िल होने की सूचना थी दिखता वो जब ही था जब दीवार की आड़ से इधर साहेब की मेज़ के सामने आ जाता था। बग़ल में सोफ़ा पड़ा था जहाँ कि ख़ास ख़ास लोगों के साथ मीटिंग होती थी। आज सब सोफ़े पर ही बैठे थे। जब आने वाला दिखाई दिया तब पता चला एक लड़का ट्रे में सैंडविच पैकेट्स ले कर आया था। वो इंटरव्यू लेने वाले हर एक के आगे प्लेट में एक एक सैंडविच पैकेट रखने लगा।

-''ये क्या है?'' 'सर' ने पूछा।

-''चीज सैंडविच है सर!'' डायरेक्टर ने सहमते हुए जवाब दिया, ''चिकन मुझे मालूम है आप मंगलवार को खाते नहीं हैं!''

-''अच्छा.....आपको मालूम है।''

-''मालूम कैसे नहीं सर......दिल्ली में कभी आपने किसी से कहा था सो मुझे याद रह गया।''

-''गुड....लेकिन एग से परहेज थोड़े ही है....आमलेट सैंडविच मँगा लेते... .मिलेगी यहाँ?''

-''ऑफ़ कोर्स सर!'' डायरेक्टर ने लड़के की तरफ़ देखा, ''अरे देखो....'' फिर डायरेक्टर ने फ़िल्मकारों की ओर देखा, ''आप लोगों के लिए भी आमलेट सैंडविच

मंगवाऊँ?''

फ़िल्म वालों ने हाथ हिला दिए, ''नहीं नहीं.....ये ही बहुत है!''

-''ठीक है....'' डायरेक्टर ने लड़के से फिर कहा, ''सर के लिए एक आमलेट सैंडविच बनवा लाओ''

लड़का चला गया। थोड़ी देर में फिर आ कर सब वरिष्ठों के सामने एक एक पेप्सी की बोतल खोल कर रख गया।

-''आप?'' डायरेक्टर ने मेरी तरफ़ देखा, ''आप कुछ लेंगे?''

-''जी नहीं....थैंक यू..'' मैं ने सोचा कम से कम इसने पूछा तो!

-''हाँ, तो....'' 'सर' ने चीज़ सैंडविच का टुकड़ा मुंह में चबाते हुए कहा, ''ये जो सरस्वतीबाई की फ़िल्म है....ये तो काफ़ी डिफ़िकल्ट फ़िल्म है...''

-''किस मायने में?'' मैं ने पूछा।

-''नहीं......मतलब.....इसे बनाने के लिए तो कोई बड़ा फ़िल्म मेकर होना चाहिए....दिस मस्ट बी मेड रियली वैल!''

सब लोग सैंडविच खाने में व्यस्त थे। इस पर कोई टिपण्णी नहीं आयी।

-''अरे क्या नाम है उसका....'' 'सर' ने ज़रा देर बाद पेप्सी का घूँट निगलते हुए पूछा।

-''किसका सर?''

-''वो जो आपके पिछले फ़िल्म फ़ेस्टिवल में.....जब उसकी फ़िल्म रिजेक्ट हो गयी थी तो वो पचास लोगों का मोर्चा ले कर आ गया था डिपार्टमेंट के खिलाफ़''

-''वो......!......हाँ हाँ....'' डायरेक्टर को सोचने में एक मिनट लगा।

-''अनिकेत करंदीकर!?'' एक फ़िल्म वाले ने सुझाया।

-''हाँ हाँ ....वो ही'' 'सर' प्रसन्न हो गए, ''वो तो इन्टरनॅशनली एक्लैम्ड फ़िल्म मेकर है भाई!''

-''अरे कितने इंटरनेशनल फ़ेस्टिवल्स में मंगवाई जाती हैं उसकी फ़िल्में। ही इज़ वैरी वेल नोन अराउंड द वर्ल्ड।'' डायरेक्टर ने हामी भरी।

-''नो डाउट अनिकेत की फ़िल्में तमाम फ़ेस्टिवल्स में दिखाई जाती हैं लेकिन वो इसलिए नहीं कि दे आर गुड...वो इसलिए कि वे हमारी गन्दगी, भ्रष्ट सरकारें और सोसाइटी की कमज़ोरियाँ दर्शाती हैं....जो कि दुनिया देखना चाहती है....और. ....'' मुझसे रहा नहीं जा रहा था।

-''देखिये देखिये.....'' 'सर' ने मेरी बात काटते हुए हाथ का पंजा दिखा कर मुझे चुप करा दिया, ''ये सब सब्जेक्टिव बात है......आख़िर फ़िल्म एक मीडियम

है और फ़्रीडम ऑफ़ स्पीच उनका राईट है......लोग क्या देखना चाहते हैं क्या नहीं देखना चाहते ये लोगों के ऊपर है। हम इस पर अंकुश कैसे लगा सकते हैं।''

-''यू आर राईट सर!'' डायरेक्टर ने सर हिलाया।

-''तो एक फ़िल्म तो अनिकेत को मिलनी चाहिए...'' 'सर' ने फ़िल्म वालों की तरफ़ देखा, ''क्यों?''

-''यस यस...बिलकुल!'' दोनों फ़िल्म वालों ने हामी भरी। वो उस शख़्स से कैसे दुश्मनी ले सकते थे जो पचास फ़िल्म वालों का मोर्चा ऑर्गनाइज़ कर सकता था। आख़िर फ़िल्म वालों की एसोसिएशन के मेंबर तो ये लोग भी थे। इन्हें भी तो सब के साथ मिल जुल कर चलना था।

-''आफ़्टर ऑल गवर्नमेंट हैज़ टु सपोर्ट एन इंटरनेशनल टैलेंट लाइक हिम!'' 'सर' ने कहा।

-''राईट!'' डायरेक्टर ने पैड पर पेंसिल से कुछ नोट कर लिया।

लड़का कमरे में दोबारा आया और टिश्यू पेपर में लिपटी हुयी प्लेट में रखी एक ऑमलेट सैंडविच 'सर' के हाथों में थमा गया।

-''हाँ तो मैं क्या कह रहा था...'' 'सर' ने सैंडविच के बीच से आमलेट का एक छोटा सा टुकड़ा तोड़ कर चखा....''कि ये जो सरस्वतीबाई वाली फ़िल्म है वो अभी ठहरिये...!'' फिर 'सर' ने जैसे कुछ सोच कर बड़ी गहरी नज़र से मुझे देख कर पूछा, ''आपने बिनतारीबाई का नाम सुना है?''

-''बिनतारीबाई?!....वो तो एक फिकटिशयस करैक्टर है!''

-''व्हाट नॉनसेंस!.......यू आर नोट अवेयर ऑफ़ रियल हिस्ट्री।''

-''जिस उपन्यासकार ने सरस्वतीबाई पर उपन्यास लिखा था उसने ड्रामेटिक नीड के लिए सरस्वतीबाई की एक सिपाही का करैक्टर ईजाद किया था। इस करैक्टर को उन्होंने बिनतारीबाई का नाम दिया था। लेकिन उसी उपन्यास के उसी एडिशन की भूमिका में लिख भी दिया था कि बिनतारीबाई एक काल्पनिक पात्र है और उसका न सरस्वतीबाई से कोई लेना देना है न इतिहास से।

-''आपको इतिहास का अंदाज़ा नहीं है....'' 'सर' ने सैंडविच खाना रोक कर मेरी तरफ़ देख कर कहा, ''ये आप इसलिए कह रहे हें क्यों कि बिनतारीबाई एक शूद्र महिला थीं, लेकिन आप ये नहीं कह रहे हैं कि उन्होने अपनी जान पर खेल कर रानी सरस्वतीबाई को बचाने का काम किया था।''

-''सर, मैं इतिहास का भी विद्यार्थी हूँ और साहित्य का भी......''

-''मैं ने तो किसी किताब की भूमिका मैं नहीं पढ़ा कि राइटर ने कहीं लिखा हो कि बिनतारीबाई एक कालपनिक पात्र है..''

-''किताब के सबसे पहले एडिशन में है....बाद के एडिशंस में ये बात निकाल दी गयी है।''

-''देखिये, गवर्नमेंट के एजेंडा मैं बिनतारीबाई पर फ़िल्म बनाने का प्रोवीजन है और गवर्नमेंट कभी कल्पना से काम नहीं करती, ठोस तथ्यों के आधार पर करती है।'' डायरेक्टर ने संयत हो कर कहा।

-''मुझे एक्सक्यूज़ करें...'' एक फ़िल्म मेकर ने घड़ी देख कर उठते हुए कहा, ''दो के ऊपर हो चुके हें, मुझे अपनी रिकॉर्डिंग पर पहुँचाना है, मैं चलूँगा।''

-'' हाँ हाँ....अपने तो कहा भी था आपको जाना है....'' डायरेक्टर ने माना।

-''ठीक है...'' 'सर' ने टिश्यू पेपर से हाथ पोंछ कर फ़िल्मकार से हाथ मिलाते हुए कहा, ''वैसे भी अब कोई और इंटरव्यू तो बचा नहीं है। थैंक यू।'' फिर फ़ौरन नज़र हटा कर 'सर' ने मेरी तरफ़ देख कर कहा, ''हाँ, तो....आप एक काम क्यों नहीं करते.....आप बिनतारीबाई पर रिसर्च कीजिये और उन पर फ़िल्म का प्रपोज़ल दीजिये। वो हम फ़ौरन अप्रूव कर देंगे।''

-''वो काल्पनिक करक्टेर है सर!'' मैं ने 'सर' पर ज़ोर देते हुए कहा!

दूसरे फ़िल्म मेकर का सेल फ़ोन बजा। उसने अपना सेल निकाल कर देखा, फ़ोन काट दिया और फिर सोफ़े में आगे आ कर बोला, ''कैरैक्टर ऐतिहासिक है या काल्पनिक सवाल ये नहीं है क्योंकि कला का कोई भी माध्यम इतिहास की किताब थोड़े ही है। वो तो कला है। कलाकार चाहे तो इतिहास से प्रेरणा ले कर कुछ ऐसा गढ़ने का अधिकारी है जो भले ही सत्य न भी हो लेकिन उससे समाज का भला होता हो या उसके मूल्यों में किसी प्रकार की वृद्धि होती हो या बदलाव आता हो...''

-''अब्सोलुटली राइट!'' सर ने सैंडविच चबाते हुए भरे मुंह से प्लेट की तरफ़ देखते देखते ऐसे कहा जैसे कहीं ये बोलने का समय निकल न जाये।

-''ये तो ठीक है कि कलाकार या साहित्यकार इस प्रकार की लिबर्टी ले सकता है और अक्सर लेता भी है। फ़िल्मों की बात चल रही है तो इसी में देख लीजिये डर्टी हैरी सीरीज़ पूरी तरह सैन फ्रांसिस्को पुलिस डिपार्टमेंट के एक समय के मशहूर इंस्पेक्टर डेव तोशी के ऊपर आधारित थी। जेम्स बांड की पूरी सीरीज़ इयान फ्लेमिंग ने आला दर्जे के ब्रिटिश सीक्रेट एजेंट फ़ारेस्ट यो थॉमस -जो कंसंट्रेशन कैंप से भी

भाग निकला था और जो सिर्फ़ चर्चिल को पर्सनली रिपोर्टिंग करता था-उस पर आधारित की है..'' मैं ने कहा

-''अब समझे आप!'' सर ने टिशू से हाथ पोंछे।,''गुड!''

मैं ने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, -''लेकिन ये सब तब ठीक लगता है जब काल्पनिक पात्र मूल पात्र से अधिक स्ट्रांग हो....यहाँ उल्टा है....यहाँ जो मूल पात्र है वो इतना स्ट्रांग है, इतना सक्षम और गरिमा-मान कि उसका क्लोन या उस पर आधारित कोई भी पात्र अव्वल तो उस स्तर का बन नहीं सकता और अगर गढ़ा भी जाये तो उतना सक्षम, उतना स्तरीय और उतना कंविंसिंग हो नहीं पायेगा।''

पता नहीं सर ने कितना सुना या समझा! उन्होने दो सेकंड के लिए नज़र भर मेरी तरफ़ देखा। फिर अपनी उँगलियाँ रगड़ते हुए बोले,-''देखिये मुझे जो कहना था मैं ने कह दिया. अब करना न करना आप पर निर्भर है।''

''....................''

-''फ़िल्म तो हमारी कोई न कोई बना ही देगा....इतने घूमते हें फ़िल्म वाले जिनको काम की दरकार है।''

-''जो भी बनाएगा रिसर्च के लिए उसे इतिहास में तो इस पात्र के बारे में कुछ नहीं मिलेगा..!''

-''वो आप हम पर छोड़ दीजिये।''

दूसरे फ़िल्मकार ने उठकर हाथ झाड़े और ऐक्सक्यूज़ मी करके कक्ष के बाहर, शायद वाशरूप की तरफ़ निकल गया। उसकी प्रेज़ेन्स दर्ज हो चुकी थी।

''तो आय करेंगे या नहीं?''

'बिनतारी बाई तो....।

-''बेकार की बात छोड़िये,'' 'सर' ने मेरी बात काटी, ''करेंगे या नहीं?''

-''सरस्वतीबाई का प्रपोज़ल दिया है, मैं वो ही करूंगा।''

-''ठीक है.....हम आपको बताएंगे....थैंक यू फ़ॉर कमिंग।'' और 'सर' ने बाई बाई में हाथ बढ़ा दिया।

मैं उन महानुभावों के कमरे से निकल कर कक्ष के पहले वाले छोटे से कमरे तक ही पहुंचा था कि टन्न से घंटी बजी और लड़का ख़ाली ट्रे ले कर-शायद जूठन उठाने- दाख़िल हुआ। वो अंदर आए इसलिए मैं दरवाज़ा पकड़े खड़ा हुआ. इतने में मेरे कान में आवाज़ आयी। 'सर' डायरेक्टर से कह रहे थे- ''देखिये...ये बिनतारीबाई फ़िल्म के लिए किसी एस सी/एस टी वाले ज़रूरतमंद प्रोडूसर से कोटेशन मंगवाइये और ये सरस्वतीबाई वाली फ़िल्म दे दीजिये अनिकेत करंदीकर को। मेरी उससे बात

हो चुकी है। अब आगे वो हमारे ख़िलाफ़ कुछ न बोले इसलिए मैं ने उसे पच्चीस लाख का बजट देने की बात की है।''

जो मैं ने सुना उससे मेरी समझ में नहीं आया कि क्यों एक हलकी सी मुस्कराहट मेरे होठों पर तैर गयी और मुंह में फैल गया एक अजीब सा ज़ायक़ा! मैं आगे सुनने के लिए रुक गया।

मैं ने सुना डायरेक्टर 'सर' से कह रहे थे, ''मान गए सर आपको! एक तीर से दो निशाने! एक तरफ़ आपने अनिकेत करंदीकर के रिबेलियन को ख़त्म कर के उसे फ़िल्म दे कर अपना ग़ुलाम कर लिया, दूसरी तरफ़ बिनतारीबाई पर फ़िल्म बनवा कर मिनिस्ट्री में अपने प्रो एस.सी.एस.टी होने का झंडा गाड़ दिया....आपका सी वी तो सबसे बेस्ट हो गया सर! अब के आप सीधे सेक्रेटरी ऑफ स्टेट या कम से कम एडवाइजर इन पी एम् ऑफ़िस...पक्का!''

-''अरे करना पड़ता है भाई..!''

-''हमारा ख़्याल रखियेगा सर! आप ही से आशा है!....शाम को सर घर पर ही डिनर रखा है आपका!''

तब तक लड़का ट्रे में जूठी तश्तरियां ले कर आ गया और मैं भी उसके साथ बाहर निकल लिया। एक घंटी फिर बजी। हालाँकि दोपहर थी लेकिन सूरज पर बादल छा चुके थे और अँधेरा बढ़ गया था!

''वी दि पीपुल''

अख़बारों में बड़े बड़े हर्फ़ों में छपा-

''दिलीप चौगुले को मारुती वैन चुराने और क़त्ल के इल्ज़ाम में उम्र क़ैद''

तक़रीबन हर अखबार में इसी तरह की हैडलाइन थी और क्योंकि केस कई दिनों से सुर्खियों में था इसलिए ये बताने की ज़रुरत भी नहीं पड़ी कि ये दिलीप चौगुले है कौन! लोगों का भी इस दिलीप चौगुले से समाचारों द्वारा ही सम्बन्ध था इसलिए किसी को कोई फ़र्क नहीं पड़ा। शाम को शराब पीकर प्रेस क्लब में तबसिरे किये गए कि किस अख़बार के किस पत्रकार ने ये ख़बर सब से अच्छी लिखी और कौन है जो 'कम्बख़्त लिखना ही नहीं जानता।' (बुद्धि!)- जीवियों में स्कॉच और बकार्डी के दौर पर नैतिक पतन और सामाजिक अवमूल्यन के चर्चे हो लिए, आजकल के नौजवानों, मीडिया और इनसे जुड़ी तमाम चीज़ों को कोसा गया। समाजसेवा में रत लोगों को गोष्ठी संयोजन का मुद्दा मिल गया। मोहल्ले के लोगों ने हेडलाइन पर मोहर लगाते हुए कहा, ''ये तो होना ही था....ऐसे लड़के ऐसे ही सड़ते हैं...!'' दिलीप चौगुले के घर उस दिन अँधेरा रहा। माँ अपनी क़िस्मत को धिक्कारती -रोती रही। बाप एक कोने में बैठा खिड़की से बाहर झांकता रहा और महसूस करता रहा वो शून्य जो उसकी ज़िन्दगी का हिस्सा था। शाम से जल जाने वाला भगवान् की तस्वीर के सामने वाला दिया आज वैसे ही पड़ा रहा।

जज ने तो जो फ़ैसला देना था, दे दिया। लेकिन ये फ़ैसला दिल या दिमाग़ से नहीं था। क़ानून से था। साफ़ दिखाई देती चीज़ को नज़र अंदाज़ करते हुए- आँखों पर पट्टी बाँध कर। ज़िन्दगी को किसी बेजान वज़न से तौलते हुए!

जैसे इस दुनिया में कोई भी चीज़ ब-ज़ात-ए-ख़ुद नहीं है, उसका होना या न होना या जैसी है वैसी ही होना उसके आस पास की चीज़ों/माहौल पर निर्भर है वैसे ही सज़ायाफ़्ता दिलीप चौगुले भी अकेला नहीं था।

दिलीप चौगुले के दो बहुत पक्के और बचपन के दोस्त थे- मोहन शिंदे और

लोकेश जोशी। दोनों बांद्रा के कला नगर हाउसिंग कॉलोनी में आस पास रहते थे। वहीं पैदा हुए, पले और पास के नगर पालिका वाले स्कूल में पहले दर्जे से साथ साथ पढ़े। स्कूल जाते में कभी किसी को देर हो जाये तो दूसरा उसे आवाज़ देकर बुला ले। लौटते में किसी का बस्ता कोई भी उठा ले। इंटरवल में एक दूसरे के डिब्बे से कभी पोहा, कभी शीरा (हलवा) कभी वड़ा कोई भी किसी के भी साथ शेयर कर ले। एक पल लड़ ले तो दूसरे पल भूल जाए। बहरहाल पांचवीं पास करते करते दिलीप, लोकेश और मोहन की दोस्ती एकदम पक्की हो गयी। जूनियर कॉलेज में वे अक्सर साथ साथ पढ़ते और नीचे मैंदान में क्रिकेट खेलते थे। दसवीं भी उन्होंने साथ साथ पास की। दसवीं के बाद सितारे बदल गए। मोहन शिंदे को तो ग्यारहवीं में नम्बर कम होने के बावजूद दाख़िला मिल गया। वह रिज़र्वड कैटेगरी में आता था। लोकेश जोशी क्यों कि पढ़े लिखे पंडित का बेटा था इसलिए उसे संविधान के हिसाब से पंद्रह हज़ार देकर सोशलिज्म निभाना पड़ा। दिलीप चौगुले रह गया। ये न संविधान का बेटा था न सौत। इसके पिता के पास पंद्रह हज़ार क्या पांच हज़ार रूपए भी नहीं थे।

तो अब क्या किया जाये!? बाप ने कहा कोई ऐसा कोर्स कर लो जो जीविकोपार्जन में काम आये, हाथ का हुनर हो। बात बहरहाल एक गैराज में अप्रेंटिस लग जाने पर रुकी। हालांकि बाप को ये बात पसंद तो नहीं आयी कि लड़का इतनी सी उम्र में डब्बा बांध कर जाये, मैंले कुचौले कपड़े पहने, गन्दी भाषा और संस्कार अर्जित करे..लेकिन अगर हम उन्हें मानते हैं जिन्होंने अंग्रेजों की लाठियां खाई हैं तो उनकी लाठियां ख़ाने से हम भी इंकार नहीं कर सकते।

वक़्त शुरू होते ही गुज़र गया। गैरिज छह महीने बंद हो गया। क्योंकि जिस जगह वो बना था वो जगह एक गार्डन के लिए आरक्षित थी। तो जब गार्डन का मुद्दा उठा तो गैरेज गया! बाद में पता चला कि इस सच के पीछे मामला ये था कि चीफ़ मिनिस्टर के दामाद को उस जगह बिल्डिंग बनानी थी और प्लाट बग़ैर किसी झंझट के चाहिए था। बिल्डिंग बनती तो अवैध ही लेकिन बनते बनते वैध हो जाती। बेचने से पहले ओ.सी. आ जाता। बहरहाल जो बेचारे आम आदमी को मालूम होने की बात ही नहीं है उससे क्या मतलब ! ग़रज़ तो ये कि दिलीप बेकार हो गया।

रेसेशन का ज़माना था, वोलन्टरी डिस्क्लोज़र स्कीम में जो पैसा मार्किट में घूम रहा था नेता जी वो भी अपनी लुंगी में बटोर ले गए। देश से वैसे भी किसी को क्या मतलब! तो जो फ़र्क़ नज़र आया वो सब जगह नज़र आया। मकानों, होटलों,

हवाई जहाज़ों, रेलों यहाँ तक कि मिठाई और चाय की दुकानों तक की ग्राहकी पतली हो गयी। तो जब पैसा होगा ही नहीं तो आदमी की गाड़ी ख़राब भी हो तो बेचारा कहाँ से ठीक करवाएगा। और ठीक करवाना भी होगी तो आज की बात कम से कम कल पर तो टाल ही देगा। ऐसे माहौल में नौकरियां भी नहीं मिलतीं। देश के तमाम सफ़ेद-नीले पोशों के साथ दिलीप भी बेकार हो गया। बेकार याने बेमतलब! बेमतलब याने फ़िज़ूल! फ़िज़ूल याने भंगार, कूड़ा कचरा! और कूड़ा कचरा किसे पसंद होता है! वह तो लोग घर में नहीं रखते! माँ बाप के ताने शुरू हो गए। और ज़ाहिर है इंसान के बर्दाश्त की एक हद होती है इसलिए दिलीप भी कब तक सुनता। तड़ातड़ जवाब देने लगा और जब दो पीढ़ियां अपनी अपनी दलीलें लेकर एक ही तलवार से लड़ेंगीं तो दोनों ही लहूलुहान होंगीं। लड़ाई के साथ यही मज़ा है- जितनी लड़ो उतनी ही बढ़ती है। इसलिए दिलीप की उम्र अठारह तक पहुंचते पहुँचते सन्नाटा सा था- घर में भी, घर के रिश्तों में भी। कहता कोई कुछ नहीं था लेकिन खुश एक दूसरे से कोई नहीं था।

कॉलोनी एक ही थी इसलिए शाम को कभी कभी दिलीप, लोकेश और मोहन की, मुलाक़ात हो लेती थी। लेकिन रास्ते अलग अलग हों तो लोगों के रिश्ते भी औपचारिक हो जाते हैं। इसलिए इन लोगों के रिश्ते भी धीरे धीरे औपचारिक होने लग गए। मोहन शिंदे इस बात से पूरी तरह वाक़िफ़ था कि वह शेडूल कास्ट है और इस बात का भरपूर फ़ायदा उठा रहा है। हालांकि वह अपने पैसों से पढ़ सकता था और बग़ैर रिज़र्वेशन के भी यहाँ तो क्या अमरीका में भी दाख़िला ले सकता था। उसके पिता इनकम टैक्स अफ़सर थे...डायरेक्ट रिक्रूट- आई.आर. ऐस।! उनके शहर में तीन फ़्लैट्स थे और उनके पास नौकरी के पिछले पांच सालों में ऐसा कोई साधन नहीं था जो न हो। लेकिन मोहन और उसके पिता दोनों के दिलमें कभी ये ख़्याल नहीं गुज़रा कि वे इस संवैधानिक फ़ायदे का इस्तेमाल अब बंद कर दें। बर-खिलाफ़ इसके कि मोहन के नंबर निहायत कम थे, उसे सर्विस सिलेक्शन बोर्ड से रेलवे में अच्छी नौकरी मिल गयी।

बीस से पच्चीस साल की उम्र बड़ी अजीब उम्र होती है। तेरह चौदह से लगा कर सत्रह अठारह तक की कहानी तो ख़ैर रूमानी भी होती है। लेकिन बीस से पच्चीस वाली ऐसी सख़्त और तुर्श होती है जैसे आँखें फाड़ कर घूरती हुई तर्रार चेहरे वाली कोई चट्टान! यही उम्र है कोई बन गया या मिट गया। सही शब्दों में कहिये तो स्लॉटिंग की उम्र। जो जहाँ स्लॉट हो गया वहां हो गया। बढ़ना न बढ़ना स्लॉट की गुंजाइश पर है।

दिलीप चौगुले भी स्लॉट हो चुका था....मवाली! पंद्रह साल का दसवीं पास दिलीप अब बाइस साल का पट्ठा था और उसका पिछले छः सालों से हर दिन अपनी चॉल के नुक्कड़ पर ताश के पत्ते या रातों को लाइट लटका कर कैरम खेलते गुज़रा था। वो और उसके साथी दिन भर बैठ कर या तो पिक्चरों की बातें करते या लोकल नेता के अड्डे पर वक़्त गुज़ारते या फिर ये ख़बर रखते कि आती जाती लड़कियों में कौन ख़ूबसूरत है कौन चालू है और किस का किस से टाँका है। इस गैंग में पिछले डेढ़ सालसे लोकेश भी आने लगा था।

लोकेश की कहानी ज़्यादातर क़िस्मत की है। एस.एस.सी के बाद दाख़िले के लिए उसके पिता ने डोनेशन का बंदोबस्त किया था ये बात वो लोकेश को हमेशा याद दिलाते रहे। जब ग्रेजुएशन का समय आया तो लोकेश को अपने अच्छे नंबरों के कारण ख़ुद ही दाखिला मिल गया-साइंस में! लोकेश चाहता भी साइंस था लेकिन उसकी बुनियाद में बाप का डोनेशन वैसे ही ठहरा जैसे कि कभी दशरथ के रथ में कैकयी की उंगली रही थी। बाप कॉमर्स लेने का मुआवज़ा मांग बैठा। क्योंकि बाप को सब ने यह समझा रखा था कि सब अच्छे घरों के लड़के आजकल कॉमर्स ले रहे हैं और यही आजकल का फ़ैशन है। उनके साहेब के लड़के ने भी कॉमर्स ली थी। हालांकि लोकेश का कॉमर्स से दूर दूर तक कोई लेना देना नहीं था, लेनी मगर उसे झखमार कर कॉमर्स ही पड़ी। और जब जी न लगे तो लोग तो इंद्रसभा से भी ऊब जाते हैं, लोकेश तो कॉलेज में था। पहले साल सेकंड आया। बाप के ताने और अपने मन के उचटने का संगम कुछ यों होता रहा कि लोकेश ने दूसरे साल थर्ड क्लास पास किया और फिर उसके बाद पढ़ाई में उसका दिल कभी लगा ही नहीं। इसके बाद हालांकि उसे हिसाब किताब लिखने लिखाने की कोई छोटी मोटी नौकरी मिल जाती लेकिन इस दुनिया में सारा खेल मन का है और लोकेश का मन हद दर्जा आहत हो कर क़िस्मत और भगवान से नाराज़ ढिठाई पर उतर आया था। वह कुछ न करके आवारा बनकर रह जाना चाहता था ताकि उसका बाप उसे देखे और बर्दाश्त की हदों के बाहर तक दुखी हो। इसके पीछे एक और बात जो थी वह थी मोहन शिंदे की बेशर्म मुंह चिढ़ाती तरक़्क़ी। शिंदे न सिर्फ़ पढ़ने में बल्कि दिमाग़ी तौर पर भी लोकेश से कई गुना पीछे था, लेकिन जिस तरह मोहन के रास्ते आसानी से खुलते गए उस बात ने भी लोकेश के दिल ओ दिमाग़ पर गहरा असर डाला. ......अब डाला तो डाला...हक़ीक़त ये कि मोहन के पास आज की तारीख में वो सब था जिसकी एक नौजवान अपनी डिग्री हासिल करने के बाद उम्मीद कर सकता है। और लोकेश की हालत जुए में हारे उस जुआरी की तरह थी जिस ने दांव भी

सही लगाया था, पत्ते भी उसके सही थे लेकिन दूसरी तरफ़ कोई ताक़तवर गुण्डा खेल रहा था जिसने इस की जीती हुई रक़म देने से इंकार कर दिया और ये कुछ नहीं कर पाया। एक अहसास-ए-कमतरी....एक झुंझलाहट...एक क्षुब्धता...और एक बढ़ा हुआ अजीब सा गुस्सा। ये सब लोकेश के दिल के किसी कोने में चुपचाप धुआं देते रहे। दिल से निकलता हुआ धुआं दिमाग तक पहुँचने में बड़ी देर लगती है। बड़ी देर लगती है समझ पाने में किये हमने जो किया वो आख़िर क्यों किया। दिल में दबी हर मोहब्बत, हर नफ़रत, हर गुस्सा, हर ज़ज़्बा कारगर होता है और दबे हुए सांप की तरह फन जरूर उठाता है। कभी न कभी, कहीं न कहीं।

कॉलोनी में इन लोगों की हमउम्र एक लड़की थी-शेरिल गोंसाल्विस। निहायत सांवली लेकिन निहायत दिलकश। घर में उसके मां थी और उसका स्टेप फ़ादर-याने उसकी मां का दूसरा पति। ये स्टेप फ़ादर अब हमेशा नशे में रहता था। मां उसकी बीमार हो चुकी थी। काम और कमाई का ज़िम्मा शेरिल पर था। बचपन से साथ खेले थे इसलिए शुरु आती दौर में शेरिल का इन तीनों के साथ ठीक ठाक दोस्ताना था लेकिन जब ज़रा उम्र हुई तो उसे पाँच फुट दस इंच का हट्टा कट्टा रोज़ाना मैंदान में कसरत करता हुआ हंसमुख दिलीप चौगुले ज़्यादा भाने लगा। वे अक्सर शामों में किसी लैंप पोस्ट के बग़ल में एक दूसरे से बतियाते देखे गए। हालाँकि इसके आगे बात बढ़ी नहीं और ये सिलसिला भी कुछ ही दिन चला क्योंकि शेरिल को ये अहसास हो गया था कि यहाँ रहक़र उसकी लाइफ़ बर्बाद हो जाएगी। मां बाप दोनों के लिये वह दुधारू गाय है और वे अपनी इन्सेक्युरिटी के कारण उसे नौकरी के सिवाय और कुछ करने नहीं देंगे-शादी तो बिलकुल नहीं! पैसा कमा कर देना एक बात है लेकिन उसके बाद किसी को अपनी ज़िन्दगी अपनी तरह और स्वतंत्र होकर जीने का भी तो अधिकार है। इसलिए शेरिल ने तमाम कोशिशें करके दुबई में अपने लिए सेक्रेटरी की नौकरी तय कर ली। हालाँकि कमाई के लिए ये उसका मजबूरी का फ़ैसला था, दिल उसका अब भी दिलीप से दूर जाने का नहीं था।

-''अम जायेंगा...तो तुमको बी बुलायेंगा...दिल्लू...तुम आयेंगा न!?''

-''तुम जाएन्गा तो अम आयेंगा!''...दिलीप ने शेरिल की नक़ल उतारते चिढ़ाते हुए कहा, फिर बोला, ''अरे यार.....अपुन को कोई नौकरी देगा नहीं वहां. .....हाई स्कूल पास को!''..यह कहते समय दिलीप के मुंह में अचानक ऐसी कड़वाहट पैदा हुई जैसे मिठाई खाते खाते सूखी कड़वी मैथी का दाना चब जाये! लेकिन बात हंसकर कही गयी थी। दोनों हंस पड़े और हंसी ने सब कुछ ढांक लिया।

दोनों को एक दूसरे से निस्बत थी, दोस्ती थी, एक दूसरे का ख़्याल था ये दूसरी बात है कि उन्हें ख़ुद ये अहसास न हो कि इसे ही तो मोहब्बत की इब्तेदा कहते हैं! शेरिल को शायद दिलीप की हाज़िर जवाबी और हंसमुख पने के कारण और अपने मुक़द्दर से उम्मीद रही हो-कि ये अक्लमंद लड़का शायद ज़िन्दगी में 'कुछ तो' करेगा। लेकिन वक़्त के साथ दिलीप को ख़ुद अपने ऊपर से भरोसा उठने लगा था। उसे अपनी ज़िन्दगी में सवेरे की अब कोई गुंजाईश नज़र नहीं आती थी।

उधर लोकेश जोशी और इधर दिलीप चौगुले दोनों दोस्त अब बेकार थे और इनके पास ज़रुरत से ज़्यादा वक़्त था। ये लाइफ़ से बोर भी हो चुके थे इसलिए मैंदान में कसरत करने से भी इन्हें अब आलस्य आने लगा था और रास्तों में बनियान और हाफ पैंट पहने प्लास्टिक की टूटी कुर्सियां डाले बैठकर इधर उधर की बतियाने में मज़ा!

वहीं बग़ल में लोकल नेता जी का दफ्तर था जिनसे आते जाते दुआ सलाम हो जाती थी और एक वे ही थे जो कभी कभी टाइम पास के लिये घर से आते जाते इन दोनों के पास खड़े होकर अपनी राजनीतिक भड़ास निकाल लिया करते थे। शायद इसलिए कि ये 'सेफ' लोग थे जो इनकी कोई भी बात किसी और से नहीं कहेंगे। नेता जी इन लोगों से बातों बातों में अक्सर कहा करते थे... ''हिम्मत रख तेरा भी सब ठीक हो जायेगा...क़िस्मत मौक़ा ढूंढती है...मेरा देख, मैं दो इलेक्शन हारा पण लगाछ रहा..साहेब का भरोसा था....मैं साला फिर जीता तो देख चार बार से जीत रहा हूँ...सब क़िस्मत है और क़िस्मत मौक़ा ढूंढती है...''

वो मौक़ा दिलीप और लोकेश को तब मिला जब शकील भाई ने इन दोनों को अपने साथ शामिल करने की बात की।

शकील के बारे में जानता तो ठीक से कोई भी नहीं था लेकिन कानों कान ख़बर यही थी कि शकील का काम तो कंस्ट्रक्शन का है लेकिन धंधा स्मगलिंग का है। पैसा यहाँ से ले जाकर दुबई और मॉरीशस भिजवाना फिर नेताओं के लिये उसे वापस लाकर व्हाइट करके बिज़नेस में लगाना। धंधा बड़ा और फैला हुआ था। नाम के वास्ते कुर्ला में इनके लकड़ी के वखार थे और वासिन्द में कई इंडसट्रियल गाले।

नेता जी के दफ़्तर में जहाँ इन दोनों दोस्तों की दोपहरें अक्सर गुज़रती थीं, शकील भाई आते जाते थे। शकील ने भी इन दोनों को नेता जी के आस पास देखा ही था। दिलीप और लोकेश की दुआ सलाम थी। लेकिन क्योंकि शकील नेता जी का दोस्त था-हम प्याला, हम निवाला था-इसलिए इन लोगों की कोई कुरबत नहीं

थी। उस दिन शकील भाई अपनी एस.यू.वी. से उतरे तो बेतरह ख़ुश थे, लोकेश सामने दिख गया। उन्होंने पहले तो लोकेश के कंधे पर एक दोस्ताना धौल जमाया फिर उसके बग़ल में बाहें डाल कर बोले, ''और लुख्खे....!...ठीक ठाक...?!''

लोकेश ने मौक़ा पहचान लिया। बोला, ''क्या ठीक ठाक शकील भाई...अपुन का तो लाइफ़ ही नईं है साला...''

-''एक तू और एक तेरा जोड़ीदार....वो.....कौन है वो...!?''

-''दिलीप!....दलीप चौगुले....''

-''हाँ वोई....''

फिर कंधे पर से हाथ निकाल कर शकील भाई ने कहा, ''एक काम कर... .शाम को तुम दोनों मेरे उदर आता क्या...?....?.....ऐं...!?...काम देइछ डालता साला तुम दोनों को.....पकड़ ले साला लाइन तुम लोग अब....!....आयेंगा?''

-''आएगा न शकील भाई...कबी आऊं बोलो...कितना बजे?''

-''तू बोल''

-''अरे मेरा क्या शकील भाई, मेरे को गोली मारो.....तुम बोलो..''

-''गोली!?.....तुम गोली मारेंगा...!...हं हं हं हं ...पिस्टल चलाया कभी साला!...कभी चलाना पड़ गया तो गोली आगे जायेंगा पीछू से तुम छूट जायेंगा... .....हं हं हं हं.....!!''

-''हं हं हं....''

शकील भाई ने आस पास के लोगों पर नज़र डाली। वो सब भी शकील की खुशामद में हंस रहे थे। शकील फिर संजीदा होकर अपनी गाड़ी में बैठते हुए बोला, ''ठीक है...आजा साला...छह तक आजा''

उस दिन शाम को छह बजे के बाद से सितारे एक बार फिर बदल गए। दोनों फ़िज़ूल और बेकार लोगों को जीने की कोई वजह मिल गयी। शकील ने मिलते ही पहले दिन दोनों को शगुन के तौर पर पांच पांच हज़ार रूपए दिए-उड़ाने के लिए! तो वैसे ही बराबर उड़ाए गए। बरसों के अरमान पूरे किये गए।

दिलीप चौगुले ने मां के लिए साड़ी ख़रीदी और बाप के लिए चश्मे का फ्रेम। लोकेश ने सिर्फ़ मां के लिए साड़ी खरीदी। दोनों के घरों में तहक़ीक़ात की वजह थी कि आख़िर पैसे आए कहाँ से! मन में उठे शक को ज़बान दी लोकेश के पिता ने, ''भाई वाह! बड़े आये साड़ी लाने वाले! अरे जिसके हाथ ही न हों वो क्या बुनाई करेगा? कहीं से चोरी चपाटी करके लाया होगा...किसी को लूटके.....ऐसे बेकार लड़के और करते भी क्या हैं!....रोज़ तो पढ़ता हूँ अख़बार में!''

लोकेश ने सुना, वो बाहर आया। मां से बोला, ‘‘इनका डोनेशन वाला पंद्रह हज़ार भी वापस कर दूंगा मैं, मां....इनसे कह दो....!’’ फिर क़मीज़ के बटन लगाता घर से बाहर हो गया। बाप ने सर पीट लिया। मां नईं साड़ी मुंह में दबा कर रोने लगी।

सिलसिले यों हुए कि इससे पैसे लाना, उसे ‘ठीक करना’ यही काम हो गया। एक दिन शकील के कुर्ला वखार वाले मैंनेजर ने तमंचा देकर दिलीप से कहा, ‘‘येले. ...बंड्या के पास जा। पचास लाख का माल है लेकर सीधा इधाराछ आजा। मैं वेट करता हे .....और सुन....कुछ ऊपर नीचे हुआ तो गोली चला देना साला...क्या!?. ...खल्लास...! समझा!?....जा!’’

दिलीप ने पिस्तौल की तरफ़ फिर इस मैंनेजर की तरफ़ देखा और चेहरे पर पसीना अपनी आस्तीन फिरा कर साफ़ किया। बोला, ‘‘लेकिन भाई....’’

-‘‘क्या?’’

-‘‘मैं कभी चलाया नहीं पिस्तोल...’’

-‘‘अबे तो अब चला....! चला......!’’

दिलीप ने घोडा दबा दिया।

-‘‘हाँ!....ऐसा....जा, अब जा!’’

दिलीप ने कई बार कहा कि शकील भाई आजाएँ तो उनसे पूंछ लूँ। पर वो मैंनेजर शकील का ख़ास था और अगर पानी में रहना है तो मगर से बैर क्या करना!

दिलीप निकला तो लोकेश मिल गया। दोनों साथ हो लिए। मारुती वैन थाना बेलापुर रोड होती हुई नईं मुंबई की तरफ़ चल दी। दिलीप चौगुले चुपचाप था।

-‘‘क्या रे इतना चुपचाप काएको....?’’

-‘‘यार ये क्या कर रयेले हम लोग!?’’

-‘‘सर्वाइवल बेटे सर्वाइवल......! ज़िंदा रहने की कोशिश...’’

-‘‘जीना साला अपनी क़िस्मत मेई नईं क्या?’’

-‘‘ये हिंदुस्तान है बेटे...यहाँ जीना है तो जात-घर देख के पैदा होने का।’’

-‘‘ऐसा कुछ नईं ऐं........मेहनत कर के भी लोग जीते हैं....’’

-‘‘कितने?....ऐं...कितने?’’

थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद दिलीप ने कहा, ‘‘अच्छा सुन.....पचास लाख ले के साला अपुन भाग जाएँ तो?...अपुन दोनों जायेगा साला....मैं गैराज डालेगा,तू स्पेयर पार्ट्स का दूकान डाल देना। नए सिरे से जिंदगी शुरू करेगा......ये ख़ून ख़राबा गुंडागर्दी कौन करेगा यार।!’’

-''और वो पचास लाख!...वो भी तो खून खराबा, गुंडागर्दी से ही आने वाला है न! ....और एक बार तेरा नाम पुलिस में आ गया तो कोई इज्जत से जीने देगा क्या.....?!.....किदर भी ढूंढ निकालेगा''

ये लोग जब जगह पर पहुंचे तो दुकान बाहर से बंद थी। पीछे के दरवाज़े से दाख़िल हो कर जब लोकेश और दिलीप अंदर पहुंचे तब वहां बंड्या अकेला था। बोला, ''इधर आ.....आजा...शकील भाई ने भेजा है न!''

-''हाँ।''

-''तो ले जा अपना पचास लाख....'' और बंड्या ने एक इतने ज़ोर का थप्पड़ लोकेश के मुंह पर मारा कि लोकेश लटपटा कर गिर पड़ा। दिलीप के हाथ पैर लड़खड़ा गए लेकिन उसने पिस्तौर सामने कर दी। ''ए बंड्या.....पूर देगा साले तुझको...इधाराछ........सीधी तरह माल दे दे।''

-''पिस्तौल?...पिस्तौल दिखाता है!.......साले तेरे बाप ने भी कभी रिवाल्वर चालायला है?....'' और बंड्या ने दिलीप का रिवाल्वर वाला हाथ कुछ ऐसे पकड़ा कि तमंचे का मुंह सीधे लोकेश के सामने था।

-''बोल...साले को मार दूँ....?...तेरा दोस्त है न!''

-''देख बंड्या.......हमारा तेरे से कोई झगड़ा नईं...''

-''पैसा भी तो तेरा नईं साले.......फिर तू मेरा दुश्मन बनकर क्यों आया।?''

लोकेश ने मौके का फ़ायदा उठाकर सामने दौड़ कर पिस्तौल पकड़नी चाही। बंड्या घुटा खिलाड़ी था। उसने दिलीप की ऊँगली पर उंगली रखकर गोली चलादी। लोकेश वहीं लुढ़क गया।

बंड्या ने दो भद्दी गालियां दीं और कहा, ''जा...बोल देना शकील से.....उसके बाप का नहीं है पैसा...मेरा है मेरा......जज्जा।!''

बंड्या अपनी गद्दीपर आराम से पाल्थी मारके बैठ गया। दिलीप पहले तो हतप्रभ खड़ा रह गया। ऐसा हादिसा पहली बार गुज़रा था। फिर होश आते ही उसने लोकेश को उठाकर गाड़ी में डाला और अस्पताल ढूंढने लगा। चेम्बूर तक पहुंचते पहुंचते कोई पांच मील के सफ़र के बाद इससे पहले कि गाड़ी अस्पताल की तरफ़ मुड़ती आर. टी. ओ. वालों ने उसे पी.यू.सी. पेपर्स चेक करने के लिए रोका।... बस!..गाड़ी के अंदर खून देखकर पुलिस बुलाई गयी।

लोकेश बहते खून और बेहोशी की हालत में अस्पताल भेज दिया गया और दिलीप गिरफ़्तार कर लिया गया। तहक़ीक़ात में पता चला कि जो मारुती वैन शकील के मैंनेजर ने दी थी वो भी चोरी की थी। फ़ॉरेंसिक रिपोर्ट के मुताबिक

पिस्तौल पर दिलीप की उँगलियों के निशान निकले। लोकेश बेहोशी की हालत में ही भगवान् को प्यारा हो गया और दिलीप चौगुले पर गाड़ी चुराने और खून करने का मुक़दमा चलने लगा।

शकील भाई आये। बहुत शर्मिंदा हुए। बोले उनके मैंनेजर को बंड्या के बारे में ज़्यादा मालूम नहीं था। वो समझा था की कोई छोटा मोटा दुकानदार है, इसलिए ग़लती हो गयी। बोले ऐसा तो इस धंधे में होता ही रहता है ज़मानत देने लगे तो दिलीप ने मना कर दिया। बोला, ''शकील भाई बहाराछ रह कर ऐसा हो गया.... अब इधाराछ ठीक हूँ।!''

-''पुलिस बहुत खड़ूस है......बहुत मारेंगी....तंग करेंगी....''

-''बाहर वालों ने कम तंग किया शकील भाई?''

मां ने लड़के की बातों का यक़ीन कर लिया। बाप लड़के की बजाये ख़ुद को दोष देता रहा-अपनी क़िस्मत, अपने हालात और अपनी ज़ात को कोसता रहा। मोहन शिंदे चूंकि नोकरी में था और अब डबल प्रमोशन पा कर बड़ा अफसर था इसलिए अपने रुतबे को किसी भी बट्टे से बचाने के लिए न तो वह लोकेश के जनाज़े पर गया न दिलीप को देखने हवालात।

इस बीच शेरिल भी अपनी मां को देखने दुबई से छुट्टियों में घर आयी, तब उसने भी दिलीप से मिलना तो छोड़िये उसके बारे में भी सुनने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

दिलीप पर मुक़दमा तीन साल चला। उसके बाद 'समाज को ऐसे दरिंदों से बचाने और औरों को इबरत हासिल करवाने' के लिए दिलीप चौगुले को उम्र कैद दे दी गयी। अख़बारों और टी.वी. में बखाना गया कि 'एक स्कूल ड्राप आउट जो शुरू से ही आवारा और बदमाश था उसने एक गाड़ी चुराई, अपने ही ख़ास दोस्त को ''कोल्ड ब्लड'' में मार डाला, पचास लाख की चोरी का प्लान गढ़ा और जब उसके प्लान एक के बाद एक फ़ेल होने लगे तो फ़रार होने लगा तभी पुलिस वहां पहुँच गयी और उसे धर पकड़ा।'

तो ये कहानी है दिलीप चौगुले की वहां तक जहाँ तक कि अख़बारों में सुर्ख़ी छपी कि, ''दिलीप चौगुले को मारुती वैन चुराने और कत्ल के इलज़ाम में उम्र कैद'' और जिसका जिक्र शुरुआत में किया गया।

बहरहाल!

सज़ा सुनाये जाते वक़्त तक दिलीप ख़ामोश हो चुका था। एकदम सुन्न! न उसे कुछ अच्छा लगता था न बुरा। न वो किसी से कुछ बोलता था न चाहता था।

न हँसता था न रोता था। ग़र्ज़े कि उसकी ज़िन्दगी से ज़िन्दगी निकल चुकी थी और उसमें जीने की अब कोई तमन्ना बाक़ी नहीं रही थी।

उम्र क़ैद की सज़ा हुए पांच छह दिन हुए थे। जेल से क़ैदियों को मशक़्क़त के लिए पत्थर तोड़ने कुछ ही दूर पर ले जाया जा रहा था। दिलीप भी उनमें शामिल था। सज़ा सुनाये जाने के बाद ये बाहर जाने का पहला दिन था। मौसम साफ़ था। जेठ महीने के शुरूआती दिन थे। जहाँ सब कैदी उतरे धूप बेतरह थी। पसीना और धूल मिलकर किचकिचा रहे थे। फ़ज़ा शांत हो गयी थी। सब कुछ ख़ामोश था कि अचानंक बड़े ज़ोर से एक चीख़ की आवाज़ आयी। सब उस तरफ़ भागे। तमाम हुजूम जमा हो गया। पुलिस वाले ने भीड़ के अंदर झाँक कर देखा तो दिलीप चौगुले ने एक बड़ी सी चट्टान लेकर एक दूसरे क़ैदी के सर पर दे मारा था जो वहीं मर गया था।

दिलीप को चेनों में बाँध दिया गया।

उस पर फिर मुक़दमा चलाया गया। पागल वह नहीं था इसका प्रमाण मौजूद था। पूछा गया, ''तुमने ऐसा क्यों किया?''

दिलीप ने कोई जवाब नहीं दिया। वह एक अजीब सी चुप्पी साधे सर ऊंचा किए खड़ा रहा। फ़ैसला हुआ- 'ये ख़तरनाक मुजरिम है और इसे सज़ा ए मौत मिलनी चाहिए।'

26 नवम्बर की सुबह दिलीप चौगुले को फांसी पर लटका दिया गया। उसी शाम मोहन शिंदे के घर लड़का पैदा हुआ जिसका नाम उसकी सास ने रखा- 'कालजयी।''

सड़क

मिश्रीलाल कुशवाहा ने भाजी तरकारी का ठेला लगाने से लेकर मंगौड़ी बेचने और फिर उसके बाद दूध की दुकान लगाने तक के कई काम किये। दूध की दुकान थोड़ी बहुत चलने लगी तो उन्होने उसी को स्थाई रूप से चलाना ठीक समझा। थोड़े दिनों बाद जब ज़रा काम बढ़ा तो उसमें उन्होने खोया रखना शुरू कर दिया और फिर बाद में रबड़ी भी घोंट कर बेचने लगे। वे गाँधी जी से बहुत प्रभावित थे और उन्होने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में जमकर हिस्सा लिया था। आन्दोलन में उनके तमाम साथी जेल तक हो आए थे। ये न जाने कैसे बच गए थे और इस बात का उन्हें बहुत मलाल था। लड़का मिश्रीलाल के एक था-मुसद्दीलाल। मुसद्दीलाल के नाम से 'कुशवाहा' उन्होने जान बूझकर उड़वा दिया था। स्कूल वालों ने नाम लिखते समय पूछा 'सरनेम?' तो मिश्रीलाल ने कहा 'नाम से काम रखो। भारत अब आज़ाद देश है, ज़ात पात का भेद मिट चुका है। सब एक हैं इसलिए सिर्फ़ नाम से काम रखो' और इस प्रकार मुसद्दीलाल कुशवाहा सिर्फ़ मुसद्दीलाल रह गए।

मुसद्दी पढ़ने लिखने में जितने कमज़ोर थे दूध औंटने और रबड़ी घोंटने में उतने ही मुस्तैद। दूकान पर बैठना अपनी शान समझते थे और बाप के काम में हाथ बटाना अपना फ़र्ज़। न्याय प्रियता और देश प्रेम के जज़्बे इन्हें विरासत में मिले थे और अन्याय का अहिंसात्मक तरह से विरोध करना इन्होने गाँधी जी की बातें सुन सुन कर आत्मसात कर लिया था।

जब मुसद्दी इंटरमीडिएट में तीसरी बार फ़ेल हुए तो मिश्रीलाल की समझ में आ गया कि लड़के के लक्षण आगे पढ़ने के नहीं हैं। वैसे उस ज़माने तक आज़ादी आए बीस पच्चीस साल हो चुके थे और मिश्रीलाल की समझमें आ चुका था कि देश किस दिशा में जा रहा है। वे समझ चुके थे कि पढ़ने लिखने की बजाये मुसद्दी का किसी हुनर में पारंगत होना ही ठीक है। मुसद्दी दुकानदारी में तो माहिर थे ही। मिश्रीलाल ने धीरे धीरे दुकानकी सारी ज़िम्मेदारियां मुसद्दी की

ओर कर दीं। मुसद्दी ने दूकान में पहले रसगुल्ले और फिर बाद में सुबह सुबह जलेबियाँ और फिर दोपहर में समोसे भी बनवाने शुरू कर दिए। मिश्रीलाल को लड़के पर फ़ख़्र होने लगा। लड़का व्यवहार कुशल था इसलिए आस पास वालों से भी उसके ताल्लुक़ात अच्छे बनते गए और ग्राहकी भी बढ़ती गयी। लेकिन वहीं सामान बनाना वहीं सजाना वहीं बेचना उस पर तीन चार नौकर भी वहीं-इसलिए अब ये दुकान छोटी पड़ने लगी थी। बग़ल वालों से पूछा गया कि 'बेचते हो क्या?' लेकिन दुकान बेचने वाला कोई न मिला तो मुसद्दी ने सोचा इस दुकान को बढ़ाने की बजाये क्यों न एक बड़ी दुकान ऐसी बस्ती में ले ली जाये जहाँ बड़े बड़े पैसे वाले लोग ख़रीदारी के लिए आते हों। वहां सामान महंगा भी बिकेगा और आमदनी भी अच्छी होगी। मानिक चौक शहर का मुख्य मार्किट था। वहां से सड़क जहाँ गंज की तरफ़ मुड़ती थी वहीं ऐन कोने पर एक बड़ी सी दुकान तय की गयी। दुकान सड़क पर चार सीढियां चढ़ कर थी। बड़ा सा नक्काशी वाला मेहराब दार पुराने तरीक़े का दरवाज़ा फिर एक बड़ी हॉल नुमा दल्लान सी, पीछे की तरफ़ भट्टी लगाने और माल बनाने की भी जगह थी। दुकान महंगी थी लेकिन मुसद्दी को पसंद आ गयी और इन्होने उसे पक्का कर लिया। अच्छा दिन देखकर पिता मिश्रीलाल के हाथों नारियल फुड़वाया गया। पंडित जी से सत्यनारायण भगवान् की पूजा करवाई गयी और दुकान पर ''मुसद्दीलाल मिठाई वाला'' बोर्ड लगाकर शुभारम्भ किया गया। ग्राहक़ तो बंधे थे ही, दुकान चलने में कोई परेशानी नहीं हुई। हाँ, थोड़ी सी परेशानी ये थी कि जिस सड़क पर ये दुकान थी उसकी हालत ख़स्ताहाल थी। ये मानिक चौक से गंज की ओर जाने वाली सड़क रही तो मुश्किल से दो सौ गज़ की ही होगी लेकिन उसे तय करने में लोगों को कुछ नहीं तो बीस मिनिट से कम नहीं लगते थे। इसलिए नहीं कि वहां दुकानें ज़्यादा थीं और ख़रीदारों की भीड़ होती थी। बल्के इसलिए कि सड़क गड्ढों और ख़ुदाई के कारण इस अवस्था में थी कि उसे सड़क कहा ही नहीं जा सकता था..लगता यों थाकि जैसे किसी ने समुद्र के नीचे की ज़मीन का मॉडल बनाया हो। वहां से साइकिल हाथ में लेकर भी नहीं गुज़रा जा सकता था। और ये जब था जब के सड़क पर की दुकानें मेन मार्केट थीं और सड़क के आस पास बड़े बड़े लोगों के मकान थे। शहर के मशहूर वकील कामता प्रसाद का मकान भी उसी सड़क पर था। वे कई बार इस बारे में बड़े बड़े अफ़सरों से अनौपचारिक सभाओं और जलसों में भी चर्चा कर चुके थे। दुकान में आने वाले ग्राहक़ों की तकलीफ़ें देखते हुए मुसद्दीलाल ने कई बार नगर सेवकों से भी विनती की थी। ब्रह्मदत्त जी समाज सुधारक और

सामाजिक कार्यकर्ता होने का दम भरते थे, उन्होने भी कई बार इस बारे में कलक्टर तक को अवगत करवाया। हुआ हावाया कुछ नहीं। जो दशा दस साल से चली आ रही थी उसी में अपनी अपनी तरह सब गुज़र कर रहे थे। हाँ, ये नहीं कि सड़क के बारे में नगर पालिका कुछ करती ही नहो! हर साल नए सिरे से मरम्मत के टेंडर मंगवाए जाते, ठेके दिए जाते। फिर बारिश आ जाती और काम रोक दिया जाता। उसके बाद पता नहीं क्या होता कि अख़बारों में फिर से टेंडर निकलते! क़रीब क़रीब हर डेढ़-दो साल में कलक्टर तब्दील हो जाता। शिकायतों का सिलसिला नए सिरे से फिर शुरू किया जाता लेकिन अमल तक पहुँचने से पहले नए 'साहेब' आ जाते। हाँ! इस बार महेश आनंद दो साल से जमे हुए थे। गोरे चिट्टे, हंस-मुख, दिल फेंक और मज़ाहिया नौजवान। इस डी.एम. के नाम से कमिश्नर, तहसीलदार, नायब, नगर पालिका, अख़बार वाले, वकील ग़रज़े के सभी दम भरते थे। शहर में मुसद्दीलाल की दुकान मिठाई के लिए मशहूर थी और जैसे और लोग इस दुकान की मिठाई को बेहतरीन मान कर ख़रीदते थे शहर के अफ़सरान भी ख़रीदते थे। महेश आनंद की बीवी जब भी सामान लेने ख़ुद शहर की तरफ़ जातीं मुसद्दीलाला की दुकान से कुछ न कुछ ज़रूर लातीं। उसी सिलसिले में एक बार बीवी के साथ जब महेश आनंद भी मुसद्दी की दुकानपर आए तो अपनी ख़ातिर तवाज़ा और मुसद्दी की मिठाई की तासीर देख कर ख़ुद भी फ़िदा हो गए। बोले- ''मुसद्दी,...भाई वाह!...मिठाई तो तमाम शहरों में खाई लेकिन तुम्हारा जवाब नहीं। तुम तो मथुरा तक को मात कर रहे हो!''

-''आपका बड़प्पन है हुज़ूर!''

-''कभी कभी कोई नयी मिठाई बनाओ तो जरूर भिजवा दिया करो। पैसे हम देंगे...हम मुफ्त में किसी से कुछ नहीं लेते...हाँ!''

-''अरे पैसे की बात नहीं हुज़ूर...वादा रहा ताज़ा माल आपको मिल जाया करेगा।''

उसी सिलसिले से मुसद्दीलाल अक्सर अपनी मिठाई कलक्टर महेश आनंद के घर भिजवा दिया करते थे। मिठाई के पैसे न मुसद्दी ने कभी मांगे और न महेश आनंद ने कभी पूछे न दिए...इसी बहाने मुसद्दी महीने में एक आध बार 'साहेब' के बंगले पे अपनी हाज़री भी लगा आया करते थे।

महेश आनंद ने इस सड़क के बारे में काफ़ी 'इंटरेस्ट' दिखाया। नगर पालिका से कहकर काम शुरू करवाया। अब काम चल रहा था तो कोई कुछ बोल भी नहीं सकता था। लेकिन जब से काम शुरू हुआ था, तब से सड़क की हालत और बुरी

तरह ख़राब हो गयी थी। पहले जहाँ यही सड़क बीस मिनिट में तय होती थी अब आधे आधे घंटे ट्राफ़िक जाम रहता। कई लोगों ने तो इस रास्ते से आना-जाना ही छोड़ दिया। कामता प्रसाद की प्रैक्टिस पर असर पड़ने लगा। कुछ सब्जी और फल वालों ने तो वहां से अपने बांकड़े हटा लिए। ब्रह्मदत्त जी को कलक्टर ने अपने घर आने की खुली छूट दे रखी थी सो लोग उनसे शिकायत करते रहते और वे उन शिकायतों को रोज़ आनंद साहेब के पास पहुँचाते रहते। अग़ल-बग़ल के दुकानदार मुसद्दीलाल को अपना अगुआ समझते थे इसलिए उन्होने उनसे कहा कि आपका तो कलक्टर से मिलना-जुलना है आप ही क्यों नहीं कुछ ज़िक्र करते। मुसद्दीलाल ख़ुद परेशान थे। उनकी मिठाई बिक्री में फ़र्क़ पड़ने लगा था। बहुत सोचा के कहाँ एक हलवाई और कहाँ कलक्टर साहेब! अरे, उनका बड़प्पन है कि मोहब्बत से मिल लेते हें या मिठाई क़ुबूल कर लेते हें। दो एक महीने तो वो टालते रहे लेकिन फिर मामला पगड़ी पे आ गया। लोगों ने कहना शुरू किया कि मुसद्दी बातें करते हें इनका आनंद साहेब से कोई मेल-जोल नहीं है, ये केवल अपनी मिठाई चपरासी को पहुंचा कर आ जाते हें। इज़्ज़त पे आन पड़ी तो एक शनिवार की शाम को मुसद्दीलाल ताज़े छेने की मिठाई लिए बंगले पर पहुँच गए। आधे घंटे के इंतज़ार के बाद आनंद साहेब मिले तो कहीं जा रहे थे। ड्राईवर दरवाज़ा खोले खड़ा था। पत्नि पहले तो बार बार अपना पल्लू ठीक करती रहीं फिर गाड़ी में जाकर बैठ गयीं। मुसद्दीने देखा कि अगर सड़क का ज़िक्र नहीं किया तो आना बेकार हो जायेगा। बोले-''हुजूर!...आज कल ग्राहकी कम हो रही है।!''

-''अरे...क्यों..?....मिठाई तो तुम्हारी अच्छी है!''

-''उस सड़क से हुजूर लोगों ने आना-जाना कम कर दिया है।''

-''क्यों?''

-''उसकी हालत पहले से भी ज़्यादा ख़स्ता हो गयी है।''

कलक्टर साहेब गाड़ी में बैठने लगे। मुसद्दी दरवाज़े के कांच के पास जाकर खड़े हो गए। बोले- ''अगर हुज़ूर एक बार मुआयना कर लेते तो शायद ठेकदारों पर कुछ वज़न पड़ता...।'' बात पूरी भी न हो पाई थी की एक गाड़ी हॉर्न बजाती हुई बंगले के अन्दर घुसी। आनंद साहेब ने उधर देखा। दूसरी गाड़ी से सड़क के ठेकेदार को दोस्ताना अंदाज में उतरते देख कर मुसद्दी इधर-उधर ताकने लगे। आनंद साहेब गाड़ी से उतर गए। उनकी पत्नि ''आप लोग बैठिये, मैं चाय बनवाती हूँ'' कहती हुई अन्दर चली गयीं। आनंद और ठेकेदार दोनों हाथ मिलाते ऐसे अन्दर चले गए जैसे मुसद्दी वहां हों ही नहीं। थोड़ी देर तो वे खड़े रहे। फिर

चौकीदार सवाल करने लगा तो वापस आ गए। उस रात मुसद्दी को नींद नहीं आई। पिछले दो साल से क़रीब करीब हर महीने चार-पाँच सौ की मिठाई उनकी दुकान से कलक्टर के यहाँ जाती थी। यानी जिसने उनकी इतनी मिठाई खायी उसी ने उनकी ये औक़ात बताई कि उनके लिए दो लफ्ज़ का समय नहीं! पैसे के साथ साथ इज़्ज़त पे भी चोट पड़ी थी। दुकानदारों को तो ख़ैर उन्होने समझा दिया के वे कलक्टर साहेब से बोल आए हें कि वे सड़क का मुआयना करें। लेकिन अपने दिल मैं ये लगी थी की इस मुआयने से होगा क्या! जिस पर दबाव डालना था वो तो उनके घर का आदमी बना बैठा है!

होली के दौरान शहर के तमाम बड़े बड़े दुकानदारों, अख़बार वालों, नामी लोगों, अफ़सरों वगैरह का एक मिलन समारोह क़िले के मैंदान में हर साल होता था। इस साल भी होना तय था। दिन भर होली खेली जाएगी शाम को मिलन समारोह। सदारत कलक्टर आनंद को करनी थी।

एक दिन पहले, जिस दिन होली जलनी थी उस दिन, नौजवानों में तमाम जोश रहा। इधर उधर से लकड़ी लाई गयी, तमाम हरे हरे पेड़ काटे गए, किसी की खिड़की उखाड़ी गयी, किसी के दरवाज़े पर ज़ोर मारा गया। गली गली में नारे गूंजते रहे- ''होली का भडुआ दिवाली का चोर!'' इसी आपाधापी में गंज की एक पुरानी हवेली से एक लड़के ने खिड़की की चौखट उखाड़ ली और कोई देख न ले इस डरसे भागा। भागा तो उसी ऊबड़ खाबड़ सड़क से होता हुआ। जल्दी जल्दी में एक साइकिल वाले से टकराया और उछल कर धड़ाम से गिर पड़ा। चौखट एक किनारे, साइकिल के ऊपर साइकिल वाला और लड़का गड्ढे में। इस तरह के वाक़्यात होते रहते थे इसलिए किसी ने कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया लेकिन लड़का जब दस मिनिट तक उठा नहीं तो कुछ कुछ भीड़ जमा होने लगी। ब्रह्मदत्त जी भी उस समय बाज़ार में थे। उन्होने तो ख़ैर आवाज़ सुनी, अपनी ख़रीदारी की और चले गए। साइकिल वाला गाली देता हुआ जा चुका था। लड़के को, बहरहाल, जब निकाला गया तो वो बेहोश था। उसे अस्पताल पहुँचाया गया। नौजवानों का जोश ठंडा पड़ गया। आस पास के दुकानदारों ने मुसद्दी को तमाम सुनाया कि ''आप डी.एम.साहेब से अपनी पहचान बताते हें और इतना भी नहीं कह सकते कि वे इस सड़क का कुछ करें! आप न करें, अब हम ही कुछ करेंगे। आख़िर आप बड़े दूकानदार हें, धंधे में ऊँच नीच बर्दाश्त कर लेंगे। औरों का क्या होगा?!'' लड़के के चोट लगने और बेहोश हो जाने से मुसद्दी को पहले ही काफ़ी बुरा लगा था उस पर ये ताने! वे एकदम चुप हो गए।

दूसरे दिन होली खेली गयी। शाम को समारोह में जाने से पहले मुसद्दी अपने आस पास के दो चार दुकानदारों से मिलने गए। कुछ सोचा विचारी सी हुई फिर समारोह में पहुंचे। वहां मज़ाहिया कविताओं का दौर हुआ। कुछ नाच गाने हुए। अख़बार वालों और समाज के ठेकेदारों ने आनंद साहेब के गुण गाए। कांट्रेक्टर ने अपनी तरफ़ से शहर के विकास के लिए कुछ चंदे का ऐलान किया। वगै़रह वगै़रह. ..मुसद्दी वहां से उठे और बीच में ही चले आए।

दुसरे दिन पुलिस में ख़बर पहुंची कि गंज से मानिक चौक वाली सड़क पर कोई भी सरकारी गाड़ी नहीं जाने दी जा रही है। पुलिस ने ख़बर कलक्टर तक पहुंचा डी। पता लगा आन्दोलनकारियों का अगुआ मुसद्दीलाल है। कोशिश की गयी कि मुसद्दी को बुलाकर बहला लिया जाये। लेकिन जब मुसद्दी मिले ही नहीं तो सोचा गया कि दुकानदार क्या कर लेंगे!? अपना धंधा करेंगे कि रास्ता रोकेंगे!?...दो चार दिन में सब ठीक हो जायेगा।

लेकिन ठीक चौथे दिन मामला गड़बड़ा गया। हुआ क्या कि कोतवाली का एक आदमी पुलिस की मोटर साइकिल पर सवार किसी काम से गंज जाने के लिए इस सड़क से गुज़रा। जहाँ लोगों ने सरकारी मोटर साइकिल देखी, पहले तो लपके रोकने के लिए फिर पुलिस की होने के नाते ज़रा ढीले पड़ गए। कोतवाली का सवार धड़धडाता हुआ आया और ट्राफिक जैम में खड़ा हो गया। फटफटिया फटफटा रही थी। रोकने कोई आया नहीं। मुसद्दी गद्दी से उतरे। उन्होने आस पास आवाज़ लगाई। कुछ ने व्यस्त होने का बहाना किया और कुछ आए नहीं। ट्राफ़िक ज़रा बढ़ने को हुआ की मुसद्दी ने मोटर साइकिल के हैंडल पर हाथ रख दिया। सवार भी ज़बरदस्त शातिर था। बोला, ''तुम जानते हो क्या कर रहे हो? ड्यूटी के समय पुलिस की गाड़ी रोकोगे तो सज़ा हो जाएगी''

आस पास लोग खड़े होने लगे। मुसद्दी चुप लेकिन हैंडल थामे रहे। गाड़ी वाला ज़रा चलने को हुआ तो वे पहिये के सामने आकर खड़े हो गए।

-''मैंने तुमसे कहा तुम्हें इस जुर्म की सज़ा का अंदाज़ा नहीं है।''

अब तक जो आगे पीछे गाड़ियों में रुके खड़े थे वे भी उतर आए। ख़ासी भीड़ लग गयी। दो चार दुकानदार भी उतरकर आ गए। मुसद्दी ने देखा अब भीड़ बढ़ गयी है। बात का जवाब दिया जा सकता है। बोले, ''देख भैय्ये! तू डराने धमकाने की बातें तो कर मत यहाँ....अपनी ये सज़ा और क़ानून वाली! क्योंकि एक तो तू पुलिस वाला नईं है और है तो तेरी वर्दी किदर है?...और तू ड्यूटी पे है क्या?... दुसरे, सरकारी गाड़ी यहाँ से कोई पास होने नईं दी जाएगी। वो चाहे पुलिस की हो

चाहे मिनिस्टर की। और ये ख़बर हमने तुम्हारे ज़िलाधीश को करवा दी है। तो अब तो भैय्ये गाड़ी पीछे को घुमाओ और चलते बनो।''

-''देखो मैं पुलिस का आदमी हूँ और ड्यूटी पे हूँ।''

-''तो फ़ौरन पैदल चले जाओ। जल्दी पहुंचोगे''

आस पास वाले हंसने लगे। एक ने कहा ''क्यों भइया, साहेब के लिए भाजी तरकारी ख़रीदने की ड्यूटी पे हो क्या!'' कर्मचारी खिसिया गया। उसने गाड़ी मोड़ ली। वापस जाते जाते बोला- ''अब नतीजा तुम भुगतो।''

कर्मचारी चला गया तो भीड़ छटने लगी। आस पास के और दुकानदार भी उतर उतर कर आने लगे। मुसद्दी की दाद देने लगे कि हिम्मत देखो पुलिस की गाड़ी रोक दी और वापस भी भेज दी। हालाँकि पुलिस की गाड़ी जाने के बाद मुसद्दी के माथे पर पसीना झलक आया था कि कहीं सचमुच सज़ा वाली बात ठीक ही न हो वरना धंधे का क्या होगा, बनी बनाई इज़्ज़त मिटटी में मिल जाएगी। दोपहर तक धुकपुकी लगी रही। क़रीब पांच बजे एक चपरासी मुसद्दी के पास ये कहता हुआ आया की कलक्टर साहेब ने बुलवाया है।

-''क्यों?''

-''सुबह किसी पुलिस की मोटर साइकिल को तुम लोगों ने रोका था। उसी सिलसिले में। जिसको तुम लोगों ने रोका था वो असल में साहेब का ख़ास हवलदार /चपरासी था। साहेब ने कहा है सड़क का मामला बात-चीत से हल कर लिया जायेगा।''

मुसद्दी की जान में जान आई। आस पास के दुकानदार घिर आए। उन्हें मुसद्दी अब 'अपने' लगने लगे-यों के मुसद्दी जो करें जो कहें वो ही ठीक। मुसद्दी बोले- ''उसमें पुलिस की गाड़ी का कोई सवाल नहीं था। सवाल था कि यहाँ से कोई सरकारी गाड़ी गुज़रने नहीं दी जाएगी। बस....! फिर चाहे पुलिस की हो चाहे नगर पालिका की।''

-''ख़ैर, साहेब ने बुलवाया है।''

-''तो अभी तो आना मुश्किल है!''

जवाब सुन कर चपरासी का मुंह खुला का खुला रह गया। दुकानदारों के माथे ऊंचे हो गए। मुसद्दी ने सर झुका लिया। बोले- ''साहेब से कहना मेरा उनसे या सरकारी गाड़ी वालों से कोई ज़ाती मामला नहीं है। बात सड़क की है। सो मेरे अकेले के जाये से क्या होगा?!...साहेब यहीं आ जाएँ, सभी से बात कर लें।''

-''साहेब से कह दूं आप हो आईये?''...चपरासी ने आश्चर्य से पूछा।

-''अब और क्या किया जा सकता है।''

बूढ़ा चपरासी लोगों के गिरते मूल्यों के लिए 'डिसगस्त' में सर हिलाता हुआ चला गया।

वो चला गया तो और दुकानदारों को मुसद्दी ने डाट लगाई, ''डरते हो?!... पुलिस की गाड़ी देखी तो डर गए। अकेला मैं गाड़ी रोक सकता हूँ क्या?....सड़क मेरे चाचा की है क्या?.....अगर सब की है तो सबको मिलकर करना पड़ेगा न..!''

लोगों ने अपनी ग़लती महसूस की। कुछ शर्मिंदा भी हुए। बात फ़ौरन फैल गयी। कामता प्रसाद वकील जो कभी किसी से सर हिला कर बात नहीं करते थे उन्होने भी मुसद्दी को ख़ास तौर पर बधाई दी। मुसद्दी ने भी दुकान ज़रा जल्दी बंद की और उस रात वे इत्मीनान से चैन की नींद सोये।

चैन भंग हुआ दूसरे दिन, नोटिस के साथ। नोटिस में असामाजिक गतिविधियों के लिए उन्हें ख़बरदार किया गया था और आगाह किया गया था की यदि वे अब भी 'ऐसी वैसी' हरकतों से बाज़ नहीं आए तो उन पर सीधे वारंट इशू किया जायेगा और गिरफ़्तारी के साथ मुकदमा चलाया जायेगा। हलवाई की औकात, बनिए का पेशा, मुसद्दी घबरा गए। कामता प्रसाद से ही आस दिखाई दी। वकील साहेब ने कहा, ''घबराओ नहीं! मैंने भी मुक़दमे लड़ते लड़ते चाँद गंजी की है। मैं इसका जवाब दिए देता हूँ। छः महीने तो मामला यूँ ही लटका दूंगा। उसके बाद अगर वारंट आ भी गया तो स्टे आर्डर दिलवा दूंगा। कोर्ट में केस चलते चलते न जाने कितने कलक्टर बदल जायेंगे।''

आस पास के दुकानदारों में जहाँ एक तरफ़ सड़क न बनाने की साज़िश और कांट्रेक्टर से मिली भगत की भर्त्सना हुई वहीं मुसद्दी के प्रति सहानभूति और आस्था जताई गयी। हर जज़्बे को जैसे न तो लफ़्ज़ों में बयान किया जा सकता है न ही छुपाया जा सकता है वैसे ही बग़ैर किसी विवेचना के इन तीन चार दिनो में मुसद्दी इस इलाक़े के अगुआ हो कर उभरे।

जोश लेकिन पांच-छह दिनों में ही ठंडा पडने लगा। कुछ छोटे-मोटे दुकानदारों ने आदिम परम्परानुसार इस आन्दोलन से पीछे हटने का मन बना लिया।'' अरे आन्दोलन करें मुसद्दी!....मान लिया उन्हें लीडर...बस हो गया!...हम तो अपना धंधा करें! हमें झमेले से क्या लेना देना!''

फूट फैलने में कोई ख़ास कसर नहीं बची थी कि ख़बर आई कि गवर्नर साहेब शहर में एक कारख़ाने का शिलान्यास करने पधार रहे हें। जहाँ वो कारख़ाना बनना था वहां के लिए गुज़रना उसी ऊबड़-खाबड़ सड़क से पड़ता। अब आम जनता की

बात और है-भुगते कमबख़्त! लेकिन गवर्नर! उन्हें इस तरह की सड़क से कैसे ले जाया जा सकता था! सो कलक्टर साहेब ने सख़्त आदेश दिया की सड़क फ़ौरन बनाई जाये। नगर पालिका वाले रातों-रात मौक़े का जायज़ा लेने आये। ठेकेदार के कामगार आकर खड़े हो गए। और उसी तरह अपनी अपनी दुकानें छोड़कर आकर खड़े हो गए दुकानदार। काम शुरू ही न करने दें। पुलिस बुलाई गयी। लोगों को जेल में डाला गया। ब्रह्मदत्त जी लोगों को समझाने आए। लेकिन आन्दोलन और ज़ोर पकड़ता गया। आठ दस दिन इसी तरह निकल गए कलक्टर, बहरहाल, ख़ुद आए। पहले हुक्म दिया, फिर दोस्ताना बातें कीं फिर गिड़गिड़ाए। बोले, ''देखो.. चार पांच दिन ही बचे हें गवर्नर ऐसी हालत देखेंगे तो मेरी नौकरी का क्या होगा?'' लोगों ने पूछा कि ये ख़्याल पहले क्यों नहीं आया। कलक्टर साहेब कि नींदें उड गयीं। लोग थे कि काम आगे बढ़ने ही न देते थे।

बहरहाल! गवर्नर के दौरे का दिन भी आ गया। मजबूरी थी। सड़क तो वही थी। गुज़रना तो वहीं से था। पूरा क़ाफ़िला मानिक चौक से गुज़रा और जैसे ही उस सड़क के किनारे आया कि सारे दुकानदारों की भीड़ बीचों बीच खड़ी दिखाई दी। पुलिस ने तितर बितर करने की कोशिश की। कुछ नहीं हुआ। कलक्टर ने भीख मांगी कि इस वक़्त हट जाओ हम फौरन सड़क बनवा देंगे। लोग क्यों सुनते! लोग बोले हमें गवर्नर से मिलना है। अब बताइए, कहाँ लोग और कहाँ गवर्नर!

-''क्यों मिलना है?''

-''सड़क की बाबत बात करनी है।''

-''इतनी छोटी सी बात के लिए गवर्नर?!....कलक्टर से कहो।''

-''ये कलक्टर चोर है। ठेकेदारों से पैसा खाता है। ये क्या सुनेगा!''

-''क्या बेकार की बातें करते हो।''

-''तो ठीक है तुम लोग भी इस बेकार की सड़क से मत गुज़रो।''

-''तुम लोग दंगे पर उतर रहे हो....हम गोली चलवा देंगे।''

-''चलवा दो''

-''हट जाआ.....अओ...!''

-''..........''

-''अच्छा! क्या चाहते हो....सड़क न.....हम वादा करते हें सड़क हफ़्ते भरके अन्दर बन जाएगी।''

-''अब हम सड़क नहीं चाहते.....अब तो हम गवर्नर से मिल कर ही रहेंगे।''

इतनी देर हो गयी। बेचारे गवर्नर जी ऊब गए। पूछा क्या बात है।मिलने की

बात पर सिक्यूरिटी वालों ने अड़चनें लगाईं। लेकिन जब पंद्रह मिनिट तक न गाड़ी आगे चली न पीछे तो गवर्नर जी नाराज़ हो गए। सिक्यूरिटी भी ठंडी पड. गयी।

-''तुम लोग गवर्नर साहेब से मिलना चाहते हो न....तो सब तो जा नहीं सकते, तुम अपने किसी अगुवा को भेज दो...!''

मुसद्दी आगे बढ़ गए। बोले, ''चलो।''

गवर्नर ने उनकी पूरी बात सुनी। कलक्टर को बुला कर डाटा इधर उधर अपने सहयोगियों से इस सड़क की रिपोर्ट उन्हें देते रहने का आदेश दिया। मुसद्दी ने वापस जा कर लोगों को ये सब बताया। तब क़ाफ़िला वहां से निकल पाया।

अब आप कभी अगर वहां से गुज़रें तो पायेंगे की वो सड़क इतनी खुली और इतनी पुख़्ता बनी है कि वैसी चौड़ी सड़क उस शहर में तो क्या अच्छे अच्छे शहरों में नहीं है। हाँ! आनंद साहेब बेचारे जब तक असाम के किसी क़स्बे में किसी मामूली ओहदे पर पोस्टेड रहे इस सड़क को कोसते रहे। अपनी बीवी से अक्सर कहा करते थे, ''मुसद्दी जैसा मामूली और दब्बू आदमी ये सब करेगा, मुझे इसकी उम्मीद नहीं थी!''

चढ़ती उतरती नस

रघुवर प्रताप सिंह ज़मींदार थे। फैज़ाबाद ज़िले की बीकापुर तहसील में उनकी ज़मीनें थीं और उस गाँव में ही नहीं उसके आस पास तक उनकी तूती बोलती थी। सिंह साहेब के ख़ानदान के आलावा उस गाँव में चार पांच घर ठाकुरों के और दो घर पंडितों के थे। दो इसलिए के एक तो पंडित जी थे ही जो पीढ़ियों से इस गाँव में पुरोहिती कर रहे थे, दूसरा इसलिए हो गया कि उन्होने बेटी की शादी करके दामाद को दहेज़ में अपनी दो बीघा ज़मीन दे दी थी सो वो यहीं बस गया था। पंडित जी के लिए भी अच्छा, दामाद के लिए भी अच्छा और लड़की के लिए भी अच्छा। इस तरह पंडितों के दो घर थे। पुरोहिती लेकिन सिर्फ़ पंडित जी ही करते थे। दामाद को उन्होने इस ओर नहीं किया था। उनका छोटा लड़का बड़ा हो रहा था। पुरोहिती करनी है तो वो करेगा!....इनके अलावा के सब घर खंगार, लोहार, लोधी, धोबी, नाई और और तमाम और नीची ज़ात वालों के थे। कभी कभी त्यौहार या समारोह में अलबत्ता अपने नाई पने या धोबी पने की ज़रुरत पड़ जाये तो पड़ जाये वरना सारे की सारे थे काश्तकार-किसान। कुछ एक की अपनी ज़मीनें थीं बाक़ी सब ठाकुर साहेब के खेतों पर काम करते थे। गाँव की तक़रीबन आधी ज़मीनें रघुवर प्रताप सिंह की थीं। एक चौथाई समझ लीजिये की नीचों की और एक चौथाई दूसरे दो चार ठाकुरों की। इसलिए गाँव में क्या मजाल की परिंदा भी रघुवर प्रताप सिंह की मर्ज़ी के खिलाफ़ पर मार जाये!

आज़ादी जब आयी और जब सामाजिक उत्थान और जाति-पांति उन्मूलन की बातें उभरीं तो इस गाँव तक भी पहुंचीं और यहाँ भी नीचों ने सर उठाना शुरू किया। साठ का दशक आते आते रघुवर प्रताप सिंह बूढ़े हो चले थे उनके बेटे जमना प्रताप सिंह ने समय को समझा और सबसे शिष्टाचार बरतना ही ठीक समझा। ठकुराई तो चलेगी ही! ज़मींदारी तो है ही! पहले सालों को हंटर मार के गाली देते थे अब मुस्कुरा कर दे देंगे! अपना क्या जाता है...जूती रहेगी तो जूती ही न!. पँच और सरपंच तक

तो ठाकुर साहेब की मर्ज़ी से चुने जाते हैं...सो अब क्या नया हो जाने वाला है!

गाँव के मोहाने पर एक पुलिस चौकी भी थी। अंग्रेज़ों के ज़माने से चली आ रही थी। एक आध कांस्टेबल तीन-चार दिनों में वहाँ चक्कर लगा लेता था। किसानों से कुछ तरकारी वरकारी ले जाता था और ठाकुरों के यहाँ कलेवा कर जाता था। तीज त्यौहार ठाकुर साहेब के घर बख़्शीश के आलावा खाने पीने को मिलता था और साथ में सेर दो सेर देसी घी के लड्डू भी थमा दिए जाते थे। हवलदार ठाकुर साहेब का ग़ुलाम था। सन 70-75 के बाद इस चौकी को कोतवाली का दर्जा दे दिया गया तब से यहाँ एक सब इंस्पेक्टर की नियुक्ति हो गयी। होता हालाँकि वो भी हवलदार जैसा ही था-ठाकुर साहेब के अहसानों के तले दबा हुआ! काम तो ख़ैर कोतवाली में था ही क्या-और फ़ोन तब तक यहाँ पहुंचे नहीं थे तो वहाँ रहना जरूरी नहीं होता था। इत्तेलाह कोई शहर से आनी हो तो बसों ट्रकों वालों से भिजवा दी जाती थी। इसलिए सब इंस्पेक्टर का समय कोतवाली से ज़्यादा ठाकुर साहेब के घर पर बीतता था। सो पंचायत अपना काम कर रही थी, पुलिस अपना काम कर रही थी, मज़दूर अपना काम कर रहे थे और ठाकुर साहेब की ज़िन्दगी जैसी चल रही थी वैसी ही चल रही थी। बादशाहत बरक़रार थी!

जमना प्रताप के दो लड़के थे। एक दस के क़रीब और दूसरा छोटा कोई पांच साल का। जमना के एक चचाज़ाद भाई थे- चचाज़ाद याने रघुवर प्रताप के सगे भाई की इकलौती औलाद-त्रिभुवन प्रताप सिंह! त्रिभुवन अपने पिता की फ़लिज की बीमारी के इलाज के लिए उन्हें बम्बई ले आये थे। न पिताजी ठीक हुए न त्रिभुवन का वापस जाने का मन हुआ। इस तरह त्रिभुवन पिछली दो पीढ़ियों से बम्बई में जा बसे थे। सांताक्रुज़ में रहते थे। सांताक्रुज़ में यू.पी. वालों का गढ़ था। इधर से उधर तक ये वो सिंह वो वो सिंह......इन्हीं लोगो ने अपने बच्चों के लिए एक मारवाड़ी कंपनी के साथ मिलकर वहाँ एक स्कूल भी खुलवाया था। त्रिभुवन इस स्कूल के ट्रस्टी थे। आस पास उनकी चार पांच दुकानें थीं। एक मिठाई की और एक दूध की तो ये ख़ुद चलाते थे बाक़ी इन्होने किराये पर चढ़ा रखी थीं। हाँ औलाद इनके कोई नहीं थी।

जब रघुवर प्रताप की मृत्यु हुई तो ख़बर मिलते ही त्रिभुवन गाँव आये। ख़बर मिलते और सफ़र करके आते आते दसवां हो गया। बहुत दिनों बाद आये थे सो दो चार दिन ज़मीनें देखते रहे, तीन चार दिन आराम करते रहे गाँव की अपनी यादें ताज़ा करते रहे। जमना बराबर सोचते रहे की कहीं त्रिभुवन अपनी ज़मीनों का हिस्सा न मांग बैठें। उन्होने मन में पूरा हिसाब लगा रखा था के अगर उन्होने मांग लिया

तो वे जितनी बंजर ज़मीनें पड़ी हें उनका हिसाब दे देंगे। और अगर ज़्यादा इधर उध ार करेंगे तो सीधा कह देंगे के लगान इतने सालों से वे ख़ुद देते आये हैं मजदूरों को वे देते आये हें उसमें तो कभी उन्होने त्रिभुवन से कुछ माँगा नहीं तो वो भी जमना से कुछ मांगने के हक़दार नहीं हैं। लेकिन त्रिभुवन ज़मीनों की बात ही नहीं करते थे। एक दिन दोपहर में जमना, जमना के दोनों लड़के और त्रिभुवन साथ में बैठे पौर में चाय पी रहे थे। त्रिभुवन बोले, ''जमना...तुम इन दो दो का का करोगे.... .एक लड़का हम लिए जात हैं....उहीं बम्बई माँ पढ़िहै लिखीहै...आदमी बनिहै... .नाम तुम्हार चलै और बेटा हमार रहै...!...कहौ...!''

जमना सिंह ने ना नुकर नहीं की । त्रिभुवन को अच्छा लगा की आख़िर छोटे भाई ने बड़े भाई का मान रखा। जमना ने सोचा की लड़के को बम्बई भेजने में कोई हर्जा नहीं है-एक तो अच्छी तरह पढ़ लिख जायेगा और दूसरे सबसे बड़ी बात कि त्रिभुवन की वहाँ जो संपत्ति है उसका वारिस तो यही लड़का हुआ न!

जमना के बड़े लड़के का नाम था रमाकान्त सिंह और छोटे का लक्ष्मी कान्त सिंह लेकिन गाँव में लड़कों को टुन्नू और मुन्नू बुलाया जाता था। स्कूल में हाज़री हुई तो बात और वरना नाम तो टुन्नू और मुन्नू ही चल रहे थे। रमाकांत कहो तो शायद टुन्नू सुने ही नहीं!

बहरहाल जब सब रिश्तेदार निकलते निकलते दोबारा फिर अघा के रो लिए और अपने अपने घर वापस जाने लगे तब त्रिभुवन भी चलने की तैयारी करने लगे। रमाकांत साथ जा रहा था। सामान बंधा, पूड़ी और लड्डू बंधे जीप में सामान लादा गया गले मिल के फिर रोना धोना हुआ....समय का अंदाज़ा किसी को नहीं था।

-''अरे इ सब माँ गाड़ी ना निकल जाये...'' त्रिभुवन चिड़चिड़ाए।

-''गाड़ी कैसे निकल जाये?'' जमना ने कहा।

-''अरे चार कोस पे स्टेशन बा...ना पहुँच पाये और गाड़ी चली गयी तब. ..?!...तनी जल्दी करौ...!''

-''अरे दद्दा! इ तुम्हार बम्बई नाहीं है....यहाँ हमार हुकुम चलत है...गाड़ी तुम्हें छोड़ के कैसे जाई?...रोक ना देंगे साली को!....देखें कौन माई का लाल तुम्हें लिए बग़ैर चला तो जाये इन्हां से!''

बहरहाल! त्रिभुवन प्रताप सिंह रमाकांत को ले के बम्बई आ गए। गाँव में हालांकि रमाकांत पांचवें दर्जे में पढ़ता था लेकिन बम्बई के प्रिंसिपल ने 'ट्रस्टी' त्रिभुवन सिंह से गुज़ारिश की के ''सर...! पढ़ाई का मामला है, लड़के के भविष्य का सवाल है...तीसरे में भर्ती कर दूं?...अच्छ रहेगा!''

-''पढ़ लिख केहू का हुई है...तीसरे में डारो चौथी में डारो...कमाय खाये की चिंता तो है नहीं......जौन समझो सो करो...!''

रमाकांत तीसरे दर्जे में दाख़िल हो गए। गाओं में स्कूल गए तो गए ना गए ना गए। जो पहन के सोये थे वो ही पहने चले गए। यहाँ स्कूल में रोज़ जाना पड़ता था। त्रिभुवन की पत्नी लीलावती टुन्नू को देखकर फूली न समाती थीं।

-''एक काम तुम ठीक किये लाईप माँ....ई लड़का हुआँ से लाइ आये...हमार मनौ लगा रहै और इ ससुर आदमियो बन जाये....!''

-''तुमको बम्बई माँ तीस साल हुई गए,'' त्रिभुवन ने तीर मारा, ''तुम आदमी हुयीं गयीं...?''

-''ऊ तो हम तुम्हार संग फँस गए ना...दूध वाला हों ना तौं...नाहीं तो हम तो बम्बई माँ महारानी ना बन जाते तो कहते।''

नौक झोंक चलती रही। टुन्नू को टुन्नू से पूरी तरह रमाकांत होने में ज़रा समय लगा। त्रिभुवन सिंह और लीलावती को घर में लड़का होने की आदत पड़ने लगी और गाँव से टुन्नू के हाल चाल पूछने वाले ख़त धीर धीरे और लम्बे वक़्फ़े से आने लगे।

गाँव की अपनी परेशानियां थीं। वहाँ जो ज़मीनें काछियों या उस तरह के और लोगों की थीं वे किसी यादव ने ख़रीद लीं थीं। मिठाई लाल यादव कौन था कहाँ से आया था कोई नहीं जानता बस वो आया, नोटों की गडडी लाया और उसने सीधे ज़मीनों का सौदा कर डाला। तो अब गाँव में दो ही लोगों की ज़मीनें रह गयीं-एक जमना प्रताप सिंह की या दो चार और ठाकुरों की या फिर मिठाई लाल यादव की!

-''राम राम सिंह साहेब!'' एक दिन मिठाई लाल जमना सिंह के घर आया।

-''राम राम!?'' जमना सिंह ने पहचानते हुए भी पहचान नहीं बताई।

-''हम हैं मिठाई लाल यादव...यहाँ ज़मीनें लिए हें। ज़मीने आपकी भी हैं तो सोचा हमें एक दूसरे को जानना चाहिए। सो आ गए।''

-''अच्छा...अच्छा..आप हैं...बैठिये बैठिये'' लेकिन जब मिठाई कुर्सी पर बैठने लगा तो जमना ने उसे फर्श पे बिछा कालीन बताते हुए कहा, ''अं अं...इधर आ जाइये।'' जमना सिंह की ठकुरास ऊपर आ गयी थी। आख़िर एक अहीर को कुर्सी कैसे दे दें! लेकिन तब वो भूल रहे थे की यादव अब अहीर नहीं ठाकुर माने जाते थे। मिठाई के मान को ठेस लगी थी। वो बैठा नहीं, खड़ा रहा। ''नहीं नहीं...बैठेंगे नहीं...ऐसे ही आए थे...अब चलें..फिर कभी मिलेंगे।''

वक़्त बदल रहा था। गाँव में कोतवाली का सब इंस्पेक्टर अब अकेले जमना सिंह के यहाँ ही नहीं मिठाई लाल यादव के यहाँ भी घी-पूड़ी खा रहा था। पंडित जी

अलबत्ता गाँव में अब भी एक ही थे। किसी के भी यहाँ पूजा पाठ कथा इत्यादि करने के लिए एक ही शख़्स! बूढ़े हो चले थे। उनका लड़का दसवीं तक पढ़ चुका था और अब वे उसी को कर्मकांड की शिक्षा देने में लगे थे। एक ही पंडित था तो जाहिर है वो ही ठाकुरों के घरों में और वो ही यादव के घर में जाता था। मिठाई लाल के फाँस गड़ चुकी थी- ''साला वो भी ठाकुर हम भी ठाकुर और वो हमें फर्श पे बैठाएगा! हुक्का से निगाली निकाल के देगा...''

लेकिन वक़्त तो वक़्त है और बदलता रहता है। एक सा कब किसका रहा है! लेकिन नव्वे के दशक तक आते आते ये वक़्त कुछ ज़्यादा ही तेज़ी से बदला। अभी तक गाँव में बड़ी मुश्किल से फ़ोन आया था, लाइन मिलाने में घंटों लग जाते थे। और लाइन मिले तो कहो सुनाई ही न दे। यहाँ से बोलने के लिए बेतरह चिल्लाना पड़े। लेकिन अब...अब सेल फ़ोन आ गए थे...छोटे छोटे से...लोग इन्हें जेबों में डाले फिरते थे। उससे बात भी करते थे और गाने भी सुनते थे। लोगों के पास पैसा बढ़ गया था। काम कोई करना नहीं चाहता था। खेती का काम मुश्किल हो गया था। मज़दूरों की क़िल्लत होने लगी थी। फ़सल जो बिके उससे पूरा नहीं पड़ता था। बीज के लिए भी बचाना मुश्किल होता था। मुन्नू जब आठवीं में आया तब ही उसकी शादी कर दी गयी थी सो अब उसके बच्चे बड़े होने लगे थे। गाँव में घर घर टी वी पहुँच चुका था। मुन्नू को खेतों पर जाकर ख़ुद काम करने-करवाने से ज़्यादा बीवी के साथ बैठकर टी वी देखने में मज़ा आता था। उसे टी वी में देखे हुए नए नए डिज़ाइन के कपड़े सिलवाने का शौक़ चढ़ गया था। ठाकुर जमना सिंह बूढ़े होने लगे थे। गाँव, ज़िला और कोई कोई तो कहता था कि प्रदेश राजनीति में भी मिठाई लाल यादव की पकड़ बढ़ रही थी। गाँव में तो वो निर्विरोध सरपंच हो ही गया था। उसके पास पैसा और यश दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा था।

मिठाई लाल का पंद्रह साल का लड़का दो दो फ़ोन लिए गाने सुनता गाँव भर में मोटर साइकिल दौड़ाता फिरता था-लड़कियों के चक्कर में!

उधर बम्बई में रमाकांत बी.ए. पास करके आइ.पी.ऐस. में हो गया था। सीधे ऐस.पी-सुपरिंटेंडेंट पुलिस! त्रिभुवन कहते ही रह गए कि ''नौकरी ही करनी थी तो काहे हम तुम्हें बम्बई लाये...हमारे पास रहते तो बात थी.....पढ़ा लिखा दिए हम गल्ती किये!'' लेकिन लीलावती जी को रमाकांत को वर्दी में देखकर बड़ा अभिमान होता था। ''ठाकुर का लड़का पुलिस में, फ़ौज में न जाई तो का करी...तुम्हारी सरीखा दूध बेचै..!''

कार्तिक का महीना था। माता के मंदिर में नौ दिन जल चढ़वा दिया गया था।

जवारे निकल चुके थे। दशहरे की सुबह ठाकुरों के घरों में शास्त्रा पूजा का विधान था। जमना सिंह के घर आँगन के एक तरफ़ सफ़ेद चद्दर बिछाई गयी। उस पर बंदूकें, भाले, तलवारें, कटार इत्यादि-जो जो हथियार घर में थे सब तरतीबवार रखे गए।

दस बजे अपने लड़के को ले के पंडित जी आ गए। मुन्नू पूजा में बैठे। मुन्नू का सबसे छोटा सात आठ साल का बेटा गुड्डू तलवार चलाने की ज़िद करने लगा।

-''तुम क्या तलवार चलाओगे....उठा ही न पाओगे.....भारी है।'' मुन्नू बोले।

-''छोड़ो....टी वी में देखते नहीं हो सलमान ख़ान कैसे बाएं हाथ से उठा लेता है।'' लड़के ने जवाब में कहा।

-''वो तो तमंचा....तलवार थोड़े ही।''

-''तमंचा हो तलवार हो....हमें सब मालूम है..''

जब लड़के की बात नहीं मानी गयी तो वो ज़िद पकड़ गया। ज़मीन में अंगूठा गड़ा के उसने धाड़ मार के रोना शुरू कर दिया। लोगों ने कहा शुभ दिन किसी का रोना ठीक नहीं है चलो इसे गोदी में बैठा लो। लड़का मुन्नू की गोद में बैठ गया। पूजा शुरू हो गयी। हर एक शस्त्र हाथ में लेकर उस पर तिलक लगाकर उसे माथे से छुलाकर रखना था और फिर अंत में वो ही फूल, मिठाई, प्रसाद और प्रार्थना वग़ैरह। तलवारों के बाद नम्बर आता था बंदूक़ का। बारह बोर की वेब्ली स्कॉट राइफ़ल। मन्नू ने उठाई, तिलक लगाया, सर से लगा के आँखें बंद कीं नहीं कि गुड्डू जो इधर उधर हाथ चला रहा था उसने खेलते खेलते ट्रिगर दबा दिया। दबा दिया तो बंदूक चल गयी और गोली जा के लग गयी पंडित जी के लड़के की दायीं बांह में। ख़ून बहने लगा। बौखलाहट शुरू हो गयी। पूजा का तमाशा बन गया। सब यही मानते रहे कि 'शुक्र है गोली बांह ही में लगी।' लापरवाही कि बात किसी के ध्यान में ही नहीं आयी।

कोतवाली में एक नया सब इंस्पेक्टर आया था। वो शाम तक जमना सिंह के घर पहुँच गया। थाने में रिपोर्ट लिखवाई गयी थी। मामला लापरवाही और ख़ून का बनता था।

-''हमारे खिलाफ़?'' मुन्नू की ठकुरास ऊपर आ गयी,'' जानते नहीं हो का हमको....?....जहाँ खाते हो वहीं गढ़हा करोगे?''

-''पंडित जी रिपोर्ट लिखवाये हैं।''

-''पंडितवा की इतनी हिम्म्मत! हमारे खिलाफ़ रिपोर्ट लिखवाएगा!....मर ही जाता तो अच्छा होता...स्साला..!....और तुमने लिख कैसे ली?''

-''हम तो नहीं लिख रहे थे....और ये रिपोर्ट पंडित जी भी नहीं लिखवाये हैं. ...यादव जी का एक आदमी कोतवाली आया रहा, बोला लिखो....हम का करते?!''

-''ओ अहीरा जौन अब ठाकुर हुयी गवा है.....हूँ...! अरे रफ़ा दफ़ा करो जी. ..!''

मुन्नू पंडित के घर दौड़ा। ''साले! हमारा खा के हमीं पर थूकोगे?.....शर्म नहीं आती हमारे खिलाफ़ रिपोर्ट लिखवाते!?...लड़का मरा तो नहीं न.......चोट ही तो लगी है.....इलाज हम करवा देंगे....!''

-''हम तो रिपोर्ट नहीं करवा रहे थे लेकिन ख़बर फैल गयी और पंचायत वाले हमें ले के गए थाने, रिपोर्ट उन्हीं ने लिखवाई है,'' पंडित ने हाथ जोड़े, ''हमारे तो सब ही मालिक हैं।''

दूसरे दिन सुबह सुबह पुलिस की लाल बत्ती वाली एक जिप्सी जमना सिंह के घर के आगे आ के रुकी। वर्दी में एक चुस्त नौजवान उतरा और सीधे अंदर चला आया। पीछे पीछे दो हवलदार।

-''मुन्नू सिंह कौन है?''

-''काहे?''

-''उस पर लापरवाही बरतने और ख़ून के मामले में वारंट है।''

-''वारंट?!''

जमना सिंह कूदे, ''अरे तनी बैठो पोलस बाबू.....अब ठाकुर का लड़का बंदूक न चलाई तो का सूत काते....अरे हो गयी ग़लती...हो गया सो हो गया...खतम करो किस्सा!...बोलो क्या सेवा करैं...?''

-''हम कुछ नहीं कर पाएंगे।''

-''तो कौन कुछ कर पायेगा?''

-''मिठाई लाल यादव जी यहाँ के सरपंच हैं, प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं....वे कह दें के ये ग़लत है, ऐसा कुछ नहीं हुआ है, रिपोर्ट ग़लत लिखवाई गयी है। तो हम तहक़ीक़ात बंद कर देंगे। वरना आज आपको हमारे साथ कोतवाली तो चलना पड़ेगा।''

-''कोतवाली?!'' जमना को ग़श आने लगा। उन्होने रमाकांत को फ़ोन लगाया। 'टुन्नू' को सारी बात समझाई। रास्ता पूछा तो रमाकांत ने कहा अगर रिपोर्ट लिखवाई गयी है तो कार्यवाही तो होगी।

-''कौनो रास्ता सुझाओ।''

-''रास्ता क्या सुझाएँ बाबू....ये ग़लती कोई ग़लती है?....लापरवाही की हद

हो गयी आप बच्चे को गोद में बैठा के शस्त्र पूजा करते हें! वो तो शुक्र करो बच्चे को कुछ नहीं हुआ...और अगर पूजा ही करनी थी तो बंदूक लोडेड काहे रखी थी?!. ...कारतूस निकाल के नहीं रख सकते थे?!''

-''देखो जो हो गया सो हो गया।''

-''तो अब कुछ नहीं हो सकता...वैसे भी हम हियाँ बैठे बैठे का करेंगे....जो करेगा वहीं का इंस्पेक्टर करेगा। उसी से बात कीजिये।''

जमना समझ गए कि अब मिठाई लाल के पास जाने के अलावा कोई और चारा नहीं बचा है। मन मारा और चले।

-''आओ ठाकुर जमना सिंह! पहली बार आए हो...बैठो बैठो!'' जमना सिंह कुर्सी पर बैठने को हुए ही थे के मिठाई लाल ने फ़र्श कि तरफ़ इशारा करके कहा, ''अं अं.....हियँ आ जाओ''

जमना सिंह को अपनी करनी याद आ गयी। वे खड़े रहे।

-''यादव जी! ग़लती हो गयी बच्चे से.....अब उसके लिए हवालात जेल के अलावा कोई और तरीका भी होगा।''

यादव ने कुछ सुना कुछ नहीं सुना। फिर उसने दरवाज़े पर खड़े पुलिस अफ़सर की तरफ़ देखकर कहा, ''अरे बाहर काहे खड़े हो गए भाई.....आ जाओ, अंदर आ जाओ.....इ हैं सिंह साहेब.....गाँव के बड़े ज़मींदार...समझे न.....इनका कुछ करो भाई...इ बेचारे फँस गए हैं''

-''सर खेती तो अपनी भी है....ट्रैक्टर नहीं है!''

-''ट्रैक्टर है न ठाकुर साहेब के पास....लय जाओ....और चाहो तो दो एक एकड़ ज़मीनौ लिखा लयो अपने नाम....ठाकुर साहेब की बहुत ज़मीनें हैं हियाँ... क्यों ठाकुर साहेब...ठीक है न!?''

ठाकुर जमना सिंह चुपचाप अपने भीतर तमाचे पर तमाचा बर्दाश्त करते रहे। उनसे कुछ कहते न बना। फिर उन्होने सहमते हुए पूछा, ''रिपोर्ट तो वापस हो जायेगी न?''

-'कौन सी रिपोर्ट? काहे की रिपोर्ट?...पन्नौ फाड़ डालेंगे साले रजिस्टर का. ..हं हं हं हं हं...!'' पुलिस इंस्पेक्टर ने यादव साहेब की हंसी में हंसी मिलाकर कहा।

सुकरी

-''उधर बैठो, उधर....उधर!'' कमलेश सिंह ने लड़की को देहरी के बाहर जगह दिखाते हुए कहा।

कमलेश सिंह शहर के कलक्टर थे। नए नए आए थे और अपनी नईं नईं शादी का जलसा कर रहे थे। जलसा दरअसल तो लोग कर रहे थे आवास उनका था। ज़ाहिर है सरकारी अफ़सरान, पुलिस वाले, सफ़ाई वाले सब हाज़िरी पे थे। संतो सफ़ाई वाले की चार साल की इकलौती बेटी-सुकरी-आज छुट्टी के दिन अपने बापू को घर से जाने नहीं दे रही थी। बोलती थी, ''आज तो छुट्टी है।'' सुकरी की माँ मर चुकी थी। संतो बेटी को प्यार भी बहुत करता था और उसको उसकी माँ की कमी खलने भी नहीं देना चाहता था। हलांकि छुट्टी के दिन वो घर पर ही रहता था लेकिन आज तो कलक्टर के यहाँ ड्यूटी लगी थी जाना तो था। बोला, ''चल तू भी चल...तुझे शादी दिखा के लाता हूँ'' सो संतो ने उसे साथ ले लिया। कलक्टर साहेब के यहाँ जश्न का माहौल था और सुकरी ठहरी बच्ची, जहाँ चहल पहल देखी वहाँ जाकर बैठ गयी तमाशा देखने। उसी समय कमलेश सिंह वहाँ से निकले तो इस 'गन्दी' बच्ची को देख कर बोले ''कौन है ये?।'' किसी ने बताया कि ये एक सफ़ाई वाले की बेटी है। तब सिंह साहेब ने बच्ची से कहा था- ''उधर बैठो,...उधर...... .उधर!''

सत्तर का दशक समाप्ति पर था। लेकिन अफ़सरों और मातहतों का फ़र्क़ बरक़रार था और लाख आंबेडकर और गांधी की बातें होती हों अस्पृश्यता अब भी समाज में व्याप्त थी। हालाँकि ज़माना बदल गया था और संतो को शहर में मैंले के डलिये नहीं ढोने पड़ते थे क्योंकि सबके यहाँ फ़्लश सिस्टम आ गया था लेकिन नालियां तो अब भी शहर में सड़कों के किनारे खुली खुली सी बहती थीं और लोग तो नालियों में तमाम प्रकार की गन्दगी, कतरन,चाट खाये दोने-पत्तल सभी कुछ तो फेक देते थे जो सब मिल मिलाकर बजबजाता रहता था। फिर इस इलाक़े में तो

मटन की दुकाने भी थीं जिनसे गिर गिर कर छोटी छोटी हड्डियाँ और क़ीमे के क़तरे नालियों में चिपक जाते थे। ये सब हाथ में खुरपा ले कर खुरच खुरच कर निकालना पड़ता था। संतो ने, जब से उसे याद पड़ता है तब से, अपनी माँ और अपने पिता को मैला ढोते ही देखा था। जब बहुत छोटा था तब वो सिर्फ़ उन्हें काम करते देखता रहता था। जब ज़रा बड़ा हुआ तब से उसने उनका हाथ बटाना शुरू कर दिया। अब ख़ैर नालियां साफ़ करना, झाड़ू लगाना बड़ी बड़ी टोकरियों में भर भर कर मैला ढोने से तो बेहतर था। जब ज़माने ने करवट बदली और देश में सामाजिक उत्थान की बातें उठीं और ये बातें जब छनते छनते छोटे शहरों तक भी पहुंचीं तो संतो ने भी सुनीं। संतो को वैसे तो अपनी इकलौती बेटी सुकरी की फ़िक्र लगी रहती थी कि क्या वो भी यही करेगी जो उसके बाप दादा करते आए हें?!। लेकिन उसकी समझ में ये नहीं आ रहा था कि आख़िर वो ऐसा क्या करे जिससे उसकी बच्ची का भविष्य उसके भाग्य से जुड़ा न रहे। वो और बच्चों को स्कूल जाते देखता था तो कभी कभी सोचता था कि सुकरी को स्कूल में डाल दे। अब तो क़ानून भी था। एक आध बार उसने इसका जिक्र अपने बाप से भी किया। बाप ने झिड़क दिया। ''पढ़ायेगा!?. ...भंगी हैं हम...समझा न!'' बाप बुरी तरह बूढ़ा हो चुका था और बीड़ी पी पी कर खुल्ल खुल्ल खांसते रहने और संतो और दुनिया भर को गाली देने के आलावा उसे और कोई काम नहीं रह गया था। ''तो?...भंगी क्या जात नहीं होती?..हम क्या आदमी नहीं हैं?...हम पढ़े नहीं तो क्या सुन भी नहीं सकते!...आंबेडकर जी ने क्या कहा है...मालूम है?...सबको समान न्याय मिलना चाहिए।'' संतो जितना जानता था उसने उतनी समझ लगा कर बाप से जिरह की।

-''अरे हराम के...कहते हैं कि भगवान् ने खुद कहा है कि शूद्र का काम सेवा है।''

-''तो सेवा क्या सिर्फ़ मैला ढो कर ही होती है?'' संतो डिस्गस्ट में सर हिला कर बैठ जाता और बाप के साथ बीड़ी सुलगा लेता।

लेकिन बात संतो के दिल में बैठ गयी थी। बापू तजुर्बेकार है जो कहता है उसमें कुछ मर्म होगा। हो सकता है भगवान् ने सचमुच शूद्र को सेवा के लिए ही बनाया हो। और शायद लोगों की गन्दगी साफ़ करना ही उनकी सेवा में आता हो। हालांकि ये बात उसका मन कभी माना नहीं। वो सोचता था कि ऐसा कैसे है के वो भी आदमी हम भी आदमी और वो तो गन्दा करें और हम साफ़ करें! भगवान ऐसी असमानता कैसे कर सकते हें!..लेकिन मन में बार बार उठती इस शंका का समाधान वो करे कैसे? इस बाबत पूछे किस से?

संतो के पास मुकरियाना मोहल्ले का इलाक़ा था वहाँ मेन मार्केट से दो क़दम उधर अंदर गए कि खटीकों की बस्ती थी। शहर में मटन की दुकाने यहीं थीं। दो क़दम इस तरफ़ आए तो तरकारी भाजी वालियां बैठती थीं। अब इस माहौल में कौन था जो उसे भगवान और उसकी वाणी और उसकी मंशा के बारे में बता सकता था! बहुत सोचने के बाद उसके ख़्याल में एक छवि आयी जिसे वो जानता तो नहीं था लेकिन हाँ उसने उसे देखा ज़रूर था। हर चार पांच दिनों में एक सादा सा सफ़ेद कुरता पाजामा पहने कंधे पर झोला लटकाये कोई बुज़ुर्ग सा आदमी भाजी लेने आता था। चुपचाप आता था, बग़ैर किसी मोल भाव के शांति से तरकारी ले कर वापस चला जाता था। पढ़ा लिखा लगता था। संतो ने सोचा अब के दिखे तो उसी से पूछूंगा के भगवान् ने आख़िर लिखा क्या है शूद्रों के बारे में। क्या उन्होंने भी यही लिखा है की बाक़ी सब गन्दा करें और हम उन सबकी गन्दगी साफ़ करें!?...बहरहाल!. दो दिन तो इसी ऊहापोह में निकल गए कि किसी बड़े आदमी से-जो के अजनबी भी है- उस से एक सफ़ाई वाला अचानक कैसे कुछ पूछेगा! और क्या पूछेगा के भगवान् ने हमारे बारे में क्या लिखा है? वो हंसेगा नहीं!?...पागल नहीं समझेगा?!. ...सो पहले तो संतो इसी सोच में रहा के पूछे क्या!

जब तीन चार दिन निकल गए और वो बुज़ुर्ग सज्जन बाज़ार में दिखाई ही नहीं दिए तो संतो ने भी इत्मीनान की सांस ली के चलो जान छूटी, पूछने वूछने का झंझट समाप्त हुआ। लेकिन दुनिया का दस्तूर है के आरम्भ इति के बाद ही होता है। शुरुआत समाप्ति के बाद ही होती है। जाग तो नींद के बाद ही आती है। सो जब संतो अपने मन से उन सज्जन से मिलने की बात निकाल चुका तब एक दिन नाली का कचरा खुरच खुरच कर निकालने के बाद संतो खड़ा हो कर कमर सीधी कर ही रहा था के वे बुज़ुर्ग दिखाई दे गए। संतो ने एक दूकान वाले से उनकी तरफ़ इशारा करते हुए पूछा, ''ये...ये कौन है?'' जवाब मिला, ''श्रीवास्तव साहेब!। मास्टर हैं'' संतो ने खुरपा रख दिया और जाकर श्रीवास्तव साहेब के सामने झुक कर प्रणाम की मुद्रा में खड़ा हो गया।

-''साहेब, राम राम!''

-''राम राम!'' मास्टर साहेब ने जवाब दिया।

संतो को इस तरह मुस्कुराते हुए प्यार से जवाब की बिल्कुल आशा नहीं थी। वो तो उम्मीद कर रहा था कि कहीं ये भी उसे दुत्कार कर 'क्या है' करके आगे न निकल जाएँ!

-''साहेब आप गुरु हें...हम निपट हैं!....हमें तो जे बताओ साहेब के हमारे बारे में....शूद्रन के बारे में भगवान ने भी कई है के हम जीबन भर सफ़ाईयई करते रहें!?''

-''ऐसा तुमसे किसने कहा?''

-''सब कहत हैं के भगवान ने कई है के......''

-''भगवान् ने किसी के बारे में कुछ नहीं कहा है।'' मास्टर ने बात काट कर कहा, ''उसने तो सबको इंसान बनाया है। इंसान ने आपस में काम का बटवारा कर लिया।''

-''वो बोलते हैं बहमन शूद्र छतरी सब भगवान के बनाये हुए हैं...''

-''बनाये तो सभी भगवान हैं...लेकिन भगवान ने सबको इंसान बनाया है..और ये ब्राह्मण, छत्रिय, इत्यादि इंसान के प्रकार नहीं हैं...ये इंसान की प्रवृत्तियां हैं..इंसान के आचरण की वृत्तियां हें..इंसान के प्रकार नहीं हैं। इसलिए ऐसा ज़रूरी नहीं है कि ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण ही हो...अगर उसका आचरण और प्रवृत्ति शूद्र है तो वो शूद्र हो सकता है और अगर किसी शूद्र के बच्चे का आचरण और प्रवृत्ति ब्राह्मण की है तो वो ब्राह्मण है......और इसे समझो के ब्राह्मण कौन है...ब्राह्मण वो नहीं है जो मंदिर में पूजा करता है घंटी बजाता है या किसी के घर पोथी बांचता है या केवल ब्राह्मण का बेटा है....ब्राह्मण वो है जिसकी बुद्धि प्रखर है, जो सात्विक विचारों का है जो लोगों का भला करने का प्रयत्न करता है..विद्वान् है....''

संतो अचम्भे से सुनता रहा। न उससे ऐसे अपनापे से कभी किसी ने बात की थी और न इतना ज्ञान उसे कभी किसी ने दिया था।

-''और तुम्हें केवल यही चार मालूम हैं...ये तो चार वर्ण हें...शास्त्रों में लोगों की प्रकृति पर लिखा है कि इंसानों में तीन प्रकार की प्रवृत्तिया होती हें- राक्षस, देव, और मानव। इसका मतलब ये हुआ के चाहे कोई कितना भी पंडित क्यों न हो यदि वो क्रूर और दूसरों को दुःख देने वाला है तो वो निश्चित रूप से राक्षस है !....देखो मामला बहुत जटिल है इसलिए तुम इस बेकार के चक्कर में मत पड़ो....तुम इतना समझ लो के भगवान ने तुम्हें औरों की तरह ही इंसान बनाया है और तुम्हें प्रकृति ने वो ही सब अधिकार दिए हें जो किसी और इंसान को।''

-''.............''

-''और तुमसे ये किसने कहा के ये सब जो भी लिखा गया है वो भगवान् ने लिखा है?....भगवान् श्रृष्टि रचेंगे के किताब लिखेंगे?..ये सब किसी आदमी ही ने तो लिखा है...सो ये सब सही ही है या उस आदमी ने ये सब अपने फ़ायदे के

लिए नहीं लिखा ये कौन बतायेगा?''

-'' तो हम तो जनम से मैला ढोते हैं?!''

-''ये ग़लत है...लोगों ने कभी अपने भले के लिए ऐसी ग़लत व्यवस्था बना डाली जो अब तक चली आ रही है....लेकिन अब ज़माना बदल गया है। समाज सुधार करने वालों ने अवतार के रूप में आकर इस अमानुषी परंपरा पर प्रहार किया है। अब इस तरफ़ जागरूकता बढ़ रही है।''

दोनों आमने सामने बात करते हुए खड़े थे। ये बात बग़ल में ड्यूटी देने वाले पुलिस कांस्टेबल के गले न उतरी कि एक सफ़ाई वाला एक साभ्रान्त सज्जन से खुल कर बेबाक़ी से इस तरह सड़क पर बात करे। उसने सोचा ये उनको तंग कर रहा है और इस तरह उसे अपना डंडा चलाने, अपने पैर छुलवाने और दो पैसे कमाने का शुभ अवसर दिखाई दिया। सो वो पास आ गया। उसने मास्टर साहेब की तरफ़ देख कर पूछा, ''क्या हुआ मास्टर साहेब?'' फिर वो संतो की ओर सर मोड़ कर बोला, ''चल बे, अपना काम कर मास्टर साहेब को क्यों तंग करता है?''

–''नहीं....नहीं.....'' श्रीवास्तव मास्टर ने कांस्टेबल से कहा, ''इनसे मैं ही बुला कर बात कर रहा हूँ''

कांस्टेबल ने अचम्भे से मास्टर की तरफ़ देखा और संतो को एक लुक दे कर अपनी आँखें नचाता हुआ चला गया। संतो एक बार फिर हाथ जोड़ कर मास्टर के सामने झुका। बोला, ''तो हम का करें साहेब?......हमारी एक छोटी सी बेटी है.. ...हम नहीं चाहते के हमारी बेटी भी बड़ी हो कर यही काम करे.....हमने कई कि हम बिटिया को स्कूल भेजेंगे सो हमारे बाप कहत हें कि हम सब को भगवान ने पढ़ने लिखने के लिए नईं, लोगन की सेवा के लिए पैदा किया है।''

–''सेवा क्या पढ़ लिख कर नहीं की जाती?....मैं पढ़ाता हूँ, मैं पढ़ा कर सेवा करता हूँ....डाक्टर दवा देकर सेवा करता है, वकील मुकदमा लड़ कर सेवा करता है....तो क्या पढ़ लिख कर लोगों की सेवा नहीं की जा सकती?!.....तुम अपनी बेटी को स्कूल भेजो। बजरिया का स्कूल देखा है?...मैं वहाँ पढ़ाता हूँ...कल ही से अपनी बच्ची को वहाँ ले आओ।''

संतो की आँखें ख़ुशी, इत्मीनान और कृतज्ञता से गीली हो गयीं। उसने मास्टर साहेब का शुक्रिया अदा किया। उसे यक़ीन हो चला के अब सुकरी का भविष्य उसके अपने वर्तमान से अलहदा होगा, अच्छा होगा।

-''नाम?'' बजरिया नगरपालिका स्कूल के हेड क्लर्क ने पूछा।

-''सुकरी!'' फिर जैसे संतो रुक गया, ''नहीं नहीं....जब बड़ी होगी तो ये नाम तो अच्छा नहीं लगेगा....ये तो घर का नाम है....''

-''तो फिर क्या लिखूं?''

-''सुंदरी.....हाँ, सुंदरी बाल्मीकि।''

इस तरह सुकरी उर्फ सुंदरी बाल्मीकि स्कूल में दाख़िल हो गयी। वो उस बस्ती की शायद पहली लड़की होगी जो बस्ता बाँध के सुबह सुबह स्कूल जाती थी। क्या ऊंचा हो जाता था उसका माथा जब कोई उससे पूछता ''किधर को सुकरी?'' और सुकरी ठाठ से कहती, ''इस्कूल!''

समय बीतता गया।

शहर में कलक्टर भी तमाम आये और बदल गए।

सुकरी नगरपालिका स्कूल से पांचवीं पास करके शहर के आर्य कन्या इंटर कॉलेज से भी फ़र्स्ट क्लास में पास हो गयी। संतो का बाप मर गया। बीबी तो पहले ही उसकी मर चुकी थी- तब ही जब सुकरी केवल तीन साल की थी। चलन तो था कि दूसरी ले आता लेकिन न जाने क्यों वो किसी को नहीं लाया। या तो उसके दिल में मृत पत्नी के लिए अटूट प्यार था या फिर हो सकता है उसे डर रहा हो कि जाने नईं वाली पहली की बेटी को ठीक से रखे न रखे। तब से संतो ने ही सुकरी को पाला पोसा लेकिन अब संतो भी बूढ़ा हो चला था सो उसकी फ़िक्र थी के अगर वो मर गया तो सुकरी का क्या होगा!..उसने सुकरी की शादी के लिए तेज़ी से लड़के की तलाश शुरू कर दी। जाति बिरादरी में कोई भी बेटी के लायक पढ़ा लिखा लड़का न मिला। सब निपट थे। और किसी निपट से वो अपनी पढ़ी लिखी सुकरी का विवाह कैसे करता! एक नरक से निकाल कर लाया दूसरे नरक में कैसे डाल दे! और जब संतो हार गया तो चिड़चिड़ा गया! सुकरी इंटर पास का अपना अव्वल दर्जे का नतीजा लिए ख़ुशी ख़ुशी बाप के पास आयी ही थी के संतो ने झटक दिया, ''चल बस कर!......घर बैठ!....हो गयी तेरी पढ़ाई!....तुझे पढ़ा कर मैं ने गलती कर दी। न अब तू नाली साफ करने की रही न तेरे बराबर का लड़का मिल रिया है ब्याह के लिए!'' संतो ने सर पीट लिया, ''बापू ठीक कहता था...पढ़ाई लिखाई हमारे लिए नहीं है.....हमाई नौकरी गयी तो खाने के लाले...!''

सुकरी पास आ गयी, उसने प्यार से बापू के सर पर हाथ फेरा, बोली, ''तुमने इतना किया है.....अब कुछ मुझे करने दो।''

-''क्या करेगी तू?''

-''नौकरी करूंगी।''

-''नौकरी?.....तू...?......इत्ती सी तो है.........तेरी कमाई का खाऊंगा मैं?''

-''क्यों?....मैं तुम्हारा लड़का होता तो क्या तब भी तुम यही कहते?'' सुकरी ने संतो की गर्दन को अपनी बाँहों में ले लिया और उसकी ठोड़ी अपने चेहरे की तरफ़ उठा कर बोली। ''तुमने मेरे लिए क्या नहीं किया.....मुझे गन्दी ज़िन्दगी से बचाने के लिए इतना पढ़ाया, मास्टर साहेब ने सिखाया.....तो क्या इसलिए कि मैं किसी संगमरमर के ताज महल की तरह घर में शोभा की वस्तु बना कर सजावट के लिए रख दी जाऊं?!''

संतो ने आँखें हटाकर कहीं दूर क्षितिज की ओर देख कर एक हल्की सी आह भरी।

-''बापू....मैं तुम्हारी लड़की भी हूँ और तुम्हारा लड़का भी हूँ....मेरे जीवन में वैसे भी तुम्हारे सिवा है कौन.......मेरा जीवन केवल तुम्हारे और मास्टर जी के इर्द गिर्द ही तो घूमता है।''

संतो ने आख़िरकार हार कर पूछा, ''तुझे नौकरी मिलेगी?''

-''मिलेगी.......बिलकुल मिलेगी।''

और सुकरी को शहर की एक बर्फ़ फैक्ट्री में पार्ट टाइम नौकरी मिल गयी। सुबह और शाम सुकरी वहाँ हिसाब किताब देखने का काम करती थी और दिन में जाती थी डिग्री कॉलेज-बी ए की पढ़ाई करने। इसमें श्रीवास्तव मास्टर जी का भी योगदान था। सुकरी की मेहनत, मास्टर जी के आशीर्वाद और संतो के प्यार ने मिल जुल कर कुछ ऐसा करिश्मा किया के सुकरी बी ए में विश्वविद्यालय भर में टॉप कर गयी। शहर के अख़बारों में उसकी तस्वीरें छप गयीं, प्रान्त भर में चर्चे हो गए। संतो और सुकरी मास्टर साहेब के घर पहुंचे।

-''अब क्या करें साब.....जे तो पढतियैन जा रईं....कब तक चलेगा ?''

-''होनहार बच्ची है....जब तक चाहे पढ़े......तुमसे कौन पैसा मांगती है। पढ़ाई के लिए इसे छात्रवृति मिलती है और घर ख़र्च तो ये कमा ही रही है....''

-''वो तो ठीक है साब....पर अब अपना भी कौन ठिकाना है....न आगे न पीछे...इनकी सादी ब्याह कर देते तो निबट जाते लेकिन जे पढ़ गयीं सो अब इनके लिए बराबर का लड़का नहीं मिल रिया। मौड़ी की जात इधर उधर दिल लगा आयी तो कहीं फिर न पड़ जाये कचरा उठाने के चक्कर में.....उसी जिनगी से तो हम इन्हें बचाते आए हें।''

-''बेटे एक काम कर'' मास्टर साहेब ने सुकरी की ओर देख कर कहा, ''तू अबके आई.ए.एस. के इम्तिहान में बैठ जा। खूब अच्छी तरह तैयारी कर और हो जा सेलेक्ट।''

-''उससे क्या होगा?'' संतो ने पूछा।

-''उससे ये उस मुक़ाम तक पहुंचेगी जहाँ कि देश को, समाज को ये लड़की एक नईं दिशा दे सकेगी। कलक्टर जानते हो न.....वो आई.ए.एस. से ही आते हैं।''

-'' ये?....सुकरी।?...इत्ती बड़ी हो सकती है ?!'' संतो को अचम्भा हुआ.

-''बिलकुल!''

-''हं हं हं...'' संतो हंसा, ''जे...कलट्टर! ....हं हं हं...बाबू....!...बाप न मारी मेढकी बेटा तीरंदाज!....हं हं हं हं...! है लेकिन बिटिया हुसियार,क्या पता होइ जाये।''

सुंदरी ने दिन रात मेहनत की। आस पास के पढ़े लिखों से पूछा कि कम्पटीशन में क्या क्या सवाल पूछे जा सकते हैं। शहर के नए एस.पी. बत्रा साहेब अपने बचपन में कभी इसी शहर में पुरानी कोतवाली के नीचे वाली ढलान पर किसी छोटे से मकान में रहा करते थे और उस ज़माने में श्रीवास्तव साहेब से अंग्रेज़ी की ट्यूशन पढ़ने जाया करते थे। जब शहर के एस. पी. हो कर आए तो उन्होंने श्रीवास्तव साहेब की ढुँढ़ाई शुरू की। चरण छूने पहुंचे। आशीर्वाद देते समय श्रीवास्तव साहेब ने कहा 'बेटा, मेरा एक काम करो....एक बच्ची है,बहुत होनहार है....हो सके तो उसे ज़रा कम्पीटीशन के लिए गाइड कर दो।'

सुकरी ने यू पी एस सी का इम्तिहान दिया। लिखित में पास होने के बाद उसे इंटरव्यू के लिए बुलाया गया। जब सुकरी पहुंची तो उसने देखा कि पैनल में बैठे एक शख़्स की शक्ल बहुत जानी पहचानी सी है। वो सवालों के जवाब देती जाती थी और सोचती जाती थी कि आख़िर इस शख़्स को उसने कहाँ देखा है. इंटरव्यू शुरू हुआ। बोर्ड के चेयरमैंन ने सुंदरी की फ़ाइल के अंदर देखा फिर उसकी तरफ़ मुख़ातिब हो कर अचम्भे से चश्मा उतारा और बड़ी परेशानी से पूछा।

-''आप तो एस.सी. कैटेगोरी की हैं..फिर भी आपने लिखा है कि आपको जनरल कैटेगोरी में रखा जाये।! ...ये क्या बात हुई?...लोग तो एस. सी./एस. टी. कैटेगोरी के होने के लिए इस देश में फ़र्ज़ी सर्टिफ़िकेट तक लेने को तैयार हैं और एक आप हैं..!''

-''इसीलिए सर!

-''क्या मतलब?''

-''कब तक हम अपने आप को हीन, कमज़ोर और औरों से कमतर भी मानते रहेंगे और अपने हौसले पूरे करने के लिए दूसरों का हक़ भी लेते रहेंगे!''

-''लेकिन ऐसा क्या है जो आपको एस.सी/एस.टी. कैटेगोरी में हीन या कमज़ोर लगता है!...ये वे लोग हैं जिनको लगातार पीढ़ियों से आगे बढ़ने से रोका गया है....इसीलिए सरकार ने ये प्रावधान किया है कि....''

-''ये ग़लत है...'' सुकरी ने बात काट कर कहा, ''...किसी ने कभी भी किसी को दबाने या बढ़ने न देने कि कोशिश नहीं की। ये सब ग़लत प्रोपेगंडा है।''

-''आपने शायद मनुस्मृति नहीं पढ़ी!?।''

-''आपने शायद मनुस्मृति का शुद्ध रूप नहीं पढ़ा !..'' सुंदरी ने तड़ाक से कहा!

चेयरमैंन ने भृकुटि चढ़ाई और सीने पर हाथ बांध कर कुर्सी में पीछे हो कर नाखुशी से सुकरी को सुनने लगा।

-''मनुस्मृति वैदिक काल का तक़रीबन पांच से भी ज़्यादा हज़ार साल पुराना ग्रन्थ है,'' सुकरी बोर्ड के मेंबर्स की आँखों में सीधे देख कर बोली ''और जैसे समय के साथ और चीजों में अलग अलग लोग अपने अपने संस्करणों में अपने अपने प्रकार से अपने को सूट करने वाली बातें लिख या जोड़ देते हैं वैसे ही जिस मनुस्मृति की बात आप कर रहे हैं वह मनुस्मृति का विकृत रूप है....शुद्ध रूप में कहीं नहीं लिखा के ब्राह्मण सर्वोपरि है और शूद्र हेय...मूल श्लोक भी उसमे इतने नहीं हैं जितने आज आपको अलग अलग संस्करणों में मिलते हैं।''

इंटरव्यू बोर्ड में बैठे अंग्रेज़ी पढ़े, टाई लगाये, सूट और चमकदार पॉलिश वाले जूते पहने लोगों ने, जिन्होंने शायद मनुस्मृति पढ़ी ही न हो, इस बाबत सिर्फ़ सुना ही सुना हो-आपस में एक दूसरे की तरफ़ नज़र की....सुंदरी बेधड़क बोले जा रही थी।

-''आज तमाम राजनेताओं या अभिनेताओं के ऊपर पुराण लिखे जा रहे हैं. .....इन्हें देवी देवता का दर्जा दिया जा रहा है। सौ साल बाद इन लोगों को हो सकता है सच में देवी देवता मान ही लिया जाये तो क्या ये देवता हो गए? क्या ये विकृति नहीं हुई?!''

-''फिर भी ये तो कोई वजह नहीं है,'' बोर्ड के एक मेंबर ने कहा, ''कि आप अपनी कैटेगोरी बदलें।''

-''सर, मैं इस देश की एक जनरल लड़की हूँ और यही मैं लिख रही हूँ।''

सुकरी ने इस बार ग़ौर से आवाज़ पर ध्यान दे कर इस जाने पहचाने बोर्ड

मेमबर को पहचानने की कोशिश की। फिर उसे ठीक ठीक समझ में आ गया के इस शख़्स को कहाँ देखा है।

-''आप अव्वल आईं हैं..आप झाँसी की हैं..आपके शहर में थोड़ा सा रह चुका हूँ..वहां अब भी कोई ख़ास डेवलपमेंट नहीं हुआ है..आपने एग्ज़ाम की तैयारी इतनी अच्छी कैसे कर ली?!!'' जिसको सुकरी पहचान रही थी उसी मेंबर ने पूछा।

-''सर, एग्ज़ाम की तैयारी पढ़ने से होती है, लेकिन एग्ज़ाम पास अपनी लगन और कॉन्फिडेंस से किये जाते हैं।''

--''याने?''

-''याने, सर, अगर मैं ग़लत नहीं तो आप कभी झाँसी मैं डी.एम्. रह चुके हैं।''

-''यस...मैं वहां डी. एम् रह चुका हूँ ....लेकिन ये आपको कैसे पता?... ये तो बहुत पुरानी बात है, तब तो आप बेहद छोटी रही होंगी।''

-''चार साल की थी, सर.....तब मैं ने आपको देखा था और तब से आपकी सूरत मेरे ज़हन में बसी है..और मैं आपकी आभारी हूँ क्योंकि में आपकी ही वजह से यहाँ तक पहुँच पायी हूँ।''

मेंबर साहेब ने शान से सर ऊंचा किया। अपनी टाई की नॉट उँगलियों से एडजस्ट की और कहा। ''आई सी..!..इंटरेस्टिंग!'' फिर उसी ज़ौम में अपनी गर्दन शान से ताने कुर्सी में आगे आ कर सुंदरी से सवाल किया, -''सपोज़ आप किसी शहर में पोस्ट की गयी हैं और आपके पास बीच रात में कोई अपनी शिकायत ले कर आपके घर पर आ कर बैठ जाता है तो आप क्या करेंगी?''

-''कम से कम मैं उससे ये तो नहीं कहूँगी कि जाओ उधर देहरी के बाहर जा कर बैठो....'' सुकरी ने जवाब दिया।

-''क्या मतलब? ये क्या जवाब हुआ?'' मेंबर ने सर नीचा कर के चश्मे के फ्रेम के ऊपर से देखते हुए पूछा।

-''ये वो बात हुयी जो मेरे साथ आपके द्वारा अठारह साल पहले हुई थी। अपने घर की देहरी से मुझे बाहर निकाल कर क्योंकि मैं एक सफ़ाई वाले की बेटी थी.......आप ही का नाम कमलेश सिंह है न, आप ही कभी झाँसी में कलक्टर थे न!...याद कीजिये!

बोर्ड के बाक़ी लोगों ने सर घुमा कर कमलेश सिंह की तरफ़ देखा। कमलेश ने आँखें सिकोड़ कर सुकरी को सवालिया देखा ''.....तुम्म्म....?''

-''जी!...मैं सुंदरी बाल्मीकि...सुकरी.....संतो सफ़ाई वाले की लड़की.... आपकी शादी थी और मैं अपने पिता के साथ आयी थी। गाना बजाना देख कर मैं वहीं बैठ गयी थी.....जो आपको पसंद नहीं आया। ....उसी दिन मेरे मन में ये बात आयी थी कि आदमी को इतना बड़ा बनना चाहिए की कोई उसे देहरी के बाहर बैठने को न कह सके''

कमलेश सिंह ने अपना हाथ सुकरी की ओर कर के कहा - ''मैं ने ऐसा किया ?!''

-''मुझे आपसे कोई गिला नहीं है। लेकिन मैं ये बात केवल ये जताने के लिए कह रही हूँ कि जिसे आप हेय समझते हें उन्हें यदि सही सहारा दिया जाये तो वो भी क्या से क्या कर दिखा सकते हें। वो सहारा मुझे मेरे पिता ने दिया था इसलिए मैं यहाँ तक पहुँच पायी हूँ।'' सुकरी लगातार बोलती जा रही थी। ''हो सकता है के इसके बाद आप मुझे सेलेक्ट न करें। लेकिन सवाल सेलेक्ट या रिजेक्ट होने का नहीं है. सवाल ये है के क्या इससे यहाँ बैठे लोगों का रवैय्या अस्पृश्य लोगों के बारे में ठीक हो जायेगा! यदि मेरे उदाहरण से एक शख़्स भी सबको समान मानने लगता है तो मेरा काम हो गया।''

बोर्ड के एक मेंबर ने कमलेश सिंह की तरफ़ सर मोड़ कर कहा, ''मिस्टर सिंह आप तो अपने आप को बहुत उदार विचारों का प्रोजेक्ट करते हें....!''

-''अगर मैं ने ऐसा किया तो आई रिग्रेट।''

-''रिग्रेट नहीं.....सॉरी होना चाहिए आपको.....एंड अशेम्ड!'' बोर्ड के चेयरमैंन ने चश्मा उतारते हुए कहा. फिर पलट कर उसने सुकरी की ओर देखा और कहा, ''बेटी! आई एम प्राउड ऑफ़ यू...कि इस एक नेगेटिव बात से प्रेरणा ले कर तुम ने इतनी पॉज़िटिव सीख ली और यहाँ तक पहुंचीं। आई एडमायर यू एंड योर फ़ादर।''

जब नतीजे आए तो सुकरी सलेक्ट हो गयी थी। संतो मास्टर साहेब के पैर छूने गया। मास्टर जी ने कहा, ''अब बताओ सुकरी पंडित है कि नहीं?''

-''आप ठीक कहत हो साहेब अपने करम और आचरन से ही आदमी पंडित या कुछ ओर होता है। जाति से नहीं।''

''हू केयर्स !''

वो मेरे सीने से लग कर रो रही थी। मुझे उसकी तकलीफ़ से बहुत तकलीफ़ हो रही थी लेकिन इस सब के बावुजूद मेरी मजबूरी यह थी कि मैं उसकी कोई मदद नहीं कर सकता था।

ठाणे में बृन्दावन सोसाइटी नईं नईं बनी थी। जिस बिल्डिंग में मैं रहने पहुंचा उसके बग़ल वाली बिल्डिंग की दूसरी मंज़िल पर भागवत परिवार रहता था जिनसे मेरा परिचय राशन कार्ड में पता बदलवाने के सिलसिले में हुआ था। मैं नासिक से शिफ्ट होने के बाद राशन दफ़्तर के कई चक्कर काट चुका था। न कार्ड मिलता था न पता बदलता था। यह बात 1995 के आस पास की है जब राशन कार्ड ही पते का एक अहम 'प्रूफ' होता था। यों ही पड़ोसियों से ज़िक्र के दौरान पता चला कि अनिकेत भागवत पुलिस में वरिष्ट अधिकारी हैं और शहर में उनका बहुत रसूख़ है। सुझाया गया कि वे इस मामले को दो मिनट में सुलटा देंगे। अनिकेत पहले तो वैसे ही मिले जैसे कि बम्बई के लोग शुरू शुरू में मिलते हैं- बिलकुल 'इम्पर्सनल' तौर से। लेकिन दो तीन बार के बाद हम दोनों एक दूसरे के दोस्त बन गए। राशन ऑफ़िस के लिए उन्होंने कहा, ''तुम्हाला काय करायचय तिकड़े!..घरी रहा। मी सांगेन तेला'' (तुम को वहाँ जा के क्या करना है। घर रहो। मैं उससे कहे देता हूँ।) और वाक़ई तीन दिन गुज़रे होंगे कि शाम के क़रीब सात बजे मेरे पास एक फ़ोन आया-दूसरे दिन मुझे राशन ऑफ़िस बुलाया जा रहा था!

-''आपको रजिस्टर में साइन करना पड़ेगा इसलिए आना पड़ेगा नईं तो मैं ले के आता आपका राशन कार्ड आपके घर पे!''

राशन कार्ड मिलने के दो दिन बाद अनिकेत के घर मिठाई लेकर मैं शुक्राना अदा करने गया।

-''क्या यार!..मिठाई....! अरे कुछ ब्लैक डॉग....कुछ ब्लू लेबल....!'' बोलने के बाद जिस तरह उसने ठहाका लगाया उससे लगा कि ये सब वो मजाक़ में कह

रहा था। उसके पास देसी/विदेशी शराबें भरी पड़ी थीं। पीने वालों की पीने वालो के साथ दोस्ती बड़ी जल्दी हो जाती है। हमारी भी हो गयी। हफ़्ते में दो बार तो ज़रूर मुलाक़ात होती। कभी मेरे यहाँ कभी उसके घर।

मैं अकेला रहता था। बीवी ने दूसरा घर कर लिया था और माँ मेरी रही नहीं थीं। अकेलापन भी था और मन की बातें भूलने की कोशिश भी थी। अनिकेत अपनी पत्नी और दो छोटे बच्चों के साथ रहता था। हमारा मामला घर का सा हो गया था। अनिकेत का लड़का मन्दार उस वक़्त शायद आठवें दर्जे में था और लड़की मीनाक्षी तब ग्यारहवीं में थी। दोनों बच्चे अक्सर मेरे यहाँ आ जाते थे। ''कॉफ़ी पिएंगे अंकल!'' फिर कभी कभी उनके दोस्त भी उनके साथ आने लगे। जिनसे अच्छी तरह जान पहचान हो गयी वे रास्ते में, बाज़ार में भी मिल गए तो हैलो हो जाती थी। अनिकेत से मेरी उम्र कम थी और बच्चों में जवान होते लोगों से मेरी अच्छी पटती थी लेकिन फिर भी था तो मैं उनके लिए 'अंकल' ही! हालाँकि ये लफ़्ज सिर्फ़ बोलने का था। रिश्ते हमारे एकदम दोस्ताना थे और इन नौजवानो और मेरे दरमियान ऐसी कोई बात नहीं थी जो छुपी हो-घड़ी या चूड़ी की पसंद से लेकर बॉय या गर्ल फ्रेंड तक की...मैं उस समय एक कामयाब टी वी चैनल में प्रोडयूसर था। वो लोग मुझसे ये पूछ पूछ कर खुश होते थे के आज मैं किस हीरो या हेरोइन से मिला! शायद उनका मुझ से दोस्ती करने का ये भी एक कारण रहा हो! दोस्ती तो ख़ैर सबसे थी लेकिन मीनाक्षी को मुझसे और मुझे उससे कुछ ज़्यादा ही निस्बत थी। वो वक़्त बे वक़्त मेरे घर पर आ जाती थी। ये देखकर उसकी कुछ सहेलियां अक्सर जल उठती थीं। और वे मुझसे अक्सर तमाम बातें कहती रहती थीं जैसे कि- ''आपको मालूम है अंकल....आज मीनाक्षी ने क्या किया?..आज बस की स्ट्राइक थी.. .हम लोग फँस गए लेकिन मीनाक्षी की एक रिक्शे वाले से क्या दोस्ती है..बाप रे....वो उसे उसके घर तक छोड़ गया!'' और कभी ये के,'' ''अरे मीनाक्षी इज ए फ्लर्ट...!...आप कहियेगा मत कि मैंने आपको बताया...बट यु नो...!'' और ऐसी ही तमाम और बातें। हालाँकि ऐसी बातों का मेरे ऊपर कोई ख़ास असर नहीं पड़ता था और न मुझे इस सबसे कोई फ़र्क़ पड़ता था। हाँ कभी कभी मेरे दिल में आता था कि शायद मीनाक्षी के दोस्त मुझसे उसी दोस्ती की दरकार रखते हैं जैसी कि मेरी और मीनाक्षी की है और शायद इसीलिए ये सब कहते रहते हैं! क्योंकि वे देखते तो थे कि मैं अक्सर शाम को मीनाक्षी और मन्दार

के साथ आइसक्रीम खाने चला जाता था। फिर आइसक्रीम खाकर हम लोग देर रात घोड़ बन्दर के समुद्र तट तक चक्कर लगा आते थे। उस समय वहां नईं नईं बिल्डिगें नहीं आई थीं और वह इलाक़ा बहुत शांत होता था।

एक दिन भागवत के यहाँ दरवाज़े में दाख़िल होते साथ मन्दार की ऊंची ऊंची आवाज़ सुनाई दी, ''माला कई माहिती नहीं!....माला हे पाहिज़े....बस!'' (मुझे कुछ नहीं मालूम...मुझे ये चाहिए, बस!) वह अपने पिता पर बेतरह ज़िद और बेतरह गुस्से से चीख रहा था। मुझसे कोई परहेज़ नहीं था इसलिए किसी ने कोई बात बदलने या छुपाने की कोशिश नहीं की।

-''क्या बात है?'' मैंने ताज्जुब से पूछा।

-''ये लड़का न, भाई साब,!'' मिसेज भागवत बोलीं, ''चेन के लिए ज़िद कर रहा है!''

-''देखो न अंकल!....में टेंथ में आ गया, इतना बड़ा हो गया...एक चेन तो गले में मांगता है के नईं!''

-''आधा इंच मोटा चेन!'' अनिकेत ने मुझे देखकर कहा ''इसको आधा इंच मोटा चेन मांगता है...कहाँ से लाऊं मैं इतना पैसा?!''

-''माला नईं माहिती..माला पाहिजे!...बस!''

-''ये पुलिस अफसर हैं, अंकल!'' मंदार ने मुझे देखते हुए अपने पिता का माख़ौल उड़ाते हुए कहा, ''ये बड़े पुलिस अफ़सर हैं और इनके पास पैसा नहीं है!. ..बड़े ईमानदार बनते हैं! इन से जूनियर जूनियर लोगो के पास करोड़ो हैं और इनके पास पैसा नहीं है....!''

-''जिसने बे-ईमानी से कमाया है उसकी बात मत करो।'' अनिकेत भागवत ने कहा।

-''आज के ज़माने में बे-ईमानी ईमानदारी कुछ नहीं होती...पैसा ही ज़रूरी होता है ! आपसे जूनियर जूनियर लोग कहाँ से कहाँ पहुँच गए और आपको कितने सालों से कोई प्रमोशन नहीं मिला। आपने कमाया होता तो आज ये हालत होती क्या?!''

मैंने हालाँकि मन्दार को समझाने की कोशिश की कि अनिकेत इतना पैसा कहाँ से लाएगा। पहले वह अड़ा रहा। फिर मुझे लगा कि वो शायद समझ गया है और वो अपना तकाज़ा छोड़ने को तैयार हो जायेगा।

तीन दिन बाद इतवार था और शाम को मेरी और मीनाक्षी की 'कॉफ़ी डेट'

थी। सात बजे वह आ गयी। इधर उधर की बातों के बाद उसने बताया, ''आपको मालूम है अंकल, डैडी ने मन्दार के लिए आधे इंच की चेन बनवाने दे दी!''

-''वो तो कह रहे थे इतना पैसा कहाँ से लाऊं?''

-''उन्होंने लोन ले लिया!.....वो मन्दार को कुछ भी मना नहीं करते....!''

-''क्यों?''

-''वो लड़का है न!''

-''याने?''

मेरे इस 'याने' के जवाब मैं मीनाक्षी ने कंधे उचका कर एक छोटी सी टेढ़ी मुस्कान के साथ 'क्या पता' की मुद्रा में हाथ का पंजा हिला दिया।

एक दिन शाम को मन्दार का फ़ोन आया, ''कल मेरा बर्थडे है अंकल... आपको आना है?''

-''कल मेरी रिकॉर्डिंग है, हो सकता है मैं लेट हो जाऊं...''

-''लेट तो लेट...लेकिन आप आइये ज़रूर! बारह तक तो हम लोग वैसे भी जागते ही रहते हैं।''

उस रात पवई वाली सड़क पर रोज़ाना से कुछ ज़्यादा ही ट्रैफ़िक जैम था और ठाणे के टोल नाके पर भी बेतरह लम्बी लाइन थी। एक घंटा तो यूँही लेट हो गया। मैं पहुंचा तो ग्यारह के आस पास हो रहे थे। पार्टी तो ज़ाहिर है ख़त्म हो चुकी होगी लेकिन लड़के ने बुलाया था तो जाना तो था। मैं पहुंचा तो मीनाक्षी ड्रॉइंग रूम में झाड़ू लगा रही थी। वो कमर तक झुकी हुई थी और उसकी नाइटी के अंदर से उसके सुडौल और भरपूर स्तन दिख रहे थे। जैसे ही मेरी नज़र वहां पड़ी और शायद एक सेकंड के लिए रुकी मैं ने संस्कार वश आँखें झुका कर बात बदल दी।

-''तेरा जन्म दिन था..तेरे दोस्तों ने खाया, पिया, गन्दा किया....सफ़ाई तो बेटे तुझे करनी चाहिए!..ये क्या कि गन्दा तुम करो और साफ़ तेरी बहन करे!'' मैंने हंसी हंसी में कहा।

-''लड़की है न भाई साब!'' मिसेज भागवत ने मेरे सामने तश्तरी में केक का टुकड़ा रखते हुए कहा, ''ये सब काम तो लड़कियों का है!''

-''वो ज़माने गए भाभी जी!......वैसे भी लड़कों को सब कुछ आना चाहिए!''

-''उसे तो दूसरे घर जाना है न.....उसे सब आना चाहिए....इस का क्या है, लड़का है! लड़का तो इधर ही रहने वाला है।''

बात को आगे बढ़ाने का कोई मतलब नहीं था।

-''ये देखो अंकल!'' मन्दार ने अपने गले में डली आधे इंच मोटी सोने की चेन मुझे दिखाते हुए कहा।

-''अरे वाह! लेकिन उस दिन तो ये था कि मैं इतना पैसा कहाँ से लाऊँ!.'' ...मैं ने मन्दार की चेन से नज़र हटा कर अनिकेत की तरफ़ देखते हुए दर्याफ़्त किया।

-''बीस हज़ार तो थे, पच्चीस हज़ार की मीनाक्षी की ऍफ.डी. तोड़ी...थोड़ा सा लोन ले लिया....हो गया!''

-''पैसा तो मन्दार के पास भी होता......होता तो कम से कम इसके पास पचास हज़ार निकलता लेकिन ये उड़ाता बहुत है।'' मिसेज भागवत ने मज़ा लेते हुए शिकायत के स्वर में कहा।

-''तो मीनाक्षी का ऍफ डी क्यों तोड़ दिया?...उसका पैसा तो उसका है...वो तो पॉकेट मनी और गिफ़्ट जोड़ जोड़ कर ......''

-''करती क्या है वो पैसे का....? बचाती ही तो रहती है....'' मिसेज़ भागवत ने मेरी बात काट कर कहा, ''कभी कभार मेले तमाशे में जाती है तो इधर उधर का कुछ सामान ले लेती है या फिर कभी कॉलेज कैंटीन में थोड़ा बहुत ख़र्च करती है. ...बस!''

-''इसका ख़र्च क्या है!,'' अनिकेत ने हँसते हँसते कहा, ''तो पैसा बैंक में रख के क्या करेगी?...इसकी सारी जरूरतें तो वैसे भी हम लोग पूरी करते रहत`हैं !''

-''लड़कियों को भाई साब अभाव की आदत होनी चाहिए। जाने कैसा घर मिले, कैसे हालात मिलें।''

-''छोड़ो अंकल ये सब।'' मन्दार ने अपनी घड़ी दिखाते हुए कहा, ''ये देखो! मेरे एक दोस्त ने प्रेज़ेंट दी है! अच्छी है न!''

घड़ी देखने, केक खाने और बात चीत के सिलसिले में रात के साढ़े बारह बज गए और वो दिन और वो बातें तमाम हो गए।

मीनाक्षी ने बी.कॉम. पास कर लिया था और मन्दार को कॉलेज में दाख़िला समझिए के मिल ही गया था। शायद अनिकेत को भी एक प्रमोशन मिल गया था। सारा कुछ बड़े इत्मीनान और सुचारू रूप से चल रहा था। इसी के चलते भागवत परिवार ने हफ्ते भर के सिंगापुर ट्रिप का प्रोग्राम बनाया। कहा तो मुझसे भी कि ''चलो।'' लेकिन मैं न जा सकता था न गया जिस टी वी चैनल में मैं काम करता था उसकी हालत ख़स्ता से ख़स्तातर होती जा रही थी और उसमें काम करने वालों

की नौकरियों को खतरा बढ़ गया था और सीनियर पोज़ीशन पर होने के नाते ख़तरा सब से ज़्यादा मेरी नौकरी को था। ख़ैर! भागवत परिवार शुक्रवार की रात को जाकर दूसरे शनिवार को वापस आने वाला था। उनके जाने के दो दिन बाद, रविवार की शाम को ही मेरे घर मीनाक्षी आ गयी।

-''तुम सिंगापुर नहीं गयीं?''

-''ऊँ हूँ!''

-''क्यों?''

-''मैं लड़की हूँ न!''

-''तो?''

-''तो डैडी ने कहा तुझे तेरा पति घुमाएगा!''

-''लेकिन मन्दार तो गया है।''

-''वो तो लड़का है।'' फिर उसने इस बारे में ज़्यादा कुछ कहे बग़ैर सीधे कहा, ''अंकल अकेले रात में डर लगता है...आप चल के वहां सोयेंगे प्लीज!''

-''तुम यहीं सो जाओ.....और जब तक वो लोग वापस नहीं आ जाते यहीं रहो।''

-''नहीं अंकल, बस रात में....दिन में उन्होंने अगर फ़ोन किया और मैं घर पर नहीं मिली तो वो मुझ पर शक करेंगे की कहीं मैं किसी के साथ....''

-''व्हाट नॉनसेंस!''

-''जाने दो अंकल... मैं रात को यहीं सो जाऊँगी....ठहरो, मैं अपने दोनों के लिए कुछ खाने को लेकर आती हूँ।''

-''ख़ाना तो यहाँ भी बना है।''

-''नहीं नहीं....मैं ने बहुत अच्छी भिन्डी बनाई है...मैं लाती हूँ।''

खाना खाने के बाद मीनाक्षी ने किसी कुशल गृहणी की तरह सब बर्तन समेटे, मेज़ साफ़ की।

-''कॉफी पिएंगे?...आपको तो कॉफी पसंद है!'' गीले हाथ अपने कपड़ों के किनारों से सुखाते हुए उसने मेरी तरफ़ देखकर पूछा। फिर बग़ैर मेरे जवाब का इंतजार किये वो मुड़ी और उसने कॉफ़ी का पानी उबलने रख दिया। लड़की जवान थी, सुघड़ थी, बहुत प्यारी थी, सामने थी, मुझसे निस्बत रखती थी। अचानक मुझे अपना ख़ाली घर भरा पूरा लगने लगा और अपनी ज़िन्दगी का वो पल बहुत रस भरा। जी किया उसे और उस पल को जकड कर संजो लूँ। बहुत दिनों से रीते मन में कुछ ऐसा उठा जो इस रिश्ते के लिए उचित न होता।

जब कॉफ़ी पीने आमने सामने बैठे तो उसकी स्कर्ट के नीचे से उसकी गेहुएं रंग की सुतवां जांघे घुटनो के ऊपर तक ज़रा ज़रा दिखाई दे रही थीं। मेरी निगाह एक पल वहां रुकी। मैं ने अपने आपको दुत्कारा और उधर से नज़र हटा ली। शायद उसने मेरी नज़र को ताड़ लिया था। बोली, ''यु नो..यु आर ए गुड मैन...आई लाइक बीइंग विथ यु...मेरा यहाँ से जाने का दिल नहीं करता।'' दिल में तो आया के उसे हाथ बढ़ाकर बाँहों में भर लूँ और कहूँ ''मुझे छोड़ कर मत जाओ,...कभी मत जाओ''...लेकिन तभी अचानक मेरे मुंह से निकला, ''मैं भी नहीं चाहता के तुम जाओ....'' फिर अपने आपको सँभालने और पॉलिटिकली करेक्ट करने के लिए जोड़ा ''लेकिन तुम अभी छोटी हो, तुम्हें...'' उसने मेरी बात काटते हुए ज़रा तेज़ी से कहा, ''मैं छोटी नहीं हूँ!'' मैं ने हिम्मत की, ''यु आर अ स्वीट गर्ल! तुम अगर मेरे दोस्त की बेटी न होतीं तो शायद मैं तुम से इश्क़ करने लगता!'' मिनाक्षी ने हंसकर अपने लम्बे बालों को झटका देकर पीछे किया और कहा, ''करने लगते क्या मतलब!'' लगते पर ज़ोर था। मैं समझ गया के वो समझ गयी है और समझती भी है। लगा शायद उसे भी मुझसे....लेकिन ऐसी बातों का कुछ कहा तो नहीं जा सकता था!

भागवत परिवार सिंगापुर से तमाम तस्वीरें/यादें/भेंटें लेकर वापस आया तो दिल में तो मेरे आया कि एक बार पूछूँ की भाई मीनाक्षी को साथ न ले जाने के पीछे वजह क्या थी। लेकिन न इस तरह की बात कभी निकली न मैंने ऐसा कुछ पूछने की ज़रुरत समझी। आख़िर मैं था कौन...दोस्त ही तो...उनके पारिवारिक मामलों में दख़ल देने का अधिकारी तो नहीं था! और सबसे बड़ी बात ये भी थी कि कहीं वे लोग ये न समझ लें कि मीनाक्षी अपने घर की हर बात मुझे बता देती है। लेकिन बात तो मेरे दिल में थी। सोचा इस तरह नहीं तो इसका हल दूसरी तरह से खोजा जाये।

-''अब तो ये लड़की ग्रेजुएट हो गयी अनिकेत...'' एक दिन मैंने कहा, ''इसके लिए एक ठीक ठाक लड़का ढूंढो...मैं भी इसकी शादी में साफ़ा वाफ़ा बाँधूं....!''

-''वोई चालू है...लेकिन हमारे में गोत्र, जाति, बिरादरी..इस सबके बड़े चक्कर हैं...एक मिलता है दूसरा नहीं मिलता...यु नो....मैं तो खुद चाहता हूँ जल्दी से जल्दी शादी कर दूँ इसकी, घर जाये अपने।''

दिल में ऐसा लगा जैसे किसी ने कांच पर खरोंच मारी हो! मिनाक्षी ने एक नज़र मेरी तरफ़ देखा। हमारी नज़रें टकराईं। शायद एकसा ही एहसास दोनों तरफ़ रहा हो!

बी कॉम के बाद मीनाक्षी ने पढ़ाई छोड़ दी। मन्दार जब से कॉलेज पहुंचा उसके कुछ ऐसे दोस्त बन गए जिन से वह गंदे गंदे शब्द भी सीख गया और उसका हाव भाव एकदम 'दादाओं' जैसा हो गया। कभी भी किसी को भी डरा धमका देना, दो चार तमाचे जड़ देना...! उसे अपने दोस्तों का भी साथ था और शायद कहीं इस बात का भी एहसास था कि उसका बाप पुलिस में है। वह घर में बाप से भले ही ज़रा लिहाज़ कर जाता था लेकिन माँ से बिलकुल नहीं डरता था और मीनाक्षी को तो वो बाक़ायदा किसी नौकर की तरह डाट देता था। अनिकेत सब जानते हुए भी उससे कुछ नहीं कहता था। ''वो लड़का है...ठीक हो जायेगा!'' कह कर टाल देता था।

मीनाक्षी जब से पढ़ाई छोड़ कर बैठी थी घर के काम की सारी ज़िम्मेदारी उस पर थी-झाड़ू/पोछा लगाने से खाना पकाने और खिलाने तक की! खाने में रोटी सब को गर्म गर्म चाहिए होती थी, ख़ास कर मन्दार को-दोनों वक़्त! जब वो खाना खाने बैठे रोटी उसके लिए उस वक़्त बने!

बरसात शुरू हो चुकी थी। भाद्रपद कृष्णा पक्ष की संकष्टी चतुर्थी थी। चारों तरफ़ पानी ही पानी था। मैं घर पर बैठा कुछ पढ़ रहा था। रात के नौ बजे की बात होगी दरवाज़े पर घंटी बजी...मीनाक्षी थी। बग़ैर कुछ कहे सुने सीधे अंदर आ गयी, बैठ गयी- ''क्या हुआ?'' मैंने पूछा। उसने कोई जवाब नहीं दिया। मैं उसके क़रीब गया। उसके लटके हुए चेहरे को मैंने ठोड़ी से अपनी तरफ़ किया तो देखा कि उसके चेहरे का बायीं तरफ़ नीला पड़ा है और उस तरफ़ की आँख में ख़ून उत्तर आया है।

-''क्या हुआ?''

वो लड़की सुबक सुबक कर रो पड़ी।

-''क्या हुआ?''

-''मुझे मन्दार ने बहुत मारा!''

-''क्यों?''

-''मैंने उससे कहा खाना रखा है गर्म करके खाले.....मेरी तबियत खराब है में लेटी हूँ...तो उसने मुझे छड़ी लेकर बहुत मारा''

-''अरे!...ऐसा पहले तो कभी नहीं किया उसने!''

-''वो हमेशा मुझे मारता है और मम्मी डैडी उससे कुछ नहीं कहते....वो कहते हैं जाने दो लड़का है!''

मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि मैं इस आहत-मन लड़की से क्या कहूँ या उसके लिए क्या करूँ। मैं ने उसे अपने सीने से लगा लिया और इससे पहले कि मैं उससे कुछ कहूँ वो धाड़ मारकर रो पड़ी। बोली, ''मेरी तबियत ख़राब है। मेरे

पीरियड्स चल रहे हैं। मेरे सर में, पीठ में दर्द है। मैं आज पूरा दिन उपवास से थी तो एक दिन मैं ने अगर उसके लिए गरम रोटी नहीं बनायी और अगर एक दिन वो अपना खाना गर्म कर के खा लेगा तो क्या हो जायेगा!''

-''तुम यहाँ कैसे आ गयीं...घर में....''

-''घर में कोई नहीं है। डैडी मम्मी किसी के घर गए हैं और मन्दार मुझे मारने पीटने के बाद किसी होटल में खाना खाने चला गया है।''

जैसा शुरू में कहा गया वो मेरे सीने से लग कर रो रही थी। मुझे उसकी तकलीफ़ से बहुत तकलीफ़ हो रही थी। लेकिन इस सबके बावुजूद मेरी मजबूरी ये थी कि मैं उसकी कोई मदद नहीं कर सकता था।

मेरी धड़कनें तेज़ थीं और मेरे दिल में वो इंक़लाब था जो सारे रिश्ते, सारी मर्यादाएं, सारी बंदिशें तोड़ कर मुझे समो लेना चाहता था। मेरे हाथ उस जवान और बेपनाह मेहबूब लड़की के गिर्द थे। फिर भी शायद मुद्दतों से मन में भरे गए 'सामाजिक मूल्य' थे जिनके चलते मैं सिर्फ़ उसकी पेशानी चूम पाने की हिम्मत जुटा पाया। इसके बाद उसकी गिरफ़्त और सख़्त हो गयी। उस वक़्त एक मिनट को फिर मुझे लगा कि शायद वो जज़्बा जो उसके लिये मेरे अंदर है वही शायद मेरे लिए उसके अंदर भी है। अगर एक सेकंड और वैसे ही गुज़रा होता तो बात और होती। वो तो अच्छा ये हुआ कि उस एक सेकंड में दिल में ये डर सा उगा कि ये न सिर्फ़ मेरे दोस्त की लड़की है, न सिर्फ़ हमारी बग़ल वाली बिल्डिंग की लड़की है, ये एक पुलिस के वरिष्ठ अफसर की लड़की है! और ये डर मेरे सारे इमोशंस पर भरी पड़ गया। फिर उस लड़की के साथ मेरी मुहब्बत भी मेरे सीने से लग कर रोती रही और मैं कुछ नहीं कर पाया!

उस दिन के बाद जब भी मैं मीनाक्षी के बारे में सोचता तो मुझे याद आती वो बात जो उसके दोस्त मुझ से कहा करते थे। ''मीनाक्षी फ़्लर्ट है अंकल!'' वो बात मेरी समझ में अब आई। ज़रूर होगी। ऐसे शख़्स को होना भी होगा। आख़िर कहीं तो इंसान को मोहब्बत, क़ुर्बत, सहयोग, हंसी मज़ाक़, दोस्ती, सपोर्ट और अपने वुजूद का और अपनी अच्छाइयों का एप्रूवल चाहिए न! घर पर ये सब न मिले तो बाहर सही! फिर लोग चाहे इस तलाश को 'फ्लर्ट' होना कहें या कुछ और!

कई बार कई कई तरह के ख़्याल आये, कई कई तरह के मंसूबे बने और मिलने और साथ होने के तरीक़े सूझे।

बहुत दिनों तक मैं ये भी सोचता रहा कि मीनाक्षी की मदद करने के लिए क्या करूँ। समझ में कुछ नहीं आया क्यों कि जो कुछ करने को था वो तो भागवत

परिवार को ही करना था। और उसमें कुछ कहना दख़लंदाज़ी होता।

इस बार काफ़ी अरसा बीत गया, तक़रीबन दो तीन महीने मीनाक्षी से मेरी मुलाक़ात नहीं हुई। वजह कुछ ख़ास नहीं, बस यूँही!

दिसम्बर की शाम को एक दिन टेलीफ़ोन की घंटी बजी। मीनाक्षी थी।

-''अंकल!..कैसे हो?!''

-''अरे...तुम हो कहाँ...बहुत दिन हुए...''

-''मैं सिर्फ़ आपको कॉल कर रही हूँ...बिकॉज़ यु आर दी ओनली वन आई केयर फ़ॉर!''

मेरे कान खड़े हो गए। अंदर एक धुकपुकी सी जागी

-''आपको मालूम है मैंने शादी कर ली?!''

-''शादी?'' मेरी समझ में नहीं आया कि क्या बोलूं।

-''हाँ! मैंने भाग के शादी करली....''

-''........''

-''मेरे माँ- बाप मेरे लिए पक्का शुद्ध ब्राह्मण ढूंढ रहे थे न....मैंने एक चर्मकार ज़ात वाले से शादी करली!..सारा जीवन तड़पते रहेंगे !...हू केयर्स!''

मेरा दिमाग जड़ हो गया। आवाज़ अटक गयी। मैं उसके 'हू केयर्स' के जवाब में कहना चाहता था 'आई डू!' लकिन तब तक लाइन कट गयी थी!

आत्म-हत्या

-''इसकी बातों में आ गए तो गुरु ज़मीन से भी जाओगे और ज़िन्दगी से भी जाओगे. इन अंग्रेज़ी पढों की करनी कुछ और कथनी कुछ और....तीर कहीं निशाना कहीं।'' बंड्या ने अपनी बुझती चिलम से लगातार कश खींचते हुए कहा।

-''बातें लगती तो ठीक हें वैसे उन लोगों की'' एक ने कहा।

-''यही तो करिश्मा है उन हरामियों का..अच्छे अच्छे लगते हैं अच्छा अच्छा बोलते हैं और फिर अच्छी तरह लूट लेते हैं''

-''बंड्या दादा! तुम जो भी कहो, ज़मीनें तो हमारी सूखी पड़ी हैं न...फ़सल तो हमारी अच्छी नहीं हो रही है न...पानी तो नहीं है न.....! बारिश का ठिकाना ही नहीं है.....तो अगर हम इस तरह मर रहे हैं तो अगर उनकी बात मान कर भी मर गए तो फ़र्क़ क्या है! हो सकता है उनकी बात में सच्चाई हो, हमारी हालत सुध ार ही जाये!'' दूसरे ने अपने मुंह से तम्बाकू की पीक थूकी।

-''फ़र्क़ ये है कि अभी बर्बाद होगे तो कम से कम ज़मीन तो अपनी रहेगी,'' बंड्या ने बुज़ुर्गी के लहजे में समझाया, ''उनकी मान के बर्बाद हुए तो वो तो साले हमारी ज़मीन भी ले जायेंगे! फिर हम खायेंगे क्या और बोएँगे क्या!''

बंड्या किसानों के बीच बैठा अपनी बुज़ुर्गी झाड़ रहा था। सूरज ढले के बाद छोटे से गाँव-चुड़ावा-के किसान आपस में घेरा बनाये बैठे विचार-विमर्श में थे। ये सिलसिला पिछले दो महीनों से हफ़्ते में दो बार तो बन ही जाता था। कुछ किसान परेशान थे, कुछ कन्फ़्यूज्ड थे, कुछ बौखलाए हुए थे। ऐसा सिलसिला तब से चल रहा था जब से महाराष्ट्र के परभणी ज़िले के इस छोटे से गाँव में नाथूराम बागवे और चंद्रकांत भोइर का आना जाना शुरू हुआ था।

नाथूराम बागवे कोंकण इलाक़े के कंकव्ली गाँव के एक मामूली किसान परिवार से था लेकिन खेती से पूरा पड़ता नहीं दिखा तो उसके पिताजी नौकरी के सिलसिले में सतारा आये और वहीं बस गए। तब से खेती-बाड़ी से उन सब का

रिश्ता कम हो गया था। कम हो गया था, समाप्त नहीं हुआ था। क्योंकि चाचा, ताऊ तो अभी गाँव में ही थे और खेती ही उनकी आमदनी का एकमात्र ज़रिया था। नाथूराम ने साइंस से एस एस सी किया। केमिस्ट्री उसका रुचिकर विषय था और बॉटनी उसे निहायत पसंद थी क्योंकि उसमें पेड़ पौधों की बातें थीं और पेड़ पौधों से तो उसका 'जीनिटिक' लगाव था। कृषि विज्ञान में ग्रेजुएशन उसने किया वरोरा से। बाबा आमटे के आनंद आश्रम स्थित यूनिवर्सिटी से। वहां उसके संस्कार सेवा से जुड़े और वहां उसने सीखा कि किस तरह केवल सही काम करना या किसी की सेवा कर देना या इलाज कर देना ही काफ़ी नहीं होता, जरूरी होता है किसी शख़्स या किसी स्कीम या किसी चीज को ऐसी नौबत तक पहुंचा देना जिससे वो सक्षम हो जाये, सेल्फ सफ़ीशेन्ट हो जाये,उसे फिर किसी बात के लिए किसी सहारे कि ज़रुरत न पड़े. वहीं उसने नेचुरल/आर्गेनिक खेती के तौर तरीक़ों के बारे में सीखा। इन्टरनेट पर भी इस सब के बारे में बहुत कुछ उपलब्ध था इसलिए उसने तमाम लोगों के रिसर्च पेपर्स और किताबें पढ़ीं और दुनिया के तमाम कृषि विशेषज्ञों से तबादल-ए-ख़्याल किये। जब उसने डिग्री हासिल कर ली तो नौकरी के लिए जद्दो जहद शुरू हुई। उस सिलसिले में उसकी मुलाक़ात मुंबई यूनिवर्सिटी के कृषि विभाग के प्रोफ़ेसर डाक्टर गोपाल पण्डे से हो गयी। प्रो. पण्डे को नौजवान बागवे की बातें और हौसले पसंद आये और नौकरी क्योंकि कोई ख़ाली नहीं थी इसलिए उन्होने इसे टेम्परेरी तौर पर रिसर्च एसोसिएट की जगह रख लिया।

डॉक्टर पांडे कृषि में पी एच्.डी थे और उनके कई रिसर्च पेपर्स प्रकाशित हो चुके थे। एकेडमिक क्षेत्र में उनकी बड़ी धाक थी। वो हमेशा नाथूराम से कहा करते थे, ''जी लगा के मास्टर्स कम्पलीट कर, दो चार रिसर्च पेपर्स लिख। दो चार रिसर्च पेपर्स लिखेगा, अपना कुछ नाम करेगा। कम से कम लेक्चरर तो हो जायेगा। फिर रास्ता खुला है।''

-''दूसरों के लिखे-पढ़े-कहे को एयर कंडिशन्ड लाइब्रेरी में बैठ कर कट-पेस्ट करूँ...?!''

- 'उसे रिसर्च कहते हैं! हर एक के बस का नहीं है!''

-''सर! खेती के बारे में कुछ करना है तो ज़मीन पे जा कर करना पड़ेगा। किसान के साथ। ये अंग्रेज़ी में लिख कर भारतीय किसान का क्या फ़ायदा! वो तो पढ़ा लिखा भी शायद नहीं है!.....जब मैं ज़मीन से जुड़ कर ऐसा कुछ कर लूँगा जिससे इस देश के किसान की तक़दीर संवर सके...तब ज़रूर अपने तजुर्बे लिखूंगा ताकि पढ़ने वालों को इबरत मिले!..अभी क्या लिखूं....?!''

-''तुझ से बात करना बेकार है!''

अप्रैल का महीना था। यूनिवर्सिटी में इम्तिहान हो चुके थे। मई से छुट्टियाँ होने वाली थीं। नाथूराम के घर वाले शिर्डी जाने का कार्यक्रम बना रहे थे। उसी गर्मी में बड़े ज़ोर शोर से महाराष्ट्र के गावों से किसानों की आत्महत्या की ख़बरें आ रही थीं। नाथूराम इस सब से बहुत व्यथित था। किसान आत्महत्या कर रहे थे क्योंकि उनकी फ़सल ठीक नहीं हो रही थी। उनके पास खाने को, अपने परिवार को खिलाने को नहीं था। बारिश दो साल से ठीक से नहीं हो रही थी। बैंक वाले किसानों को बहला कर अनाप-शनाप क़र्ज़े दे आये थे जो उन बेचारों ने अनजाने में ले लिए थे और अब उनके पास उसे अदा करने का पैसा नहीं था। इन आत्महत्याओं का सिलसिला बढ़ता ही जा रहा था। ''कब तक ये लोग बारिश के भरोसे जियेंगे!?'' नाथूराम ने अख़बार फेकते हुए कहा।

-''तो तू क्या भगवान् से लड़ेगा?''

-''भगवान् ने बुद्धि दी है, इस्तेमाल करो... !...बारिश के इंतज़ार में बैठ कर क्या होगा!''

-''ठीक है हम लोग शिर्डी चल रहे हैं न..बाबा से बारिश के लिए, सब किसानों के लिए प्रार्थना करना।''

-''मैं परभणी जा रहा हूँ।''

-''क्या?!....तू हमारे साथ नहीं आ रहा है?'' नाथूराम की मां को झटका लगा।

-''नहीं।''

-''परभणी काय को?''

-''परभणी जिले में एक गावों है चुड़ावा...मैं वहां जा रहा हूँ।''

-चुड़ावा क्यों?''

-'वहां किसान मर रहे हैं आई !''

-''तो किसान तो बहुत जगह मर रहे हैं...चुड़ावा ही क्यों?''

-''क्योंकि परभणी में मुझे फेसबुक पर एक मित्र मिला है जो कि किसान है और उसने खेती के नए तरीक़े ईजाद किये हें। हम दोनों गाँव वालों की मदद करेंगे। पंद्रह दिन मैं जाऊंगा, पन्द्रह दिन वो जायेगा!''

-''और पंद्रह दिन में किसान की तक़दीर बदल जाएगी?''

-''हालत तो बदल ही जाएगी!''

-''तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है बागवे!'' प्रोफ़ेसर पांडे ने लताड़ लगाईं,

''तुम फेसबुक पर मिलने वालों का विश्वास करते हो? रोज़ पढते हैं कि सोशल साइट्स पर लोग कितने 'फ़ेक' प्रोफ़ाइल्स बना कर बैठे हैं.....और दूसरी बात, हर बार पन्द्रह पन्द्रह दिन के लिए तुम्हें छुट्टी कैसे मिलेगी? यूनिवर्सिटी में कोई क़ानून है कि नहीं!''

बात ठीक थी। नाथूराम ने माना लेकिन गाँव जाने की लालसा सारी बातों को दबा गयी...

-''जाकर देखता हूँ सर !...परभणी वाला नहीं चलेगा, न चले। मुझे साल भर की स्टडी लीव मिलेगी मैं उसमें चला लूँगा। नहीं कर पाऊँगा तो वापस आ जाऊँगा लेकिन कोशिश तो करनी चाहिए न!''

प्रोफ़ेसर पांडे हालांके नाथूराम को डाटते रहते थे, उससे असहमत रहते थे लेकिन दिल में कहीं नाथूराम उन्हें अच्छा लगता था। नाथू में जोश था, लोगों का भला करने की चाह थी जो शायद प्रो. पांडे में भी थी लेकिन ज़िन्दगी के और जीने के चक्कर में वे इस बाबत कुछ कर नहीं पाए थे।

नाथूराम का परभणी का फेसबुक वाला दोस्त-चंद्रकांत भोइर- 'फ़ेक' नहीं था। किसान परिवार से था। पूना विश्वविद्यालय से उसने कृषि में स्नातक की डिग्री ली थी। डिग्री ले कर वो अपनी ज़मीनों पर गाँव में वापस आ गया था। परभणी में उसका पुश्तैनी मकान था जहाँ वो लोग तीन पीढ़ियों से संयुक्त परिवार में रह रहे थे। वहीं पास के गाँव में उनकी अच्छी ख़ासी खेती थी। चंद्रकांत अपने खेतों में ख़ुद के ईजाद किये नए नए तजुर्बे करता रहता था और उनके बारे में फ़ेसबुक पर लिखता रहता था। इसी से उसकी और नाथूराम की इन्टरनेट पर मुलाक़ात हुई थी। चुड़ावा के किसानों की तकलीफ़ ने उसे भी दुखी किया था। वो चुड़ावा जा चुका था। उसने वहां के सरपंच से किसानों की मदद की बाबत बात भी की थी लेकिन सरपंच ने चंद्रकांत के कहे को एक मामूली किसान की बातें समझ कर हंसी में टाल दिया था।

उसके बाद चंद्रकांत ने चुड़ावा का इरादा छोड़ दिया था। फिर अचानक नाथूराम बागवे चंद्रकांत भोइर से फेसबुक पर एक दिन फिर टकरा गया। दोनों के पास आइडियाज़ थे, दोनों फ़ॉरवर्ड लुकिंग थे, दोनों में चुड़ावा का जज़्बा फिर जाग उठा। जब मिले तो दोनों चंद्रकांत की मारूति वैन में बैठकर चुड़ावा गए। सरपंच से मिल कर उन्होने सारे किसानों से मीटिंग करने की बात की।

-''क्यों?...किसानों से मीटिंग कायको?...तुम क्या लीडर है?''

-''हम किसानों को बतायेंगे कि केवल बारिश पर ही निर्भर मत रहो।''

-"तो ये बताने को तुमीछ मांगता है?!...मैं नईं बताया क्या उनको!?"

-"हमने भी बताया तो क्या हुआ! किसी का भला होता हो तो उसमें क्या !"

-"मेरा क्या?"

-"मने?"

-"मने मेरा क्या?...मैं तुम लोग का फारमर लोग के साथ मीटिंग बिठाएगा तो मेरा क्या?....कितना देगा?"

-"हम यहाँ लेने देने नहीं आये हैं। न हमारा इसमें कोई फ़ायदा है।"

-"आ.....ए....हाय...!" सरपंच मंदार शिर्के ताली बजा कर हंसा, "तुम्हारा कोई फ़ायदाछ नईं हाय...! ऐसे इ आइले तुम गाड़ी चला के इतनी दूर से....!... चूतिया बनाते हो...!....जाओ...मेरे गाँव में तुम्हारा ये काला जादू चलने वाला नईं हाय..!"

बहुत दलीलें दी गयीं लेकिन सब बेकार। नाथूराम और चंद्रकांत के किसानों से मिलने के लिए कोई मीटिंग नहीं बुलाई गयी। रात को परभणी वापस आते में दोनों ने सोचा 'न बुलाएँ मीटिंग, हम हर एक से मिलेंगे'। दूसरे दिन से सिलसिला शुरू हुआ। सुबह गाँव पहुंचते थे, हर एक के खेत में जाते थे। कोई मिला तो ठीक नहीं तो सीधे बस्ती में जाते थे और वहां किसी एक से अपनी बात करने लगते थे, बाक़ी लोग अपने आप आ जाते थे और मजमा जुटने लगता था।

-"बारिश इस बार भी नहीं हुई तो?!"

-"तो क्या करेगा बाबा....भगवान् का जैसा मर्ज़ी..!"

-"भगवान् ने पैदा किया है भगवान् ने कहा है कि हर जीव के भरण पोषण की ज़िम्मेदारी वो लेता है लेकिन अगर हम हाथ पैर ही न चलाएँ तो क्या खा सकेंगे?"

-"हाथ पैर तो हम चलाते हैं फिर भी अगर हमारी क़िस्मत में नहीं है तो हम क्या करें?"

-"हाथ पैर के अलावा भगवान् ने बुद्धि भी तो दी है!"

-"बुद्धि से पानी बरसेगा?!" एक ने कहा और सारे किसान हंस दिए। कुछ इस बहस को बेकार कहते हुए वापस चले गए, कुछ जो रुक गए वो भोइर और बागवे को बेवक़ूफ़ करार देते रहे।

पांच-छह दिन तक ऐसे सिलसिले अलग अलग जगहों पर चलते रहे। कुछ लोग चुपचाप अब भी इन पर हंसते रहे, कुछ अब सवाल पूछने लगे, कुछ वक़्त काटने के लिए वहां बस खड़े होने लगे।

-''पानी बोर वैल में भी मुश्किल से आता है। पीने के लिए दिक़्क़त है ऐसे में खेती क्या करें?''

-''बोर वैल में पानी, हमें मालूम है, बस ४०० फुट तक है। थोड़े ही दिनों में समाप्त हो जायेगा. पोखर सब सूख गए हें. तो इसकी ज़िम्मेदारी किसकी है?. ...तुम्हारी...सबकी..!''

-''कायको?....हमारी कायको?''

-''इसलिए कि जब बारिश आई, पानी बरसा, तो तुमने पानी संचय करने का कोई इंतज़ाम नहीं किया।''

-''पानी संचय!?..अरे पानी बरसता है तो क्या बाल्टी में भर के रखूँ?..वो कितना दिन चलेगा ?...क्या बात करता है तुम!''

-''बाल्टी में रखा पानी दो दिन चलेगा?''

-''चलो माना! दो दिन चलेगा!''

-''तो अगर पानी बाल्टी की बजाय कुएं में भर कर रखो तो महीना भर चलेगा?''

-'' हाँ!''

-''ऐसे ही ज़मीन के अन्दर अगर पानी जमा करके रखो तो छ्ह महीने चलेगा! तालाब खोदकर भर लो तो साल भर चलेगा!... फिर यदि साल भर बारिश नहीं हुई तो भी पानी की कमी नहीं होगी।''

सब किसानों ने एक दूसरे की ओर विस्मय से देखा- ''ये तो कभी सोचा ही नहीं था!''

-''मैंने अपने खेतों में किया है। गाँव में दो तालाब बनाये हें।'' चंद्रकांत भोइर ने समझाया, ''हमेशा भरे रहते हैं इसलिए पानी की कभी भी कमी नहीं पड़ती। हम आपको बतायेंगे की ये सब कैसे कर सकते हें।''

उस मजमे में बंड्या भी था। बोला- ''एक बात पूछूं?''

-''क्या?''

-''तुम इधर कायको आया?''

-''तुमको ये बताने कि बारिश पर ही निर्भर मत रहो...पुरुषार्थ करो!''

-''कायको?''

-''माने?''

-''माने हमको ये बता के तुम्हारा क्या फ़ायदा?''

-''हमारा क्या फ़ायदा?!....कुछ नहीं!''

-''ये देखो भाई लोग,'' बंड्या ने सब की तरफ़ देख कर कहा, ''ये आया अपना किराया ख़र्च करके, पेट्रोल फूँक के, अपना टाइम लगा के-हमारा मदद के लिए.....इसमें इनका कोई फ़ायदा नईं....ये भगवान् हैं.!...हें हें हें हें....!''

सब किसान हंस दिए।

मन्या नहीं हंसा. उसने कहा, ''तुम इसका सुनता तो है नईं...इसे बोलने तो देओ कि ये क्या बताने आया है...!''

-''ए मन्या ! चुप कर!'' मजमे में से एक किसान ने धमकाया, ''ये शहर के पढ़े लिखे हरामी लोग हंय....ये हमारे मित्र नय हंय....ये सब साले अपने फायदे के लिए इदर आयेले हंय! इनका फ़ायदा क्या हाय वो ये ही जानते हंय!''

मन्या चुप हो गया लेकिन शांत नहीं हुआ। उसकी जिज्ञासा ज्यों की त्यों बनी रही।

फिर एक तेज़ तर्रार किसान ने नाथूराम से मुख़ातिब हो कर कहा, ''इस गाँव में तीन आदमी आत्महत्या कर चुके हें। हमें और आत्महत्याएँ नहीं चाहिए। तुम लोग अपना ज्ञान कहीं और बांटों और यहाँ से जाओ।''

नाथूराम और चंद्रकांत दोनों मजबूर होकर वापस चलने लगे तो सरपंच ने धीरे से लेकिन ज़ोर दे कर कहा, ''जाओ....अब आये तो अच्छा नहीं होगा!''

-''एक बात मैं भी पूछूं?'' चंद्रकांत ने सरपंच से पूछा।

-''क्या?''

-''किसानों के फ़ायदे से तुम्हारा क्या नुक़सान होगा? गाँव के लोग समृद्ध होंगे तो सरपंच तो तुम ही हो, नाम तो तुम्हारा ही होगा!''

जवाब सरपंच के साथी से आया, ''अबे चूतिये!....अगर गाँव वाले समृद्ध हो गए, सक्षम हो गए तो साहेब को कौन पूछेगा बे?!....हें हें हें हें...!''

सरपंच ने साथी की ओर घूर के देखा। उसका हँसना बंद हो गया। फिर सरपंच-मंदार-ने चंद्रकांत से कहा- ''तुम्हारा इरादा क्या है? तुम चाहते क्या हो?''

-''मैं चाहता हूँ के गाँव में ख़ुशहाली हो।''

सरपंच चुप हो गया। बग़ैर बोले चला गया। उसके साथी भी उसके पीछे चले गए।

उसी शाम को बंड्या ने अपने तजुर्बे से किसानों को ये समझाने की कोशिश की थी के यदि नाथूराम और चंद्रकांत की बातों में आ गए तो 'जान से तो जा ही रहे हो, ज़मीनों से भी जाओगे......क्योंकि इनकी कथनी कुछ और है और करनी कुछ और।' चाहे इत्तेफ़ाक़ हो या जान बूझ कर ये बात कुछ इतनी ऊंची आवाज़ में कही

गयी थी के चंद्रकांत और नाथूराम सुन लें। दोनों वैन की ओर चल ही दिए थे।

-''चल यार......'' नाथूराम से चंद्रकांत ने कहा, ''दो महीने होने आए यहाँ आते आते....जब किसानों को ही नहीं पड़ी तो हम कहाँ तक सर मारेंगे....बंद करें यहाँ आना।''

गाड़ी का दरवाज़ा खोला ही था कि एक किसान- मन्या-पास आया।

-''आपकी बातों से मैं सहमत हूँ। हम इस तरह तो मर ही रहे हें. आपकी बात मानने में मुझे कोई हर्ज नहीं है।''

नाथूराम की नसों में फिर जोश दौड़ गया। मन्या को दूसरे दिन से 'नाथू' और 'चंद्रू' ने सक्षम होने के तरीक़े बताये।

-''पानी भगवान बरसाता है.....जमा करना हमारा काम है। इसके लिए कृत्रिम तालाब बनाने चाहिए, कुएं खोदने चाहिए ताके साल भर पानी मिल सके! खेती के लिए ज़मीन की पैदावार कैसे बढ़ाई जाये। कौन सी फ़सल कब उगाई जाये। बुवाई कितनी कितनी दूर पर की जाये, बूँद बूँद सिंचाई के लिए व्यवस्था ऐसे कैसे की जाये के पानी बिलकुल बर्बाद न हो। आस पास के दो किसान मन्या के कहने पर और आ गए। वे भी नाथू के बताये तरीक़े अपनाना चाहते थे।

-''नौकरी छोड़ दूंगा, क्या मतलब?'' प्रोफ़ेसर पाण्डे ने नाथूराम से पूछा।

-''वहां मेरी ज़रुरत है।''

-''जानते हो नौकरी कितनी मुश्किल से मिलती है!?''

-''लोगों की सेवा का मौक़ा भी आसानी से नहीं मिलता सर!''

-'' तुम तो कहते थे पंद्रह पंद्रह दिन के लिए जाओगे! देख लिया न कि ऐसा नहीं होता!....ऐसा करो...छुट्टी ले लो!''

-''साल भर की?''

-''मैं सैन्कशन करवा दूंगा!...सबतिकल!...रिसर्च करो, स्टडी करो....जो भी करो बस इस तजुर्बे को लेकर एक किताब या पेपर पब्लिश कर देना।''

-''बिलकुल करूंगा....! थैंक यू सर!'' नाथूराम ने पण्डे जी के चरण छुए। गुरु ने आशीर्वाद दिया।

नाथूराम और चंद्रकांत का काम चुड़ावा गाँव में तक़रीबन साल भर चला। इस बीच जितनी भी बारिश आई उससे कृत्रिम तालाब नुमाँ बनाये गए और खेती के और सिंचाई के तरीक़े बदले गए। जब फ़सल जमने लगी तो और किसानों की नज़रों में चढ़ने लगी। एक दिन एक सरपंच का आदमी मिला- ''किसानों से मिलते हो. .....साहेब से भी तो मिलो''

लगातार मेहनत के बाद मन्या और आस पास के लोगों की फ़सल अच्छी हुई और उन्हें पानी की तकलीफ़ भी नहीं हुई। इतना इंतजाम हो गया था कि यदि बारिश अगले साल तक न हो तो भी वे अपनी पानी की ज़रुरत पूरी कर लेंगे।

एक दिन शाम के मन्या के खेत के पास चंद्रकांत और नाथूराम बैठे भाखरी और पिठ्ला खा रहे थे कि गाँव के कुछ किसान आए और उन्हें घेर कर खड़े हो गए।नाथू ने देखा लेकिन उन पर ध्यान नहीं दिया। वो सर झुका कर खाने में लगा रहा।

-''साहेब!'' एक किसान ने पुकारा।

-''क्या?''

-''मन्या की खेती देख कर हम आपके पास आए हैं।!''

-''अच्छा....!''

-''हम अपनी ज़मीन के कागज़ लाये हैं. ये भी ले लेओ...हमारी ज़मीन पर भी ऐसी ही फ़सल पैदा करो....!''

-''हम तुम्हारी ज़मीन के कागज़ात ले कर क्या करेंगे?''

-''तो क्या तुम हमारी ज़मीने नहीं लोगे?''

-''हम तुम्हारी ज़मीन का क्या करेंगे?''

-''हमको बताया गया था कि तुम हमारी ज़मीने ले लोगे!''

-''ज़मीने तुम्हारी हैं...मैं कैसे ले सकता हूँ....मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए. ..तुम खुश हाल हो जाओ.....बस!''

दूसरे दिन से गाँव के बचे हुए दूसरे खेतों पर काम शुरू हो गया। भगवान् ने भी मदद की और अषाढ़ में बारिश हो गयी, ज़मीनें गीली हो गईं और कुछ कुछ कुओं में भी पानी भर गया।

इसी साल दो महीने बाद सरपंच के चुनाव भी होने थे। चुनाव में मंदार शिर्के को इस बार भी निर्विरोध चुने जाने का पूरा भरोसा था. लेकिन गाँव वाले कुछ और सोच रहे थे!

-''देख रहे हो दादा क्या हो रहा है तुम्हारे आस पास !?'' मंदार के सहयोगियों में से एक ने एक दिन कह ही दिया।

-''क्या?''

-''गाँव वालों में भावना ये है कि बंड्या को भड़का कर तुम्हीं ने नाथूराम और चंद्रकांत के ख़िलाफ़ 'पोपोगंडा' करवाया था''

-''किया तो सालों ने काम.....! उनको रोका किसी ने?''

-''बस! और उनका काम हो गया!''

-''क्या मतलब?''

-''मतलब ये कि सारे गाँव वाले बंड्या को नाम धर रहे हें और तुम्हारे नाम से थू थू कर रहे हें! वो कहते हैं कि तुम्हारे ही कारन गाँव की तरक़्क़ी में देर हुई। तुम आने देते तो चंद्रू और नाथू बहुत पहले ही काम शुरू कर देते!....लोग मन्या को सरपंच बनाने के चक्कर में हैं!''

-''ऐसा?''

-''ऐसा!......तो सोच लो....ये जो किसानों की आत्म हत्या के नाम पर, गाँव में सूखे के नाम पर, देभेल्प्मेंट के नाम पर...जिस जिस नाम पर जो जो सरकारी -गैर सरकारी रक़म आती है वो तो जाएगी ही, जो इधर उधर कटौती करके आपके खाते में जाती है वो भी जायेगी!''

-''ऐसा?''

-''ऐसा!....लाखों का मामला अचानक ठप्प हो जायेगा!....फिर हमारा सोचो. ...हमारा क्या होगा!...हम तो आपसे ही बंधेले हें!''

-''ठीक है!'' मंदार ने दूर अंतरिक्ष में देखते हुए गहरी सोच के साथ कहा।

चार दिन बाद नारियली पूर्णिमा थी। बहन का सख़्त बुलावा था। नाथूराम और चंद्रकांत को राखी बंधवाने परभणी जाना ही था। सुबह सुबह का वक़्त था। मौसम में हल्की हल्की फुहारें थीं और हवा में ज़रा ज़रा ठंडक। दोनों वैन में बैठकर परभणी के लिए चल दिए। वैन गाँव से निकल कर सड़क पर मुड़ने को हुई ही थी कि दायीं तरफ़ से न जाने कैसे पूरी रफ़्तार से दौड़ता हुआ एक ट्रक आया और वैन से पूरे ज़ोर से टकरा गया। मारुती वैन के परख़च्चे उड़ गए और उसमें बैठे दोनों नौजवान हमेशा के लिए गाँव से क्या दुनिया से ही चले गए!

उस दिन गाँव की लड़कियों ने शोक-दिवस मान कर अपने भाइयों को राखी नहीं बांधी और न गाँव के किसी घर में रात को चूल्हा ही जला। इस साल जब गणपति बैठाये गए तो झांकियों में चंद्रू और नाथू के पुतले बनाकर भी रखे गए। समय गुज़रता गया लेकिन फिर कभी चुड़ावा गाँव से किसी किसान के आत्महत्या की ख़बर नहीं आयी!

कुल्फ़ी

-"नाम क्या है तुम्हारा?"

-"कुल्फी।"

-"काम जानती हो? कहीं किया है?"

-"पिछले गाओं में।"

एक आध सवाल मिसेज सेन ने और पूछे लेकिन वो सब रस्मन क्योंकि रखना तो उन्हें कुल्फी को था ही। पिछले पंद्रह दिन से घर की झाड़ू, चौका बर्तन करते करते वो परेशान हो गयीं थीं। लेकिन सेठानी को सेठानी-गिरी दिखानी चाहिए इसलिए बात उन्होने ऐसे की कि जैसे 'काम करना हो तो करो नहीं तो जाओ।' कुल्फी ने कोई हुज्जत नहीं की। न पैसे पर न समय पर न काम पर। दरअसल मिसेज़ सेन कुल्फी के आत्मविश्वास, तेवर और उसकी पूरी पर्सनालिटी से बेतरह मुतासिर भी हुईं थीं और कहीं उन्होने उसके सामने अपने को कमतर भी पाया था। हालांकि ये 25-28 साला कुल्फी निपट काली थी लेकिन उसकी खाल ग़ज़ब की चिकनी और सुतवां थी। उसका चेहरा गोल और निहायत ही ख़ूबसूरत था। चेहरे पर दो बड़ी बड़ी आँखों में ग़ज़ब की ताब थी और जब वो लम्बी सीधी खड़ी होती तो ऐसी कि अच्छे अच्छों का कॉन्फ़िडेंस हिल जाये। माथे पर लाल बड़े टीके और हाथों में भरी भरी कांच की चूड़ियों में छरछरे लेकिन भरे भरे बदन वाली कुल्फी टाइट लिपटी साड़ी पहने ऐसे लगती थी जैसे वो कोई महारानी है जिसके दिन फिर गए हैं। कमरे में दाख़िल होते हुए सेन साहेब ने पहली बार जब एक यूँ ही बेमतलब सी उचटी नज़र कुल्फी पर डाली तो फिर नज़र हटा नहीं पाये। मिसेज सेन ने यह देख लिया और मन ही मन प्रण किया कि जब कुल्फी घर में काम करेगी तो या तो सेन साहेब को वो बाहर भेज दिया करेंगी या फिर उनके सामने ही डटी रहेंगी। हालाँकि सेन साहेब का इतिहास ऐसा नहीं था लेकिन मर्द की ज़ात! कुण्डलिनी में सबसे नीचे वाला चक्र कब जागृत हो जाये। और 'कुल्फी जैसी औरतों का क्या भरोसा'!

क़िले के पीछे वाले ख़ाली पड़े मैंदान में वक़्तन फ़ी वक़्तन क़बाइली, ख़ाना बदोश आदिवासी इत्यादि नस्ल के लोग गाँव गाँव घूमते हुए आ जाया करते थे और डेरा डाल लिया करते थे। बांस और कपड़ा साथ रखते थे, जगह देखी और तम्बू सा गाड़ दिया,रोटी बाहर खुले में बना ली और अंदर सो लिये। दिन भर जो मिला सो काम किया, कुछ कमाया। ये वो ज़माना था जब किले के मैदान के चारों तरफ़ चौहद्दी नहीं बनी थी, प्लास्टिक शीट्स बनना शुरू नहीं हुआ था और लोगों के दिलों में ग़रीब ग़ुरबों के लिए महसूसात थे और इंसान की शक्ल में हर तबक़े को जीने का हक़ था।

सेन साहब झाँसी में कोठी कुआँ के पास रहते थे। बज़रिया से ज़रा आगे पानी वाली धर्मशाला के इधर ही। क़िले के मैदान से कोई ज़्यादा दूर नहीं था। शायद किसी काम वाली ने या महराजिन ने ज़िक्र किया हो कि इन के घर झाड़ू बर्तन करने वाली की ज़रुरत है और शायद कुल्फी ने सुन लिया हो और वो चली आई हो! तभी मिसेज़ सेन ने पूछा था, ''काम जानती हो? कहीं किया है?''

वैसे सेन साहेब का घर जिसे सेन बाड़ी के नाम से जाना जाता था झाँसी शहर के कुछ जाने माने घरों में से था। पैसे वाले थे, वैभव वाले थे, इज़्ज़त वाले थे और सन '75 के आस पास की बात करो तो शहर भर के तीन चार घरों में से वो एक थे जिनके पास 'अम्बेसडर' गाड़ी थी! बच्चे उनके दो थे। दोनों बड़े-एक लखनऊ के के.जी.एम.सी. मेडिकल कॉलेज में एम.डी. कर रहा था दूसरा रुड़की से इंजीनियरिंग कर के फ़ौज में भर्ती हो गया था सो काम पर था। घर बड़ा था लेकिन रहने वाले दो बुज़ुर्ग मियां बीवी ही थे।

जब से कुल्फी ने काम शुरू किया था घर की हर चीज़ चमकने लगी थी। तांबे के लोटे, कांसे की थालियां, अल्युमिनियम का कुकर, दालान का फ़र्श, आले, मेहराब, दरवाज़े, रोशनदान-सब! और ये नहीं कि उसे कोई बहुत वक़्त लगता हो। हाथ यूँ चलाती थी जैसे बिजली लपलपा रही हो। सेन बाबू की पत्नी को बड़े दिनों बाद कोई काम वाली 'पसंद' आई थी। पच्चीस साल काम करने के बाद, चार साल पहले, जब से लछमी नहीं रही तब से उनका रोना यही था कि घर में ठीक से झाड़ू नहीं लगती, कोनों में कूड़ा जमा रहता है, कुर्सियां जब तक ख़ुद न हटाओ हटाई ही नहीं जातीं वग़ैरह वग़ैरह! वे सुखी नहीं होतीं तो कच कच करतीं, उनकी कच कच से कामवालियां दुखी हो जातीं और या तो और ख़राब काम करना शुरू कर देतीं या छोड़ कर चली जातीं। इस बार जब से कुल्फी आई है-काम इतना आला दर्जे का होता है कि 'मालकिन' के कहने को कुछ रह ही नहीं जाता। कुल्फी पिछले तीन महीनों

से टिकी है। बिला नाग़ा आ जाती है और दिल से काम करती है। मांगती कुछ नहीं है लेकिन उससे खुश हो कर उसे मिसेज़ सेन खुद ही अक्सर कोई पुराना पड़ा कपडा या कभी कुछ पैसे दे दिया करती हैं। कुल्फी ज़्यादा बात भी नहीं करती। कुछ पूछा तो हाँ-ना में जवाब दे देती है वरना चुप रहती है। अपने बाल पीछे को बांधे हाथों में कांच की चूड़ियाँ खनखनाती कुल्फी जब काम करती है तो मिसज़ सेन अपने पति पर एक दम पुलिसिया नज़र रखे रहती हैं!

पिछले कुछ दिनों से मिसेज सेन कुल्फी को रोज़ाना बाक़ायदा नाश्ता करवाने लगीं हैं। नाश्ता क्या तक़रीबन खाना ही होता है। रोटी-तरकारी या परांठे-तरकारी और उसके बाद गर्म चाय। हुआ ये कि बीच में लखनऊ वाले लड़के की तबियत लगातार नरम रहने लगी थी और उसने लिखा था कि शायद उसे इस बार इम्तेहान में बैठने में भी परशानी हो। मिसेज सेन ने पंडित जी से पूछा 'उपाय।' पंडित जी ने कुंडली देखी। दशा ठीक थी, समय ठीक था, कोई गृह वक्री भी नहीं था। पंडित जी को कोई कुलक्षण दिखाई नहीं दिया। उनकी समझ में ही कुछ नहीं आया के क्या बताया जाये. पंडित जी का छोटा लड़का जो उनके साथ जजमानी सीख रहा था बोला, ''कमजोरी होगी बाप्पू!..भातरबरी कंपाउंड रेड लेबल पीने को बोलो।''

-''ये तुझे किसने बताया?'' पंडित जी लड़के की बुद्धिमत्ता पर चकित हो गए।

-''अरे फिल्ल्लम के पेले पेले कित्ती बार तो एड दिखाते हैं।''

-''अबे गधे! हम पंडिताई करते हैं के डाक्टरी?'' पंडित जी ने लड़के के चपत लगाई, ''ऐसे करेगा तो घर कैसे चलाएगा...दवा बता दूँ तो अपना नॉन तैल कैसे चलाऊं...''

-''नॉन तो उनका खाते हैं...तो उनको तो सही सलाह देनी पड़ेगी न।'' लड़के ने वफ़ादारी की बात की।

-''अबे उल्लू! पंडित की सही सलाह होती है पूजा।''

तो जिन जिन दिनों में उनके पास कोई काम नहीं था उन उन दिनों का पंडित जी ने जुगाड़ बैठा लिया। पंडित जी ने तीन तरह की पूजा बताई-हर मंगल, शनिवार और पूर्णिमा की और इसके अलावा बताया कि एक वक़्त का किसी ज़रूरतमंद को भोजन कराया जाये। पूजा तो ख़ैर पंडित जी ही आते थे करवाने। वो पूजा करवा कर प्रसाद और सीधा ले जाते थे। कच्चा खाना वो खाते नहीं थे इसलिए घर में पकाया हुआ खाना खिलाने के लिए मिसेज़ सेन को कुल्फी सूझी।

-''ख़ाना?!...कायको?...नईं नईं...पैसा दे दो खाना मत दो...!.''

-''अरे पैसा थोड़े ही काटेंगे तुम्हारा।''

-''नईं...!''

-''अरे...ऐसा भी क्या...''

-''घर वालों को पसंद नईं है।''

-''तो यहाँ खा लेना, हम खाते हैं तुम भी खा लेना।'' कुल्फी बड़ी मुश्किल से अनमनी हो कर मानी।

महीने भर बाद लखनऊ वाले लड़के की तबियत में सुधार आने लगा तो मिसेज़ सेन का पंडित पर विश्वास दृढ़ हो गया। पूजा तो ख़ैर बंद हो गयी कुल्फी का नाश्ता खाना एक बार शुरू किया तो अब बंद कैसे कर देते! पहले पहल कुल्फी खाना बांध कर ले जाती थी फिर वहीं बैठ कर खाने लगी।

-''तुम्हारे घर में कौन कौन है?'' एक दिन खाना खिलाते हुए मिसेज सेन ने पूछा।

-''मेरे तीन मरद और मैं''

मिसेज़ सेन को लगा उन्होंने कुछ ग़लत सुना। ताज्जुब से पूछा,''तीन मरद!''

-''हाँ हम में ऐसा होता है....किसी मरद की एक से जादा जनानियां किसी जनानी के एक से जादा मरद।''

-''तो.....'' मिसेज सेन से कुछ बोलते नहीं बना।

-''तो क्या? आपकी दुरपती के तो पांच पांच थे...मेरे तो उससे दो कम हैं. ..हैं हैं..'' उसकी हंसी में कोकिल की कूक थी और प्यार का शहद।

-''तीनो में लड़ाई नहीं होती।'' मिसेज सेन से शायद रहा नहीं गया, उन्होंने पता नहीं कितना सोच के पूछा।

-''कभी कभी होती है।'' कुल्फी ने सपाट सा जवाब दिया।

-''बच्चे नहीं हैं?''

-''नईं''

फिर कुल्फी एकदम चुप हो गयी ऐसे जैसे 'बेकार की बातें मत करो' और मिसेज़ सेन को कोई और सवाल सूझा ही नहीं सो वो भी चुप हो गयीं। बात ख़त्म हो गयी।

शाम को मिसेज सेन ने अपने पति को जब ये सब बताया तो सेन साहेब ने अपनी बुजुर्गी वाले बंगाली अंदाज में किसी बहुत बड़े जानकार की तरह कहा, ''आर की! इ लोग शाला छिनाल होच्छे! इ लोग का क्या भरोसा...चोर आछे! नज़र रखो कुछ उठा के ले गिया तो बस!' उस वक़्त सेन साहेब को ये ख़्याल नहीं आया

कि घर में कुल्फी के आते ही कैसे उनका रबिन्द्र शंगीत गुनगुनाना शुरू हो जाता है! गुनगुना ही सकते थे, गाने लगते तो बीवी आँखों से आग बरसाने लगती!

उस दिन शाम का समय था। सूरज ढल चुका था। खंडेराव दरवाज़े के बग़ल वाले क़िले के मैंदान से क़बाइलियों के चूल्हा जलने से धुआं वातावरण में फैला हुआ था। इस साल ज़्यादा परिवार यहाँ नहीं ठहरे थे। केवल चार पांच ही थे। दो के बच्चे थे-छोटे छोटे रिरियाते हुए। कुल्फी और उसके मरद भी इसी जगह रहते थे। आज मरद लोग मंडली बनाये एक साथ कुछ खुसुर पुसुर कर रहे थे। कुल्फी ने जर्मन सिल्वर की एक टेढ़ी मेढ़ी तश्तरी में कुछ भुने हुए टुकड़े ला कर उन्हें दिए और वहीं बैठ गयी।

एक ने कुल्फी के लिए एक टूटे गिलास में हरी हरी कांच की बड़ी बोतल से कुछ उंडेल दिया। कुल्फी ने लिया और सीधा गटक लिया। एक मर्द फूटा, ''कुल्फी! अपनी हालत देख रही है...हम कबाइली हैं..उठाई गीरे हैं...आज हम तेरे आसरे हैं....जो काम हम करने आए हैं हमें करना ही चाहिए।''

दो मिनट के लिए ख़ामोशी रही। सब ने एक दूसरे को एक नज़र देखा। फिर कुल्फी ने अपना गिलास बोतल वाले के आगे बढ़ा दिया। बोतल वाले ने उसमें फिर शराब भर दी। कुल्फी फिर वो एक सांस में गटक गयी और गिलास वहीं पटक कर उठ कर वापस चली गयी। एक मर्द ने दांत पीसे और भिंचे मुंह आहिस्ता से कहा, ''मादर..!'' दूसरा बोल पड़ा, ''इसको समझाना पड़ेगा...ये ऐसे नहीं मानेगी।'' तीसरा अपने मुंह में गरमा गर्म भुने गोश्त का टुकड़ा चबा रहा था इसलिए बोला तो कुछ नहीं उसने सिर्फ़ सहमति में सर हिलाया और हाथ से 'बिलकुल ठीक बात' जैसा इशारा किया।

दूसरे दिन कुल्फी सेन बाड़ी जब काम के लिए आई तो उसकी बायीं आँख में लाल लाल ऐसा था जैसे कि ख़ून उतरा हो और उसके हाथों की चूड़ियाँ कम थीं.

-''ये क्या हुआ?'' मिसेज़ सेन ने पूछा

-''क्या?''

-'ये आँख में....''

-''अरेयः कुछ नहीं....''

मिसेज सेन कुछ समझीं कुछ नहीं। लेकिन ये उनकी समझ में आ गया कि कुल्फी इस बाबत कोई बात करना नहीं चाहती सो वे चुप हो गयीं और महराजिन से बोलीं, ''...अरे....कुल्फी का खाना लगा दो।'' कुल्फी ने हाथ धोये और अपने

लिए मुक़र्रर थाली ले आई। महराजिन ने उसमें दूर से चार परांठे और आलू की तरकारी डाली और एक कटोरी में रखे दो रसगुल्ले भी उसके आगे करते हुए कहा, ''जे कटोरी धो के उतै धर दीयो।'' फिर कुल्फी की शक्ल देख कर मुंह पर ऊँगली लगाते हुए बोलीं, ''हाय दैय्या....कित्ती जोर की मार लगी लगत है। ख़ूनाइ ख़ून उतरियाओ।'' कुल्फी ने कोई जवाब नहीं दिया। वो थाली ले कर दालान के किनारे बैठ गयी।

शाम का खाना हो चुका था. टी.वी. उस ज़माने में झाँसी में था नहीं। रेडियो पर ख़बर और पक्के गानों का कार्यक्रम सेन साहेब सुन चुके थे। बस लाइट बंद कर के लेटने की तैयारी थी कि छत पर पड़े टीन के शेड पर से ऐसी आवाज़ आई जैसे कई लोग एक साथ उस पर दौड़ रहे हों। सेन साहेब हड़बड़ा भी गए और डर भी गए। उन्होंने टॉर्च ढूंढी,छड़ी ली और ऊपर की सीढ़ियों का दरवाज़ा खोला। वो तो उनकी पत्नी ने रोक लिया वरना वे तो ऊपर चढ़ ही गए होते।

-''जाच्छो कोथाय?....अरे ओ शब बन्दर हाय बन्दर.....इतना आया हाय शहर में कि दिन रात शब तो तंग करता हाय.......छड़ो....परेशान मत हो.....जाने दो।''

सेन साहेब रुक गए। वो आवाज़ भी ज़रा देर की बात थी, रुक गयी ,फिर शांति हो गयी।

दूसरे दिन सुबह तक़रीबन दस बजा होगा कि पुलिस का एक हवलदार सेन बाड़ी के सामने आकर खड़ा हुआ। ''सेन साहेब?''

-''क्या बात है?''

-''आपको रानी महल कोतवाली में बुलाया है।''

-''हमको?...क्यों?''

-''हमें नहीं मालूम.....साहेब बोले इत्तिल्लाह कर दो, हम चले आए।''

पुलिस का बुलावा! सेन साहेब शरीफ़ आदमी-विचलित हो गए। पर बुलाया था तो जाना तो था। बोले, ''ठीक हाय...आता हाय।''

आधे घंटे बाद जब वे कोतवाली पहुंचे तो दारोगा ने कुर्सी से उठ कर उनका स्वागत किया। आख़िर शहर के इज़्ज़तदार बाशिंदे थे...फिर छूटते ही पूछा ''सेन साहेब!.....आप अपनी तिजोरी किताबों की अलमारी के पीछे रखते हैं?''

-''जी...?''

-''बताइये बताइये......आप अपनी तिजोरी किताबों की अलमारी के पीछे रखते हैं क्या?''

-''अं...हाँ....!''

-''और उसकी चाभी अपने तकिये के नीचे रखते हैं...''

-''हाँ। अं....''

-''आपकी वाइफ़ अपने गहने अपने पलंग के नीचे पान दान में रखती हैं.. ....?''

-''आप....ये सब क्यों पूछ रहे हैं?''

-''पहले आप बताइये तो....ये सब सही है क्या?''

-'' पहले आप बताइये कि....आप तो कभी मेरे घर आए नहीं...आपको ये सब कैसे मालूम है?''

दारोग़ा ने ताली बजाई, ''ये ही तो मामला है सेन साब...!''

-''क्या?''

-''आपने अपने घर में किसी क़बाइली औरत कुल्फी को काम पर रखा है?''

-''तो?''

-'' तो सेन साब उसी से हमको ये सब पता चला है।''

-''क्या मतलब?''

-''अब सुनिए आप पूरा किस्सा....'' दरोग़ा ने अपनी एक टांग कुर्सी पर टेढ़ी की और उसके घुटने पर अपनी बांह रख कर इत्मीनान से बोला, ''ये सलाख़ों के पीछे देख रहे हैं आप...सब सालों को बंद कर दिया मैं ने...इन लोगों ने आप जैसे पैसे वाले का घर चुनकर अपनी औरत को आपके घर काम पर रखवा दिया ताकि आपके सामान की, क्या कहाँ रखते हैं इसकी जानकारी हासिल हो सके। ये औरत सारा भेद लेती रही। फिर इन लोगों ने मौक़ा देख कर आपके घर पर चोरी का प्लान बनाया। लेकिन तब तक ये औरत बदल गयी। ये बोली कि सेन बाड़ी में चोरी नहीं की जाएगी क्योंकि हमने वहां का नमक खाया है। उसने धमकी दी कि अगर आपके यहाँ चोरी की गयी तो वो पुलिस में रिपोर्ट कर देगी। आदमियों ने इस बात पर कुल्फी की अच्छी ख़ासी ठुकाई पिटाई भी कर दी। लेकिन कुल्फी नहीं मानी। देखा नहीं आपने कि उसकी आँख में खून उत्तर आया है!''

-''ओ आई सी...''

-''लेकिन चोर तो साले चोर...इन्होने सोचा औरत है सुधर जाएगी। ये आए कल आपके घर रात के दस बजे के क़रीब लेकिन वहां फिर इस औरत ने ज़िद पकड़ ली और अपनी धमकी दोहराई। अब इत्तेफ़ाक़ देखिये हम निकले थे गश्त पे...और हमको लगी पेशाब। सो हमने गाड़ी वहीं कर दी खड़ी, बत्तियाँ कर दीं बंद और सड़क

के किनारे लग गए....ये साले आपके घर से भाग कर नीचे आए..और हम सामने पड़ गए......''

-''कल रात!...हम समझे हमारा छत पर बन्दर हाय...''

-''वो यही बन्दर थे!..... हमें दाल में कुछ काला दिखा, हमने पकड़ लिया. ..यहाँ ले आए......कोतवाली में आ कर तहक़ीक़ात से पता चला कि आपके घर चोरी का प्लान था जो इस औरत की मेहरबानी से पूरा नहीं हो सका''

-''टोटल इत्तेफ़ाक़''

-''टोटल इत्तेफ़ाक़''

-''हम पकड़ लाए वो अलग बात है लेकिन आपको इस औरत का शुक्रिया अदा करना चाहिए कि इसने मार पीट सहने के बावुजूद आपसे नमक हरामी नहीं होने दी।''

सेन साहेब ने एक पल सोचा। फिर बोले, ''आप इन लोगों को छोड़ दीजिये. ...करने वाले थे, कुछ किया तो नहीं न....और ये औरत करने भी नहीं देती....आप इन्हें छोड़ दीजिये।''

-''आप कहेंगे तो हम छोड़ देंगे..वैसे भी केस तो इन पर कोई बनता नहीं है।''

चारों लोग छोड़ दिए गए। सेन ने जाती हुयी कुल्फी को पहली बार नाम ले कर पुकारा, ''कुल्फी!...इधर आओ!'' कुल्फी मुड़ी, सेन साहेब ने अपनी जेब से इकलौता सौ का नोट-जो वो शायद इस लिहाज़ से लेते आए थे के पुलिस थाने में कहीं देना न पड़ जाये-निकाला और उसकी ओर बढ़ा दिया, ''रख लो!'' कुल्फी ने हाथ जोड़ दिए और चलती बनी। सेन साहेब नोट पकड़े खड़े रह गए।

घर आ कर सेन ने अपनी पत्नी को सारी बात बताई। कुल्फी को कभी 'छिनाल' कहने के लिए भी अपनी शर्मिंदगी जताई। दोनों ने सोचा कल जब कुल्फी आएगी तो उसे वे स्वयं ही हज़ार रूपए दे देंगे। ऐसी वफ़ादार औरत के लिए वो और कर भी क्या सकते थे! शायद इस बात से, उन्होंने सोचा, उसके मर्द भी सुधर जाएँ,चोरी करना छोड़ दें!

दूसरे दिन कुल्फी काम पर नहीं आई।

सेन साहेब ने शाम को सैर पर जाते वक़्त खंडेराव दरवाज़े के बायीं तरफ़ नज़र डाली। क़बाइलियों के झोपड़े उठ चुके थे। वे और कहीं चले गए थे। उनके ईंट रख कर बनाये गए चूल्हे टूटे पड़े थे। मैंदान ख़ाली हो गया था।

साइबरेटी

कम्प्यूटर पर काम करते करते पीठ सीधी करके हाथ ऊपर उठा कर उसने अंगड़ाई ली। रात के दो बज चुके थे और वह काम ख़त्म कर के लेटने की सोच ही रहा था कि कम्प्यूटर स्क्रीन पर एक ख़ूबसूरत लड़की की तस्वीर आई और उसने अपनी सारी सेन्सुअलिटी उँड़ेलते हुए मुस्कुरा कर पूछा, ''टायर्ड?'' हेनरी का अंगड़ाई लेना बीच में ही रुक गया, हाथ हवा में लटके रह गए और मुंह खुला रह गया। इंटरनेट पर काम करते करते अलग अलग साइट्स खुल जाते हैं, पोर्न साइट्स भी आ जाते हैं लेकिन एक लाइव, मुजस्सिम लड़की और वो भी ऐसे सवाल कर रही है जैसे वो हेनरी के काम को, थकान को बाक़ायदा देख रही है। उसे बेतरह ताज्जुब हुआ। लड़की बेहद ख़ूबसूरत, शाइस्ता और सेंसुअल थी। एक मिनट के लिए हेनरी जहाँ था वहीं थम गया।

-''हाँ .....थोड़ा सा!'' हेनरी ने जैसे होश में आ कर जवाब दिया।

-''चैट करोगे?''

-''दर असल अब मैं सोना चाहता हूँ।''

-''मेरे साथ!...हं हं हं हं.....'' और वो बेसाख़्ता हंसने लगी।

-''उसके लिए मैं काफ़ी थक गया हूँ....लेकन हाँ अगर मैं इतना थका न होता तो शायद....''

-''तब तुम्हारा कारण क्या होता?''

-''हर बात का कारण तो नहीं होता न....ज़्यादातर बातें मन की होती हैं.. .बेवजह....अकारण....सिर्फ़ इसलिए के जी किया...बस!''

-''ये भी तो एक कारण है.....''

-''अच्छा, देखो अब मैं सोने जा रहा हूँ...फिर कभी बात करेंगे....बाई!''

हेनरी ने कम्प्यूटर ऑफ़ कर दिया और फिर जैसे एकदम ख़ाली हो कर अपनी आधी रोकी हुयी अंगड़ाई पूरी की, कुर्सी में पीछे टिक कर मेज़ पर रखी बोतल से

एक घूँट पानी का गटका और उँगलियों से मेज़ पर एक बार तबला सा बजा कर उठा और खिड़की के पास आ गया। खिड़की क्या थी पूरी की पूरी लम्बी ऊंची शीशे की दीवार थी जहाँ से दूर सोते हुए न्यू यॉर्क शहर की जगमगाती रौशनी और एक आध कभी कभी गुज़रती कार की लाइट नज़र आ रही थी। हेनरी लौट कर बिस्तर की ओर जाने लगा की टेलीफ़ोन की घंटी बजी।

-''यस!''

-''क्या कर रहे हो?'' रिचर्ड था।

-''बेस बॉल खेल रहा हूँ!.....अरे इस समय कोई क्या करता है यार!?''

-''गुड..! तो अपना बैट उठाओ और आ जाओ....हमारा पिच तैयार हो रहा है।''

-''आर यू मैड?''

-''इन ए वे ...! हम लोग पार्टी कर रहे हैं और चाहते हैं कि तुम यहाँ आ जाओ। सक्सैना टैक्सस से आया है और उसकी बीवी उस पर दया कर के इंडिया अपने गाँव भाग गयी है। हम सब अकेले हैं और चाहते हैं कि सब अकेले मिल कर एक दूसरे के कंधे पर सर रख कर ख़ुशी का इज़हार कर सकें!''

बहुत इधर उधर की बातें हुईं। बड़ी ना-नुकर हुई लेकिन हेनरी को जाना पड़ा। जब वो रिचर्ड के घर पहुंचा तब रात के तीन बज चुके थे। दूसरे दिन शनिवार था इसलिए किसी को कोई परवाह नहीं थी।

रिचर्ड, शेख़, सक्सेना और हेनरी चारों की दोस्ती बड़ी पक्की और दस साल पुरानी थी। तब से जब शेख़, सक्सेना और रिचर्ड मोक्रोसॉफ़्ट में काम करते थे और हेनरी के पड़ौसी थे। तब चारों शादी शुदा थे और इनकी बीवियों की आपस में अच्छी जान पहचान थी। इन्हीं बीवियों ने अपने अपने पतियों की मुलाकातें भी करवायीं थीं और फिर जान पहचान दोस्ती में बदल गयी थी। हेनरी टेक्निकल डिज़ाइनर था और बड़ी बड़ी कंपनियों में डिज़ाइन कंसल्टेंट था। फिर समय कुछ बदला और नए नए लोग बड़ी बड़ी कंपनियों में बड़े बड़े ओहदों पर आ गए और वे अपने अपने डिजाइन कंसल्टेंट्स/एक्सपर्ट्स ले आये। हेनरी का काम कम होने लगा। सब जगह सबको 'नौजवान' चाहिए थे। सोच ये थी कि नौजवान ज़्यादा 'आज' के हिसाब से सोचते हैं। इन 'नौजवानों' की उम्र बीस से पच्चीस होती थी और इन्हें बड़ी बड़ी तनख़्वाहों पर रख लिया जाता था। बड़े बड़े नामी कॉलेजों से ताज़ा ताज़ा सीखे निकले लोग! तजुर्बे का क्या है-काम करते करते हो जायेगा! हेनरी हालाँकि किसी तौर से बूढ़ा नहीं था लेकिन पता नहीं या तो उसकी अड़तालीस साल की उम्र और

बेइंतिहा तजुर्बा आड़े आ गया या समय बदल गया या दुनिया बदल गयी-उसका काम बेतरह कम हो गया और उसे अपना बड़ा सा पांच बैडरूम और स्विमिंग पूल वाला मकान छोड़ कर सबर्ब में एक छोटे से फ़्लैट में शिफ्ट होना पड़ा। उसकी बीवी ने समझ लिया कि अब हेनरी क्या तो कमायेगा और क्या खिलायेगा। वो अपनी चार साल की लड़की को ले कर घर छोड़ कर चली गयी और हेनरी पर जायदाद के हिस्से का मुकदमा अलग ठोक गयी। आजकल हेनरी का समय मुकदमा लड़ने और एक कार कंपनी के लिए एक 'मोस्ट एडवांस्ड सिक्योरिटी सिस्टम' डेवेलप करने में जाता है।

शेख़ की बीवी मेक्सिकन थी (या शायद है-ये कहना मुश्किल है) और ज़्यादातर अपने परिवार के साथ मैंक्सिको में ही रहना पसंद करती थी। सक्सेना अब तक शादी शुदा था। दो बड़ी-एक ग्यारह और दूसरी पंद्रह साल की-लड़कियों को ले कर उसकी बीवी आजकल अपने मायके बिहार के सासाराम गयी हुई थी। वो हर साल जाती थी-हर बार महीने भर के लिए। लड़कियों को 'इंडिया' बिलकुल पसंद नहीं है लेकिन इस बार ज़बरदस्ती उन्हें वो ले गयी थी।

रिचर्ड की बीवी शुरू से ही बहुत नकचढ़ी थी और दो साल पहले रिचर्ड के एक क़रीबी दोस्त के इश्क़ में पड़ कर वो रिचर्ड को छोड़ चुकी थी

अंदर ही अंदर सब अकेले थे और एक दूसरे से मिलने और मौज मज़े के अवसर ढूंढते रहते थे। ये मिलना बहुत दिनों बाद इस वीकेंड मुमकिन हुआ था।

-''द वर्स्ट थिंग दैट हैपेन्ड टु दिस वर्ल्ड इज़ आई.टी. (सबसे बदतर बात जो इस दुनिया में हुई वो है आई.टी)'' हेनरी ने अपनी बियर का ख़ाली कैन डस्टबिन में फेकते हुए कहा।

-''अच्छा!'' शेख़ भड़का, ''साले ई-मेल भेजते समय, एस. एम. एस. करते समय ये ख़्याल नहीं आता! आई. टी ने लाइफ कितनी सुविधा जनक बना दी है वो कभी कुबूल नहीं करोगे....ब्लडी एहसान फ़रामोश!''

-''ये जला बैठा है' रिचर्ड ने अपने गिलास में चौथी बार वोडका भरते हुए हेनरी की तरफ़ ऊँगली दिखा कर कहा, ''इसने चड्डी ख़रीदी थी और इसके पास कुछ दिनों बाद उसी स्टोर से एक नईं ब्रांड की चड्डी का इश्तिहार आ गया-मेल पर भी और फ़ोन पर भी!''

-''नथिंग इज़ ब्लडी प्राइवेट एनी मोरे!'' हेनरी ने एक नया बियर का कैन खोला।

-''देखो भाई हम लोगों ने तो बरसों आई. टी. की कमाई खायी है और खा

रहे हैं....बट दिस आई एग्री विथ यू!'' सक्सेना अपनी कुर्सी में पसर गया।

-''क्या?......व्हाट यू एग्री?'' शेख़ एकदम लड़ने के मूड में आ गया।

-''यु नो ....एक बार मैंने और मेरे एक साथी-दोनों ने टाइम्स स्क्वेर से न्यू जेर्सी तक टैक्सी ली। टैक्सी में हम लोगों ने क्या बातें कीं हम लोगों को भी याद नहीं......सब यूँ ही इधर उधर की ऊल जलूल...! शाम को जब मैं घर पहुंचा तो पता चला पुलिस मेरे बारे में पूछती हुई आई थी। मैं ने पुलिस वाले को फ़ोन किया... पता चला कि हमारे टैक्सी ड्राइवर ने-जो कि शायद इज़रायली था और अंग्रेज़ी ठीक से नहीं समझता था-उसने हमारे खिलाफ़ पुलिस में शिकायत की थी।''

-''क्या शिकायत?'' शेख़ ने पूछा।

-''ये कि हम दो लोग-जिसमें मैं पाकिस्तानी बताया गया था-टैक्सी में कहीं बम धमाका करने की योजना बना रहे थे!''

-''देखा.......मैं क्या कहता था!'' हेनरी ने सर हिला कर कहा।

-''सक्सेना! तुम बम धमाके करोगे, मुझे तुमसे ऐसी उम्मीद नहीं थी!'' शेख़ ने मज़ा लिया।

-''शट अप! मैंने ऐसा कुछ नहीं कहा...''

-''तो फिर! टैक्सी ड्राइवर को ख़्वाब आया?''

-''बम तो किसी भी भाषा में बम होता है यार!''

-''शेख़ मज़ाक छोड़ो यार....उसे सच बताने दो।'' रिचर्ड ने बात पकड़ी।

-''बात ये थी,'' सक्सेना ने कहा, ''कि उस दिन कहीं बम धमाका हुआ था और हम लोग शायद ये डिसकस कर रहे थे कि आख़िर लोग बम क्यों फोड़ते हैं, लोगों को क्यों मारते हैं।

-''तो पुलिस तुम्हारे घर कैसे पहुंच गयी?''

-''क्या बच्चों जैसी बातें करते हो यार! क्रेडिट कार्ड से टैक्सी का पेमेंट करोगे तो तुम्हारे घर क्या पुलिस तो तुम्हारे दादा परदादा के घर भी पहुँच जाएगी!''

-''सी...दिस इस व्हाट आई मीन,'' हेनरी ने पिज़्ज़ा का हिस्सा चबाते हुए कहा, ''आई टी इज़ द वर्स्ट थिंग!''

-''ये बात तो है कि प्राइवेसी ख़त्म हो गयी है, ''शेख़ ने अपना ख़ाली गिलास भरने के लिए उठते हुए कहा, ''लेकिन आई. टी. के जो अड्वॅंटेजेस हैं उनके मुक़ाबले ये इतनी बड़ी बात नहीं है।''

-''हे! होल्ड ओन! दिस इस सीरियस !...सक्सेना! पुलिस तुम्हारे पीछे अब भी है?''

-"आई डोन्ट नो! दो तीन बार उनसे मुलाक़ात के बाद शायद पुलिस की समझ में आ गया होगा कि ये ग़लत रिपोर्ट है क्योंकि वो चुप बैठ गयी है। लेकिन परेशानी तो मुझे हुई न!"

-"देखो यार! ये बुड्ढों वाला रोना बंद करो और आज की बात करो....ऐसी कोई चीज़ है जिसके फ़ायदे और नुक़सान दोनों न हों?!"

-"फ़ायदों की ऐसी तैसी, सारे फ़ायदों के सामने तुम बाज़ार में नंगे खड़े हो !...वो तुमको चलता है?"

-"टॉपिक चेंज करो यार....एनफ़...हेनरी! व्हाट आर यु डिज़ाइनिंग दीज़ डेज़?"(तुम आजकल क्या डिज़ाइन कर रहे हो?)

-"ए सिस्टम फ़ॉर द फ़्यूचर कार्स (भविष्य की कारों के लिए एक सिस्टम) जो कि एक किलोमीटर पहले ही ड्राइवर को ख़तरे से आगाह कर देगा।"

-"अरे वाह! याने एक किलोमीटर पहले ही मुझे मालूम पड़ जायेगा कि मेरी बीवी घर पर है या नहीं!" सक्सेना ने बड़ी ज़ोर का ठहाका लगाया।

-"किसी से ज़िक्र मत करना...ये डिज़ाइन एकदम यूनीक है और अभी सीक्रेट है!" हेनरी ने कहा

-"मैं फ़ेसबुक पे डाल दूँ !...हं हं हं हं...!" शेख़ चहका

दोस्तों की नोक झोंक और पार्टी तब तक चली जबतक कि नशे ने सबको दबोच कर नींद की आग़ोश में नहीं फेक दिया।

जब तक हेनरी अपने फ़्लैट पर लौटा शाम के चार बज चुके थे और उसके सर में बेतरह दर्द हो रहा था। उसने कॉफ़ी गर्म की। सोचा थोड़ा और सो लिया जाये लेकिन फिर ये ख़्याल उसने अपने बचे हुए काम के मद्देनज़र ख़ारिज कर दिया। कंपनी को अपना डिजाइन और रिपोर्ट जमा करने के लिए हालाँकि उसके पास अब भी दस दिन थे लेकिन उसके पहले उसे तमाम जर्नल्स और नोट्स रिफर करने थे और एक लम्बी रिपोर्ट तैयार करनी थी। हेनरी ने कॉफ़ी का घूँट भरा और कम्प्यूटर ऑन किया।

-"हाय ब्यूटीफुल!" कम्प्यूटर ऑन होते साथ फिर वो ही रात वाली लड़की स्क्रीन पर आ गयी।

-"हाय!" हेनरी को ताज्जुब हुआ, "तुम फिर?"

-"हाउ वाज़ योर पार्टी?"

-"तुम्हें कैसे मालूम मैं पार्टी में गया था?"

-"हमें सब मालूम है....तुमने दो कैन बियर पी और फिर........"

-''और फिर....?''

-''और आगे कुछ साफ़ साफ़ पता नहीं चल पाया लेकिन मज़ा किया तुमने. ......''

-''हाउ डू यु नो?''

-''पिज़्ज़ा तो तुम ही ने आर्डर किया था न......''

-''ओ आई सी ....''

-''सो हाउ डू यु फ़ील?''

-''व्हाट नॉनसेंस......तुम हमारे ऊपर नज़र रखे हो!''

-''नज़र तो तुम पर सभी रखे हुए हैं....''

-''याने?''

-''याने तुम्हारा बैंक अकाउंट, तुम क्या ख़रीदते/खाते हो, तुम कहाँ जाते हो, क्या करते हो, कम्प्यूटर पर क्या ढूंढते/पढ़ते हो...क्या है जिस पर तुम पर नज़र नहीं रखी जा रही है......और तुम तो कम्प्यूटर पर इतना काम करते हो तुमसे बेहतर ये बात और कौन जान सकता है!''

-''असल में ये टेक्नोलॉजी टेक्नीशियन्स ने और बड़ी जल्दी जल्दी ईजाद कर दी...इसमें सामाजिक इशूज़ कहीं बहुत पीछे छूट गए।''

-''समाज हमेशा से ही भ्रष्ट और मतलबी है लेकिन ख़ैर ये सब छोड़ो....अपनी बात करो, हम समय से पीछे न छूट जाएँ!....मिलने की तमन्ना है?

-''आज मुझे बेहद काम है।''

-''काम तो मुझे भी बहुत है। मैं तुम्हारे जैसे न जाने कितने लोगों को न जाने किन किन बातों के लिए तसल्ली और दिलासा देती रहती हूँ।'

-''तुम यही काम करती हो!''

-''यही समझ लो.....ज़्यादातर लोग जो मेरी मदद चाहते हैं उनमें ज़्यादातर आत्महत्या के ख़्वाहिशमंद होते हैं।''

-''कारण?'' हेनरी अपनी कॉफ़ी का प्याला ले कर कम्प्यूटर के सामने लड़की की बातों में इंटरेस्ट लेते हुए बैठ गया।

-''कारण बहुत हैं!.....इन्सेक्युरिटी (अनिश्चितताएं) बढ़ गयीं हैं, स्पर्धा बढ़ गयी है, कोई सताया हुआ है कोई अपने आप को सता रहा है।''

-''तुम्हारा नाम भी तो होगा या तुम्हें कम्प्यूटर परी कहा जाये!''

-''मेरा नाम है लिंडा...लिंडा ग्रीन!''

ज़रा देर के लिए ख़ामोशी रही फिर लिंडा ने कहा ''क्या तुम मेरे साथ सोना पसंद करोगे?''

-''फिर वो ही बात!''

-''आज तो तुम थके हुए भी नहीं हो।''

-''मेरे साथ ही क्यों?''

-''क्योंकि मैं जानती हूँ कि तुम्हारी बीवी से तुम्हारा तलाक हो चुका है और और औरतों के साथ तुम्हारे सोने के औक़ात बहुत कम हैं।''

-''तो क्या ये तुम्हारी समाज सेवा होगी?''

-''एक तरह से....''

-''मुफ़्त?''

-''हं हं....मुफ्त क्या होता है हेनरी!''

-''तुम्हें मेरा नाम भी मालूम है?!''

-''मुझे ये भी मालूम है कि तुम कौन सी साइज़ का अंडरवियर पहनते हो. ...हं हं हं हं.....''

-''डैम!'' हेनरी ने इंटरनेट ऑफ़ कर दिया।

इंटरनेट ऑफ करके हेनरी ने कम्प्यूटर पर अपने प्रोजेक्ट पर काम करना शुरू किया। तभी उसके सेल फ़ोन पर मैसेज आया- 'कितने रूड हो तुम! मैं इतने प्यार से तुमसे बात करना चाहती हूँ और तुमने इंटरनेट ऑफ़ कर दिया!- लिंडा।' हेनरी ने अपने दोनों हाथ हवा में उछाल कर ओंठ गोल करके डिस्गस्ट में हवा छोड़ी। फिर उसने फ़ोन भी ऑफ़ कर दिया। वैसे भी आज रविवार था और किसी का फ़ोन आने की कोई उम्मीद नहीं थी। उसके बाद शांति से हेनरी ने चार घंटों तक अपने प्रोजेक्ट पर काम किया। जब वह फ़ारिग़ हुआ तब तक रात के दस बज चुके थे और उसे कुछ खाने का जी कर रहा था। उसने पिज़्ज़ा आर्डर किया।

दिन रात लगे रहने के कारण हेनरी का काम दस दिन की जगह छः दिनों में समाप्त हो गया। इन छः दिनों में न वह कहीं गया, न किसी से मिला और अक्सर लिंडा के डिस्टर्ब किये जाने के बावुजूद अपना संयम बरक़रार रख सका। छः दिन बाद आज शाम को वह रिलैक्स्ड था। उसने सोचा ज़रा बाहर जा कर थोड़ी चहल क़दमी करेगा और फिर किसी शांत से रेस्टोरेंट में बैठकर अच्छा सा भोजन करेगा। कितने दिन तो हो गए थे पिज़्ज़ा खाते खाते!

घड़ी में आठ बज रहे थे। उसने अपनी टी शर्ट बदली, पाओं में स्लिप ऑन जूते डाले और अपने फ़्लैट का दरवाज़ा खोला। सामने वाले फ़्लैट का दरवाज़ा

खुला हुआ था और वहां रहने वाली मोटी अकेली औरत के छोटे छोटे चारों बच्चे हमेशा की तरह ही रिरिया रहे थे और उनकी मोटी अकेली माँ उन्हें अपनी आदत के मुताबिक मार पीट कर चुप करा रही थी। ये तो रोज़ की बात थी! हेनरी ने लिफ़्ट ली और नीचे उत्तर गया। नीचे दस कदम बाद बिल्डिंग का मेन गेट था और सामने थी सड़क। वो इस उहा पोह में पड़ गया के जाये कहाँ-इतालियन रेस्टोरेंट में या इंडियन में। इनमें से किसी में भी जाने के लिए सड़क क्रॉस करना पड़ती और ज़रा दूर तक चलना पड़ता। उसने इधर उधर देखा। ट्रैफ़िक बहुत था। आस पास छोटी बड़ी एक दूसरे से लगी बिल्डिंग्स भी थीं और कुछ हाई राइज़ भी। आवारा बच्चे बिल्डिंग्स की 'स्टूपस' (छोटी सीढ़ियों) पर आने जाने वालों की सुविधा की परवाह किया बग़ैर कुछ कुछ खेल रहे थे। अपने चारों ओर देख कर उसके चेहरे पर एक तंज़ की मुस्कराहट तैर गयी। ''वाह! हेनरी! वाह!...क्या मुक़द्दर पाया है तुमने!'' कहाँ अपना 555 पार्क एवेन्यू का पैंट हाउस और कहाँ ब्रोंक्स की इस बस्ती की 196 स्ट्रीट! पार्क एवेन्यू में क्या ठाठ की ज़िन्दगी थी। क्या बड़े बड़े लोगों की बस्ती थी। क्या पार्क थे, क्या बिल्डिंग्स थीं, क्या रेस्टोरेंट्स थे, क्या तहजीबमंद अपर क्लास लोग थे....और कहाँ ये ड्रग्स बेचने वालों और पोर्तुरीकन्स और लैटिन अमेरिकन्स से भरी इतनी भीड़ भाड़ वाला ब्रोंक्स का इलाक़ा! ...यहाँ कौन आता है?!.. वो जो या तो बर्बाद हो जाता है या फिर मामूली मध्यम वर्गीय होता है ! ''अब तुम बर्बाद भी हो और मध्यम वर्गीय भी हो गए हो, हेनरी!''....''कोई बात नहीं!'' उसके अंदर से जैसे आवाज़ आई, ''आज कह लो तुम्हें जो कहना हो...लेकिन कल जब मेरा डिज़ाइन दुनिया देखेगी न...तब देखना मैं फिर पार्क एवेन्यू जा कर रहने लायक़ हो जाऊँगा!''

आस पास छोटी छोटी 'बुडेका'(परचून से ले कर सभी ज़रूरी चीज़ें रखने वाली छोटी दुकाने) थीं। छोटे छोटे मुक़दमें लड़ने वाले छोटे छोटे वकीलों के छोटे छोटे दफ़्तर नुमा थे और हवा में फ़्राइड चिकेन और इस तरह के खाने की खुश्बुएं तैर रही थीं

हेनरी सड़क पर ज़रा आगे बढ़ा ही था की बढ़ी दाढ़ी, गंजे सर और बढ़े नाख़ूनों वाला एक निहायत ही गन्दा काला शख़्स-नीग्रो-एक निहायत ही गन्दा लम्बा सा ओवरकोट पहने लाल आँखों से देखता हुआ हेनरी का रस्ता रोक कर खड़ा हो गया। ''गिव मी मनी।'' (मुझे पैसा दो)

-''हैव नो मनी।'' हेनरी आगे बढ़ने लगा।

आदमी ने आँखे और बड़ी बड़ी कर के अपना मुंह हेनरी के मुंह के क़रीब लाते हुए एक बार फिर अपनी भभका छोड़ती भर्राई हुई लेकिन इस बार ज़्यादा तुर्श आवाज़ में कहा। ''गिव भी मनी!''

हेनरी को लगा हो सकता है के ये शख़्स अब शायद शारीरिक रूप से नुक़सान पहुँचाने पर आमादा हो जाये। वो ज़रा झुका और बाएं से डक कर के बचते हुए तक़रीबन भाग लिया। तब तक रेस्टोरेंट आ गया। चायनीज़ था।

रेस्टोरेंट में भीड़ कम थी। हेनरी बैठा ही था कि एक ख़ूबसूरत सी गोरी लड़की-शायद कोई विद्यार्थी रही होगी जो अपने ख़ाली समय में काम कर के पैसे कमा रही होगी-उसके सामने आई, लड़की ने हेलो कहा और उसे एक मेनू कार्ड थमाया।

-''यु आर न्यू हियर?'' (तुम यहाँ नईं हो) हेनरी ने उसकी तरफ़ देख कर पूछा।

-''या''

-''व्हाट अ ब्यूटीफुल गर्ल लाइक यू डूइंग विथ दी ड्रैगन!'' (तुम जैसी ख़ूबसूरत लड़की ड्रैगन के पास क्या कर रही है)

लड़की हंसी और चली गयी। हेनरी ने भी हल्का महसूस किया और अपनी ही शैतानी पर ख़ुद ही मुस्कुराते हुए मेनू देखने लगा।

रात को जब वह वापस पहुंचा तो उसके अंदर चार बोतल बियर और अच्छा तबियत का खाना उसकी रिलैक्स्ड तबियत को दोबारा चौबारा कर चुके थे। हेनरी उस दिन आ कर सीधा सो गया।

सुबह उठ कर उसने अपने प्रोजेक्ट और डिज़ाइन का आख़िरी बार मुआयना किया फिर सोचा ज़रा मेल चेक कर लिया जाये। इंटरनेट ऑन करके उसने अपना मेल चेक किया। तबियत रिलैक्स्ड थी। काम हो चुका था। दो घड़ी फ़ेसबुक भी देखने में क्या हर्ज था! लिंडा फिर आ गयी।

-''लिसेन हनी...आई लॉन्ग फ़ॉर यू...''(मुझे शिद्दत से तुम्हारी चाह है)

-''ऑलराइट बेबी....हियर आई एम!'' आज हेनरी और लिंडा ने चैट की।

चैट में एक दूसरे को किस किया, एक दूसरे के कपड़े उतारे और बड़ी देर तक मुहब्बत की तमाम तरह की तमाम बातें कीं। क़रीब घंटे भर बाद लिंडा बड़ी जल्दी में लगी। बोली, ''आई गोट टू गो!'' (मुझे जाना है)। लिंडा चली गयी थी लेकिन अपना पता और फ़ोन नंबर दे गयी थी। हेनरी ने इत्मीनान की अंगड़ाई ली और उठकर एक प्याला अपने लिए कॉफ़ी गर्म करके पी।

दोपहर को खाना खाने के बाद हेनरी ने सोचा कि अब उसे अपना डिज़ाइन और अपनी रिपोर्ट क्लाइंट को भेज देनी चाहिए। उसने देखा तो उसके होश उड़ गए। कम्प्यूटर से प्रोजेक्ट उड़ चुका था! हेनरी बर्बाद हो गया था। उसकी मेहनत मटियामेट हो चुकी थी। उसके पास तो इतना पैसा भी नहीं था कि वह क्लाइंट से लिया हुआ एडवांस भी वापस कर सके!...'ये ज़रूर लिंडा की कारिस्तानी है' उसने सोचा। उसने लिंडा को फ़ोन लगाया, साइट पर देखा, तस्वीर फेसबुक पर ढूंढी-----सब ग़लत, सब झूठ! माथा पीटने के सिवा कोई चारा नहीं था!

चार हफ़्तों बाद एक नयी पैदा हुई कार बनाने वाली कंपनी का अख़बारों में बड़ा सा विज्ञापन आया- ''हमारी कार का एडवांस सिक्योरिटी सिस्टम आपको एक किलोमीटर पहले ही ख़तरों से आगाह कर देगा!''

उसी समय हेनरी के फ़्लैट में आंसरिंग मशीन पर मैंसेज रिकॉर्ड हुआ, ''हाय हेनरी! सक्सेना!....आई जस्ट सॉ दी एड (अभी विज्ञापन देखा)....ये तुम्हारा ही डिजाइन किया हुआ सिक्योरिटी सिस्टम है न!...वेल डन मैन!''

उसके बाद एक मेसेज और रिकॉर्ड हुआ, 'हेनरी तुमने हमारे साथ धोखा किया है। हमसे पैसे लेकर हमारी प्रतिस्पर्धी कार कंपनी को सेक्युरटी सिस्टम बेच दिया है! अब हम अदालत में मिलेंगे!''

तब तक आंसरिंग मशीन से ज़रा दूर बग़ल में पच्चीस नींद की गोलियां खाए हेनरी सो चुका था।

रब्बुल आलमीन

हम फ़िल्म/टी वी प्रोग्राम प्रोडक्शन कोर्स में थे। हमारा कोर्स दो साल का था और कॉलेज ग्रेटर लंदन के ब्रोम्ली साउथ में था। मैं ने पहले साल में जब दाख़िला लिया तब लंदन में मैं नया नया था- 70 के दशक के भारत के किसी ठीक ठाक शहर से आये किसी मध्यम वर्गीय लड़के जैसा। गोरों से ज़रा ज़रा कॉम्प्लेक्स खाने वाला, जल्दी ही किसी के सामने 'फ़्री' न हो जाने वाला और ख़ास तौर से लड़कियों से तो खुलकर बिलकुल बात न कर सकने वाला, अंग्रेज़ों की बोली हुई आधी ही अंग्रेज़ी समझ सकने वाला....इत्यादि। थोड़े दिनों में हालाँकि पहले और दूसरे साल वालों में दोस्ती हो गयी थी और जिसे हम रैगिंग समझते थे वैसा कुछ नहीं हुआ था। ये सीनियर्स हमारे अच्छे दोस्त,मददगार और पथप्रदर्शक बन गए थे। कॉलेज में बहुत अलग अलग देशों से आये विद्यार्थी थे-जर्मनी, हॉगकॉग, नाइजेरिआ, ब्राज़ील, दक्षिणी अफ़्रीक़ा, स्पेन और और भी तमाम जगहों के। सब अपनी अपनी तरह और एक्सेंट में अंग्रेज़ी बोलते थे-कुछ टूटी फूटी, कुछ सोच सोच कर, कुछ ज़बरदस्त फ़र्राटे से लेकिन उसमें अपनी मातृभाषा के वाक्य जोड़ते हुए। हालाँकि मेरी अंग्रेज़ी ठीक ठाक थी लेकिन तब मैं सोचता हिंदी में था और फिर बोलता अंग्रेज़ी में था-यह साफ़ समझ में आता था। मैं सेशन शुरू होने के छह महीने बाद दाख़िल हुआ था-जिसका कारण यह था कि मेरे भाई ने जो लन्दन में रहता था और जो मुझे इस कोर्स के लिए स्पोंसर करने वाला था उसने जो काग़ज़ात भेजे थे वे दिल्ली के वीज़ा अफ़सर के हिसाब से नहीं थे और इसलिए मुझे जाने के लिए वीज़ा मिलने में देर हुई।

मैं हवाई जहाज़ में पहली बार सफ़र कर रहा था। हवाई जहाज़ दिल्ली से उड़ कर काबुल और फिर काबुल से लन्दन जाने वाला था। काबुल उस ज़माने में बहिश्त था। जहाँ हमारा जहाज़ उतरा उस हवाई अड्डे के तीन तरफ़ बर्फ़ से ढकी पहाड़ियां थीं और वहां की धुंध और ख़ुशगवार हवा बेहद दिलकश थी जो मैं ने पहले कभी न देखी थी न महसूस की थी। और सबसे बड़ी बात जो मैं कभी नहीं भूल सकता वो थी काबुल के लोगों की सादगी, हिंदुस्तान के लिए मुहब्बत

और हिंदी फ़िल्मी गानों के लिए उनका जुनून की हद तक का शौक़। उन के 'माशाअल्लाह' कहने में भी जो बात थी वो भी बेहद मीठी और दोस्ताना थी। वहां गुज़रे आधा दिन और एक रात किसी जास्मीन के फूल की खुशबु की तरह ज़हन में अब तक बसे हैं।

लंदन पहुंचने के एक हफ़्ते बाद मैं जब कॉलेज में दाख़िल हुआ तब तक दूसरे साल वाले अलग अलग स्टूडिओज़ या चैनलों में इंटर्नशिप पर जाने वाले थे और पासआउट होने के इंतजार में नौकरियां ढूंढने की कोशिश में थे। इन दूसरे साल वालों में एक अँग्रेज लड़की थी- सूज़न -जो हमारे कॉलेज में तो सबसे ख़ूबसूरत थी ही शायद दुनिया की कुछ बेहतरीन ख़ूबसूरतों में से एक थी। इस पर सुहागा ये कि वह निहायत मिलनसार और शिष्ट भी थी। उसकी मुस्कराहट ऐसी थी जैसे अँधेरी रात में किसी ने पूनम का चाँद लाकर सामने रख दिया हो। उसकी ख़ूबसूरती और शिष्टता का तालमेल कुछ ऐसा था कि लड़कियां उससे शिद्दत से जलती थीं और लड़के उसपे शिद्दत से मरते थे। मैं भी उन लड़कों से अलहदा नहीं था। मुझे वह बहुत भाती थी लेकिन न मैं शर्म के मारे उसके सामने पड़ता था न उसकी मुझ में कोई दिलचस्पी ही दिखाई दी।

कोर्स के दूसरे साल में हर विद्‌यार्थी को अपनी डिप्लोमा फ़िल्म या प्रोग्राम बनाना होता था- जिस पर नम्बर मिलते थे। हर साल में तेरह विद्‌यार्थी होते थे और उनमें से हर एक को अपना प्रोग्राम बनाने के लिए सबका सहयोग लेना होता था। याने तेरह विद्‌यार्थियों की तेरह टीमें बनती थीं और हर विद्‌यार्थी को हर डिपार्टमेंट का काम करने का मौक़ा मिलता था। वो किसी में प्रोड्‌यूसर होता, किसी में डायरेक्टर, किसी में एडिटर विज़नमिक्सर या किसी में एक्टर इत्यादि। प्रोग्राम जैसे जैसे तैयार होते जा रहे थे ऑडिटोरियम में उनके शोज़ रखे जा रहे थे। उस दिन शाम को अंतिम प्रोग्राम जो दिखाया गया वह आधे घंटे का एक डॉक्यूड्रामा था -शेक्सपियर के ज़माने की एक बिसरी हुई अभिनेत्री के जीवन पर आधारित। फ़िल्म को पीरियड के हिसाब से सीपिया और श्वेत श्याम तरह से बनाया गया था और उसमें संगीत, मूवमेंट और डायरेक्शन कमाल का था। और और कमाल की बात थी उस फ़िल्म की लाइटिंग और फ़ोटोग्राफी। हालाँकि सूज़न का स्पेशलाइज़ेशन एडिटिंग का था लेकिन इस फ़िल्म में उसने मेन रोल किया था और हालांकि वह बेहद ख़ूबसूरत थी इस फ़िल्म में उसकी ख़ूबसूरती दोबारा हो कर निखर आयी थी। फ़ोटोग्राफी जिसने की थी उसको तो ख़ैर 'ए' क्रेडिट मिलना तय था लेकिन फ़िल्म देखने के बाद लोगों को याद रही तो सिर्फ़ सूज़न !

शाम को जब हम स्क्रीनिंग से बाहर निकले और सब आपस में मिलकर एक दूसरे को बधाइयाँ देने लगे तब हल्की हल्की बारिश शुरू हो चुकी थी। हालाँकि सुबह मौसम

एकदम साफ़ था और बारिश की कोई भविष्यवाणी नहीं थी इसलिए दो एक को छोड़ कर छाता किसी के पास नहीं था। कॉलेज में उस ज़माने में कोई कैंटीन नुमा भी नहीं थी जहाँ जा कर चाय पी जाती। लन्च हम लोग कॉलेज से बाहर दस मिनट की दूरी पर एक पब में जा कर करते थे। बीस पच्चीस मिनट कॉरिडोर में खड़े इंतज़ार करने के बाद बारिश थमी तो मैं और मेरा एक साउथ अफ्रीक़न सहपाठी रिचर्ड ग्रीन बाहर निकले। मुझे ब्रोमले स्टेशन से ट्रेन पकड़ कर डार्टफोर्ड जाना था जहाँ से बस पकड़ कर मैं अपने भाई के घर विलमिंगटन जाता। रिचर्ड को बस में कहीं और जाना था। सड़क के मुहाने तक हम दोनों साथ आये। रिचर्ड बस अड्डे पर रुक गया, मैं हाई स्ट्रीट की तरफ़ मुड़ लिया। मुड़ा ही था कि कोने वाली एक दुकान के बड़े से शीशे के पीछे टंगे शेर जैसे रंग वाले मख़मली ऊन के एक ओवरकोट ने मेरा मन लुभा लिया। उस तरह का कोट मुझे बेहद पसंद था और मैं अक्सर सोचा करता था कि कॉलेज में जब ब्रेक आएगा और मुझे कहीं किसी जगह पार्ट टाइम काम मिलेगा तो पैसे बचा कर सबसे पहले मैं दो चीज़ें ख़रीदूंगा -एक घुमवार ब्रायर स्मोकिंग पाइप और दूसरे ऐसा ओवरकोट.! हालाँकि मैं जानता था कि एक स्टूडेंट को काम मिलना कितना मुश्किल है ख़ास तौर पर उन दिनों में जब ब्रिटेन की इकोनॉमी ठंडी थी और मैं ये भी जनता था कि इस तरह के ओवरकोट निहायत महंगे होते हैं। लेकिन मेरी पसंद ने जैसे मुझे वहीं पकड़ कर खड़ा कर लिया।

यह दुकान तो रोज़ मेरे रास्ते में पड़ती थी लेकिन वे रोज़ विंडो ड्रैसिंग बदलते रहते थे-कभी क़मीज़ें, कभी कोट, कभी ब्लेजर, कभी हैट्स.....आज उन्होंने ये ओवरकोट टांगा था। शीशे के बाहर अपनी नाक सटाकर मैं ने कोट पर लटकता हुआ प्राईस टैग देखा- ''पचास पौंड''! जिस ज़माने में नॉर्मल लोगों की हफ़्तावार तनख़्वाह बीस पौंड होती थी उस दौर में कोट की कीमत पचास पौंड! मैं ने ठंडी सांस भरी, अपनी हथेलियों को गर्माहट के लिए आपस में मला और आसमान की ओर नज़र करते हुए- शायद सब कॉन्शस रूप से ऊपर वाले को उलाहना देते हुए- चलने को हुआ कि पीछे से आवाज़ आयी- ''आर यू बायिंग दैट?''(क्या तुम उसे खरीद रहे हो?।) महिला स्वर था। बग़ल में मुड़ कर देखा तो सूज़न का ख़ूबसूरत चेहरा अपनी निहयात बेबाक मुस्कुराहट लिए मुझसे पूछ रहा था ''आर यू बाइयिंग दैट?''

-''ओह हैल्लो....!'' मैं ऐसे चौंका जैसे वो शख़्स जिस ने कभी टिकट नहीं ख़रीदा लेकिन फिर भी उसकी लाटरी लग गयी हो। फिर मैं ने संभल कर कहा, ''ये ओवरकोट मुझे बेहद पसंद है बट कांट अफ़्फ़ोर्ड इट।''

-''चलो चल के दुकान लूटते हैं!'' सूज़न ने जवाब में कुछ इस संजीदगी से कहा कि हम दोनों हंस पड़े।

सूज़न अपने ढीले ढाले भूरे पायजामे में, एक ढीले ढाले क्रीम टॉप और लटदार

सुनहरे बालों में मेरे सामने मुझसे दो इंच तो जरूर ऊंची रही होगी। उसने अपने बाएं कंधे पर मोटे चमड़े का मोटे पट्टे वाला एक हल्के बरगंडी रंग का बैग लटकाया हुआ था,उसकी बायीं कलाई में एक चाँदी का मोटा सा चमकता हुआ बाज़ूबंद नुमा था, दायीं कलाई में उसने डायल बाहर को रख कर घड़ी बाँधी हुई थी और अब वो भी विंडो से ओवरकोट को देखने लगी थी। -''मुबारक हो! तुम्हारा अभिनय गज़ब का था।'' मैं ने उसकी तारीफ़ करते हुए कहा, ''दरअसल मुझे शो के बाद ही तुमसे मिलकर ये कहना चाहिए था....''

-''कोई बात नहीं,,,ये सब बहुत मामूली बातें हैं.....''

मैं नेवी ब्लू जैकेट और ग्रे पतलून पहने हाथ में एक बाबुओं वाला बैग (जो मुझे मेरे भाई ने अपना पुराना पकड़ा दिया था) लिए दो दिन बढ़ी दाढ़ी और बड़े कान ढके हुए काले बालों में उस परी जैसी लड़की के सामने कॉम्प्लेक्स खा रहा था और ये ताज्जुब कर रहा था कि ऐसी लड़की आख़िर मुझ जैसे शख़्स से इस दोस्ताने से बात कैसे कर सकती है! भारत में मेरे शहर झाँसी में तो ऐसा क़तई मुमकिन नहीं हो सकता था। कम से कम मेरा तजुर्बा तो यही कहता था।

बहरहाल! मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। जिस लड़की पर दुनिया मरती थी और मैं हमेशा शर्माता हुआ उससे नज़रें बचा कर उससे दोस्ती के ख़्वाब देखा करता था वही इस समय मेरे पास खड़ी मुझसे बात कर रही थी।

-''केयर फ़ॉर ए ड्रिंक?'' मैं ने पूछा।

-''चलो!'' उसने फ़ौरन कहा तो मैं जैसे बल्लियों उछल गया। फिर अपने को आश्वस्त करने के लिए मैं ने अपने कोट के अंदर वाली जेब टटोली। उसमें बीस पैनी का सिक्का पड़ा मिला। मुझे अपने साथ इस भद्दे मज़ाक की क़तई उम्मीद नहीं थी। मैं इस अंदाजे में था कि मेरे पास एक पौंड है। मुझे ऐसा लगा जैसे मरने के बाद फ़रिश्ता मुझे जन्नत ले जाते जाते अचानक धड़ाम से किसी पत्थरी फर्श पर फेक कर चला गया।

-''सॉरी!'' मैं ने सूज़न को बीस पैनी का सिक्का दिखाते हुए, मायूस हो कर कहा, ''नो मनी!'' सूज़न ने मुस्कुरा कर पलक झपकाते हुए दोस्ती से कहा, ''नो वरीज़।.....स्टेशन जा रहे हो?''

-''हाँ।'' मैं ने कहा।

-''चलो मैं भी वहीं जा रही हूँ।''

बात चीत का सिलसिला शुरू हो चुका था और अब मैं और सूज़न अक्सर कॉलेज के कॉरिडोर में मिलते तो हेलो कर लेते। बाक़ी विद्यार्थी हमें इस तरह बतियाते देखते तो देखते रह जाते-शायद इस ताज्जुब से कि क्यों ये एक इंडियन

से इतनी घुल के बात कर रही है! उस ज़माने में लन्दन में भारतीयों की कोई ख़ास इज़्ज़त नहीं थी। वे तो मेडिकल डाक्टरों-जो गोरों की सेवा में लगे होते थे- से भी कहते थे ''क्यों आते हो हमारे देश में। यू आर नॉट वेलकम हियर।'' हाँ मेरे क्लास का एक वेनेज़ुयुलेन लड़का जो बहुत लम्बा चौड़ा और सख़्त दिखता था अपनी स्पैनिश एक्सेंटवाली अंग्रेज़ी में अक्सर मुझसे कहता था- ''यू टॉकिंग टू सूज़न.... आई डोंट लाइक।'' मैं समझता था कि वो मुझसे जलता है लेकिन मैं ने कभी उससे उसकी 'डोंट लाइक' का कारण नहीं पूछ। लेकिन इस तरह की प्रतिक्रियाओं, या जलनों या मज़ाक़ों या आगाह करने ने मेरे दिल में सूज़न की दोस्ती की बात और शिद्दत से बढ़ा दी। वक़्त के साथ मैं और सूज़न अच्छे दोस्त बन गए और जब उसे थेम्स टी वी के स्टूडियो में विज़न मिक्सर का जॉब मिल गया तो तक़रीबन हर वीकेंड ही हम एक दूसरे के साथ किसी न किसी पब में शामें गुज़ारने लगे। तब तक मैं दूसरे साल में पहुँच गया था और कुछ ही दिनों में बी बी सी व्हाइट सिटी स्टूडियो में मुझे इंटर्नशिप करने जाना था।

-''सो व्हाट्स द प्लान?'' एक दिन सूज़न ने पूछा।

-''कोशिश करूंगा कि बॉस को अच्छा काम करके दिखाऊं ताकि वह मुझे नौकरी के लिए रेकमेंड कर दे।''

-''नो आई मीन उसके बाद।''

''उसके बाद?''.....मैं उसका मज़ाक उड़ाते हुए हंसना चाहता था और कहना चाहता था कि अभी स्टूडियो तक तो पहुंचे नहीं उसके बाद की क्या बताऊँ, लेकिन शुक्र है मैं वो हंसी छुपा पाया और मैं ने एक ठसका लगा कर सूज़न की तरफ़ शैतानी से देखते हुए कहा, ''उसके बाद?.....तुम्हारे साथ होता हूँ तो मुझे तो अभी की सुध नहीं रहती....बाद की क्या बताऊ!''

उस शाम हम लोग रात को ग्यारह बजे तक- पब बंद होने तक- वहीं बैठे रहे। बियर पीते हुए,फिश एंड चिप्स खाते हुए,बात बेबात पर बेसाख़्ता हँसते हुए. ....! फिर जब पब बंद हुआ और हम वहां से निकाले गए तब देर रात हमने टैक्सी ली और सूज़न के फिंचले रोड वाले फ़्लैट पर चले गए। साथ में गुज़ारी गयी हमारी वह पहली रात थी।

सूज़न का पूरा नाम सूज़न व्हाइट था। उसके माता पिता मूल रूप से कैथोलिक क्रिश्चियन थे लेकिन सूज़न के जन्म से पहले ही वे लोग इस्लाम से प्रभावित हो कर मुसलमान हो चुके थे इसलिए सूज़न क़ानूनन मुसलमान थी। हालाँकि उसके मां बाप तो कभी पढ़ते भी थे, सूज़न नमाज़ों और इस्लाम की रूढ़ी वादी बातों में यक़ीन नहीं रखती थी। हाँ, क़सम ख़ाने के लिए उसने कभी क़ुरान अंग्रेज़ी में पढ़ी

थी और अब शायद उस बात को भी कई साल गुज़र चुके थे।

-''तुम इंडिया में कहाँ से हो?''

-''इंडिया के हार्ट में एक शहर है झाँसी, वहां से।''

-''झाँसी.....झाँसी.....'' सूज़न ने एक मिनट माथे पर बल डाल कर कुछ याद किया, फिर बोली, ''झाँसी ऑफ़ दैट वोर्रीयर क्वीन जिसे अँगरेज़ भी हरा नहीं पाए थे?''

-''करेक्ट, वही हमारी पहचान है।''

-''आई सी.....इंडिया में कोई धर्म वर्म मानते हैं?''

-''हमारे यहाँ कई धर्म के लोग रहते हैं.....हिन्दू, बुद्ध, जैन, मुसलमान, क्रिस्चन, यहूदी....तमाम।'

-''तुम क्या मानते हो?''

-''मैं हिन्दू हूँ लेकिन हिन्दुइज़्म रिलिजन कम और वे ऑफ़ लाइफ़ ज़्यादा है....इसलिए....मैं कट्टर नहीं हूँ।''

-''वे ऑफ़ लाइफ़?....वे ऑफ़ लाइफ क्या?....वे ऑफ़ लाइफ तो कुत्तों का भी होता है, शेरों का भी होता है....व्हाट इज़ हिन्दू वे ऑफ लाइफ़?''

मेरे पास कोई जवाब नहीं था क्योंकि न इस बारे में कभी मुझे किसी ने बताया था न मैं ने इस बारे में समझने की कोशिश की थी। मैं ने बात बनाते हुए कहा, ''हैं कुछ पूजा त्यौहार जो हम मनाते हैं....बस।''

-''यु आर शिवा वरशिप्पर्स?''

-''यस।''

-''व्हाट इज़ शिवा लिंगा?''

फिर मेरे पास कोई जवाब नहीं था। ''किताबों में,'' सूज़न ने अपनी चाय का घूँट भरते हुए कहा, ''शिवा लिंगा के बारे में बड़ी गन्दी गन्दी बातें लिखी हुई है। आर दे ट्रू?''

-''वो ठीक नहीं है।''

-''वो ही तो मैं जानना चाहती हूँ कि ठीक क्या है!''

मुझे शर्म आयी कि हिन्दू होते हुए भी मेरे पास अपने ही धर्म की बातों और देवताओं के बारे में ज्ञान नहीं था। मैं ने बात को बदलते हुए तुम्हारे शब्द पे ज़ोर देते हुए कहा, ''धर्म के बारे में तुम्हारा क्या नज़रिया है?''

-''मैं धर्म वर्म नहीं मानती। कट्टर तो बिलकुल नहीं.....लेकिन मेरे पेरेंट्स. ...ख़ास तौर पर मेरी माँ....पूछो मत! हर बात में अल्ला अल्ला करती रहती है। सो इर्रिटेटिंग।''

-''वे यहाँ नहीं रहते?''

-''न....वे आयरलैंड में रहते हैं, कंट्रीसाइड में।''

-''तुम यहाँ कोर्स करने आयी हो?''

-''मैं यहाँ आठ साल से हूँ....मैं ने किंग्स से ग्रेजुएशन किया, थोड़ा काम किया और अब ये कोर्स।''

-''तुम्हारा धर्म से वास्ता नहीं है?''

-''बिलकुल नहीं। मैं इंसानियत में यक़ीन करती हूँ।''

-''याने तुमको मैं अच्छा इंसान लगा!''

-''तुम बहुत शैतान हो....तुम कॉलेज में मुझसे नज़र चुराते भी थे और मुझे छुप छुप के देखते भी थे....मैं सब समझ रही थी....और वैसे भी मुझे तुम्हारा ये सांवला रंग पसंद था तो मैं ने सोच लिया था कि पकड़ूँगी तुमको एक दिन और पूछूँगी कि मुझसे छुपते क्यों फिर रहे हो....लेकिन फिर तुम उस दिन सामने ही पड़ गए।''

-''तुम जाती नहीं अपने पेरेंट्स से मिलने?''

-''तुम चलोगे?'' सूज़न जैसे चहक़ गयी, ''मुझे भी बहाना मिल जायेगा और वे लोग भी ख़ुश हो जायेंगे।''

-''मेरा वहां चलना अजीब नहीं लगेगा?''

-''अजीब क्यों? क्या तुम दोस्तों को अपने पेरेंट्स से नहीं मिलवाते?'' फिर मैं ने और कुछ नहीं पूछा।

कुछ दिनों में मैं लण्डन वीकेंड टेलीविजन में फ्लोर मैनेजर की नौकरी पर लग गया था। सूज़न थेम्स टी वी में तरक़्क़ी पा चुकी थी और हमारी मसरूफ़ियात हमें वीकेंड्स पर भी मुश्किल से ही मिलने देती थीं। अब मैं अपने भाई के मकान से पिम्लिको में एक कमरा लेकर रहने लगा था। सूज़न ने प्रोग्राम यह बनाया कि हम दोनों क्रिसमस में उसके माता पिता से मिलने कुलरोय (एडिनबराः से क़रीब 45 मिनट की दूरी पर एक पुरातन क़िस्म का गाँव) जायेंगे।

-''क्रिसमस भी तीन हफ़्ते दूर है!....तब तक?''

-''तुमने अपने भाई भाभी से नहीं मिलवाया। नेक्स्ट वीकेंड विलमिंगटन चलते हैं। क्या ख़्याल है?'' सूज़न ने ऐसे कहा जैसे वो ये बात कभी भूली ही नहीं थी।

-''मैं उनसे पूछता हूँ उनका प्रोग्राम।'' मैं ने कहा।

-''बताना।''

मैं सोचने लगा कि सूज़न का उनसे क्या कह कर परिचय करवाऊंगा। भाई हालाँकि लन्दन में रह रहा था लेकिन उसकी मानसिकता वही थी। मुझे याद आया जब एक रात बारह के आस पास मेरे बी बी सी के एक मित्र ने फ़ोन किया था तो उसने उससे चिल्ला कर, ''ये कोई समय है किसी को फ़ोन करने का?'' कह

कर फ़ोन काट दिया था और मुझे ये बात शिकायतन दो दिन बाद बताई थी।

ऐसे ही जब मैं अपने क्लास की एक सहपाठी लड़की से किसी स्क्रिप्ट पर फ़ोन पर बात कर रहा था तो वो मेरे ऊपर ऐसे चिल्लाया था जैसे मैं ने कोई गुनाह कर दिया हो। उसकी चिल्लाहट से कुछ ऐसा जाहिर होता था जैसे वो शायद समझ रहा था कि मेरा उस लड़की के साथ कोई अफ़ेयर है और ग़ालिबन मैं ने उसे प्रेग्नेंट कर दिया है। तो ऐसे घर में मैं सूज़न को मिलवाने ले जाऊं! मैं ने मनाया कि या तो सूज़न यह प्रोग्राम भूल जाये या फिर उसे इसके लिए समय ही न मिले। सचमुच अगले तीन सप्ताह बहुत व्यस्त रहे। क्रिसमस वीक के लिए चैनलों में प्रोग्राम बैंक बनना था और सब लोग उसी में लगे थे।

लंडन से एडिनबराः का ट्रेन सफ़र जैसे प्रकृति के आंचल में प्यार से दुलराये जाने का सफ़र था। एडिनबरः से हम लोगों ने एक कार किराये पर ली और क़रीब एक घंटे में पहुँच गए कुलरॉय-एक पुराने क़िस्म का पत्थर की बड़ी बड़ी गिट्टियों से बनी चमचमाती सड़कों और पुरातन मन मोहने वाले साफ़ सुथरे पुते हुए मकानों का क़स्बा जो कई कई शहरों से अच्छा था।

-''सूज़न! मई डिअर गर्ल!'' सूज़न के पिता क्लाउस व्हाइट दरवाज़ा खोलते साथ खिल उठे। फिर उन्होंने मेरी तरफ़ देखा और आँखें छोटी कर के जैसे पहचानने की कोशिश की।

-''आलोक माथुर,'' अपना परिचय करवाते हुए मैं ने अपना हाथ उनकी ओर बढ़ा दिया।

-''एलो व्हाट?''

-अलोक मातूर। ''सूज़न ने मेरा परिचय दिया,'' ए कॉलेज मेट एंड ए फ्रेंड।'' फिर हम लोग अंदर गए और सूज़न की माँ से मिले। मुझे तज्जुब हुआ कि वे लोग थे तो इस्लामिस्ट लेकिन फिर भी क्रिसमस बड़े हौसले से मनाते थे। अंग्रेज़ो जैसा ही टर्की, केक, रोस्ट....बस चर्च नहीं जाते थे।

-''व्हाट आई मिस'' उसकी माँ ने कहा, ''इज़ ए मॉस्क!....यहाँ अगर एक मस्जिद होती तो मज़ा आ जाता।''

-''करती तो रहती हो अल्ला अल्ला.....है तो इस्लामिक सेण्टर फ़लकर्क में .....एक और मस्जिद का क्या करोगी?'' सूज़न ने ताना मारा।

-''एंड्रिया!'' क्लाउस ने अपनी पत्नी को लताड़ते हुए कहा, ''छोड़ो बेकार की बातें, ये नया दोस्त आया है इसकी बात सुनो।.....सो, एलोक.....सॉरी आआलोक....टैल मी तुम और सूज़न एक दूसरे के दोस्त कैसे बने?''

हम कुलरॉय में पूरा हफ्ता भर रहे। हम सुबह आराम से उठते, नाश्ता करते,

घूमते, दिन को वाइन और रात को स्कॉच पीते,तरह तरह के खाने खाते और मज़ा करते। क्रिसमस के पहले वाले दिन एक डिश मैं ने भी बनाई-इंडियन करी! उस रात के बाद जब मैं सो कर उठा तो बिस्तर पर बैठी सूज़न जाग चुकी थी। उसने मुझे एक मिनट घूर कर देखा, फिर बोली, ''अलोक! शैल वी गेट मैंरिड?''

-''अचानक तुम्हें ये ख़्याल कैसे आ गया?'' मैं ने आँख मलते हुए ताज्जुब से पूछा।

-''आई एम् प्रेगनेंट!''

-''जीसस कमिंग टु अवर फ़ॅमिली ! हा हा हा...'' मैं ने हंसी में कह तो दिया पर मेरी परेशानी ये थी कि अब मैं अपने भाई को क्या जवाब दूंगा। लेकिन सूज़न मुझे पसंद थी और वो बच्चा गिराने के पक्ष में नहीं थी। उसके माता पिता यह सुन कर खुश हुए और उन्होंने क्रिसमस के ही शाम आसपास के कुछ लोगों को बुलाकर पार्टी मेँ हमारी शादी का ऐलान कर दिया। मैं ने अपने भाई को ख़बर कर दी। जो कुछ उन्हें मुझे सुनाना था वो मैं ने चुपचाप सुन लिया। शाम को दूसरे दिन हमारी शादी हो गयी।

सूज़न की माँ एंड्रिया ने कुछ पैसे भी सूज़न को दिए ये कह कर कि इसे वह अपने हनीमून ट्रिप के लिए ख़र्च करे, ''हनीमून के लिए तुम लोग इस्तानबुल जाओ. ....व्हाट ए प्लेस....ओह माई गॉड!....मैं ने कितना सुना है उसके बारे में।''

हम लन्दन आ कर फिंचले रोड वाले फ़्लैट में शिफ़्ट कर गए और हनीमून पर जाने के लिए छुट्टी की अर्ज़ी लगाने लगे।

-''न्यू ईयर में?.....पागल हो गए हो ? देखते नहीं कितना काम है!'' हमारे बॉसेस ने अपने अपने हिसाब से यही बात कही। हमको फ़ेब्रुअरी के दूसरे हफ़्ते में छुट्टी मिली तो हमने हनीमून प्लान किया। ''इंडिया चलते हैं!'' मैं ने कहा, ''राजस्थान टूर या साऊथ।''

--इंडिया में तुम्हारा कौन है? भाई तो तुम्हारा यहाँ है....इस्तानबुल चलते हैं ....मॉम ने कितनी तारीफ़ की थी, कितनी ख़ूबसूरत जगह है। ''फिर हम लोगों ने अमरीका का भी प्लान बनाया लेकिन वहां मेरा इंडियन पासपोर्ट होने के कारण वीसा का प्रॉब्लम था। दो दिन इसी उहापोह में गुज़रे। तीसरे दिन सूज़न ने इस्तानबुल के टिकट बुक करवा लिए। हम इस्तानबुल गए।

इस्लामिक देश टर्की की राजधानी इस्तानबुल बेहद ख़ूबसूरत थी। वहां मैं ने सड़क के किनारे बैठी औरतों को ढेरी लगा कर कीमती पत्थरों/नगीनों को बेचते देखा। शहर की सड़कें और इमारतें बहुत दिलकश थीं। हम पांच दिन वहां मैंरियट होटल में ठहरे। होटल शहर में था और निहायत आरामदेह था। पहले दिन तो हमने

शीशे की खिड़की से आसमान देखते और एक दूसरे को बाँहों में महसूस करते गुज़ारा लेकिन दूसरे दिन हम बाहर निकले।

तकसम् स्क्वॉयर और वहां से पैदल पैदल इस्तिक़लाल स्ट्रीट तक सूज़न कुछ नहीं तो दस बार इधर उधर की चीजें देखने रुकती चलती गयी। दो शामें हम फिश सैंडविच खाने समुन्दर किनारे चले गए। गलाता टावर हमने दोपहर बाद देखा, तब सूरज डूब रहा था और टावर पर पड़ने वाली पीली धूप उसके पलस्तर के रंग को निहायत ख़ूबसूरत बना रही थी। तीसरे दिन हमने तय किया कि सिर्फ़ और सिर्फ़ ग्राण्ड बाज़ार में ख़रीदारी करेंगे। क़रीब चार सौ दुकानों के इस संकुल में सब कुछ मन भावन था और हमारे पैसे ख़त्म होने लगे थे। चौथे दिन हम अय्या सोफ़िया म्यूज़ियम देखने गए और जब वहां से सुल्तान एहमद मस्जिद से होते हुए वापस आ रहे थे तो सूज़न एक मिनट ठहर कर बड़ी शिद्दत से मस्जिद की तरफ़ देखने लगी। उसने मुझे बांह से पकड़ कर ऊँगली से मस्जिद दिखाते हुए कहा, ''ये कितनी दिल लुभाउ है। कारीगरी का नमूना....है न!'' बात सच थी। ''इस्लाम ने कितनी ख़ूबसूरत चीजें दुनिया को दीं हैं।'' उसने जैसे भाव विभोर हो कर कहा।

-''इस्लाम ने ख़ूबसूरत चीजें भी दीं हैं और निहायत बदसूरत काम भी किये हैं!'' मैं ने मज़ाक करते हुए कहा।

-''वो तो सबने किया है!'' वो बोली।.....''अलोक.....मैं इस मस्जिद में नमाज़ पढ़ूं? आई विल ट्राई.....ये मेरे लिए यादगार मोमेंट होगा।'' मैं ने कंधे उचका दिए। सूज़न गयी और नमाज़ पढ़ने के नाम पर जब वह दो घंटे वहां से नहीं निकली तो मैं ने उसे मैसेज कर दिया कि मैं उसे होटल में मिलूंगा। होटल में वह रात को आठ के आस पास आई। ''क्या हुआ? तुम खो गयीं थीं?'' मैं ने पूछा।

-''नो नो....मुझे वहां वो इमाम मिल गया जो कि निहायत क़ाबिल आदमी है। मैं ने उससे वादा किया है के मैं कल पूरा दिन उसके साथ गुज़ारूंगी। वो मुझे इस्लाम की बारीकियों से अवगत करवाएगा। आज उसने मुझे समझाया कि इस्लाम का ख़ुदा ही असली ख़ुदा है बाक़ी सब मिथक है। उसने मुझे ला इलाह इललिल्लाह का मतलब भी समझाया।''

-''वो तो तुमको तुम्हारे पिता ने भी समझाया होगा।''

-''नहीं नहीं....वो लोग वैसा इस्लाम नहीं मानते जैसा कि दर असल मानना चाहिए।''

दूसरा पूरा दिन सूज़न ने मस्जिद के इमाम के साथ ज्ञान अर्जन में गुज़ारा। शाम को जब वह आई तो एकदम रेफ़्रेश्ड थी- ''आज मैं ने चार समय की नमाज़ पढ़ी....ऐसी तो मैं ने कभी पढ़ी ही नहीं!'' फिर खाना खाते में उसने मेरी तरफ़ ग़ौर

से देखते हुए पूछा- ''यू आर ए हिन्दू?''

-''हाँ!''

-''यु आर काफ़िर....तुम भी मुस्लमान बन जाओ। मौलवी कहता है किसी मुस्लमान को ग़ैर मुस्लमान से शादी नहीं करनी चाहिए।''

-''हम दोनों इंसान हैं और एक दुसरे को प्यार करते हैं क्या इतना काफ़ी नहीं है?'' मैं ने पूछा।

वो कुछ बोली नहीं शायद इसका जवाब उसके पास न रहा हो। अगला दिन इस्तानबुल में हमारा आख़िरी दिन था। सूज़न एयरपोर्ट जाने के रास्ते में सुल्तान एहमद मस्जिद (नीली मस्जिद) में टैक्सी रोक कर इमाम से मिलने गयी। इमाम उसके साथ बाहर तक उसे छोड़ने आया। इमाम ने मुझे भी देखा लेकिन जब मैं ने उससे हाथ मिलाने की कोशिश की तो उसने दूर से ही एक हाथ से सलाम करके छुटकारा पा लिया और जैसे ज़बरदस्ती मुस्कुराते हुए बड़ी साफ़ अंग्रेज़ी में कहा, ''ईमान की राह पर चलना सीख बच्चे! ईमान की राह पर चलना सीख।''

लन्दन वापस पहुंचने पर भी सूज़न और इमाम की वाहट्स एप्प चैट्स चलती रहीं। कभी कभी घंटों लगातार। सूज़न मुझसे कई बार कह चुकी थी की मैं धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन जाऊं, अपना नाम और रहन सहन बदल लूँ लेकिन इस वीकेंड वह अड़ ही गयी। ''देखो....अगर तुम इस्लाम इख़्तियार नहीं करते तो हमारी शादी नाजायज़ हो जाएगी!''

-''कैसे नाजायज़ हो जाएगी?......इंग्लॅण्ड के क़ानून में कहाँ लिखा है कि जो शादी हमने अदालत में रजिस्टर की है वह इस वजह से नाजायज़ हो जाएगी कि मैं मुसलमान नहीं हूँ?....और मैं तुमसे कह चुका हूँ कि मैं कोई कट्टर हिन्दू भी नहीं हूँ।''

-''इंग्लॅण्ड के क़ानून को मारो गोली, इस्लाम के क़ानून की बात करो, इस्लाम और इस्लामी बिरादरी वाले अगर हमारी शादी को मान्यता नहीं देंगे तो सोचो हमारे बच्चे के बारे में, वह तो नाजायज़ क़रार दे दिया जायेगा....तब क्या होगा?'' सूज़न परेशान हो गयी।

तीन हफ़्ते गुज़र गए। हालंकि मैं ने कोशिश की कि सूज़न की मोहब्बत में कुरान पढ़ूं, नमाज़ करने की कोशिश करूँ लेकिन वो सब मुझसे हुआ नहीं। सूज़न का इमाम से वार्तालाप और इस्लामी कट्टर पना बढ़ता जा रहा था।

एक दिन सूज़न शाम को जब लौटी तो बेहद थकी, उदास और बीमार लग रही थी। ''क्या हुआ?'' मैं ने पूछा।

-''मैं ने बच्चा गिरा दिया।''

-“क्यों?”

जवाब में सूज़न चंडी की तरह चिल्ला उठी, “तुम्हारी वजह से बेवकूफ़.... तुम्हारी वजह से....मैं एक काफ़िर के बच्चे को जन्म नहीं दे सकती।”

-“बच्चे ने क्या बिगाड़ा था.....क़ुरान भी तो कहता है कि बच्चे ख़ुदा की देन हैं।”

-“वो जब जब उनका बीज इस्लामी हो।”

इन सब बिगड़ते रिश्तों का असर हमारी प्रोफ़ेशनल ज़िन्दगी पर भी पड़ रहा था। मेरा भाई और मेरे दोस्त इस सब के लिए मुझे ही दोश दे रहे थे- ‘पहले क्यों नहीं सोचा?’ अब मैं क्या बताता कि धर्म हमारे किसी परिवार वाले के अजेंडे में कभी रहा ही नहीं। इसके दो सप्ताह बाद सूज़न ने मुझसे कहा, “तुम अब यहाँ से शिफ़्ट कर जाओ।”

-“लेकिन हम शादी शुदा हैं।....अगर तुम ऐसा चाहती हो तो तलाक़ लेना पड़ेगा।”

-“तलाक़ दुनिया के लिए....वो भी ले लेंगे....लेकिन इस्लाम के हिसाब से तो ये शादी जायज़ ही नहीं हुई।”

-“लेकिन शादी तो हुई, हमने प्यार तो किया।”

-“वो सब ख़ुदा की मर्ज़ी....रब्बुल आलमीन।”

-“याने?”

-“रब्बुल आलमीन....जो जो कुछ इस दुनिया में है या हो रहा है वो सब ख़ुदा की मर्ज़ी से।”

-“आई सी! जो हुआ वो रब्बुल आलमीन...तो जो हो रहा है उसे ऐसे ही चलने दो....तलाक़ ले कर ख़ुदा की मर्ज़ी में दख़ल क्यों करती हो?’

-“बेकार की बातें मत करो.....इस वीकेंड यहाँ से शिफ़्ट करो और दफ़ा हो जाओ...अब तुम जैसे मुशरिक के साथ एक पल भी और नहीं रहूंगी।”

अब मैं वापस पिम्लिको के एक कमरे वाले पी. जी. में रहने आ गया हूँ। मेरे मानसिक तनाव के चलते काम में ढील होने के कारण चैनल वालों ने मुझे चेतावनी दे डाली है। सूज़न अब पांचों वक़्त की नमाज़ पढ़ती है और खाने में हलाल सर्टिफाइड दुकानों से ही समान ख़रीदती है। स्टूडेंट वीसा से जब मुझे रेजिडेंट वीसा मिला था तो मैं बहुत ख़ुश हुआ था मगर अब लगने लगा है कि वापस लौट जाऊं। शायद मुझे लौटना ही था। शायद जो मेरे साथ होना लिखा था वही हुआ।.....रब्बुल आलमीन!

***



1951 में जन्मे, झाँसी में पले बढ़े, अशोक कुमार ने बी एस सी के बाद लन्दन जा कर टी वी प्रोडक्शन डायरेक्शन के कोर्स किये और उसी दौरान बी बी सी के लिए भी काम किया। 1974 में ये वापस आ गए और दिल्ली टी वी (तब दूरदर्शन नहीं था) में प्रोड्यूसर हो गए। वहां से ये पूना फि ल्म संस्थान में फ ैकल्टी के बतौर बुला लिए गए। वहां से दो साल बाद 1977 में ये बम्बई आ गए जहाँ ये बी आर एड्स में जनरल मैनेजर हो गए। 1984 में इन्होने अपनी प्रोड्कशन कंपनी- इनकॉम- शुरू की। इस कंपनी में इन्होने पैराशूट, ओनिडा, गुड नाईट, कैडबरीस जैसी जानी मानी कंपनियों के एड्स बनाये और तमाम वृत्त चित्र बनाये। भारत में महारानी लक्ष्मीबाई पर एक घंटे का डॉक्यूड्रामा बनाने वाले अशोक कुमार एकमात्र प्रोड्यूसर/डायरेक्टर हैं।
अशोक कुमार टी.वी. चैनलों में वरिष्ठ पदों पर कार्यरत रहे हैं। 'माईका' अहमदाबाद में मीडिया के प्रोफ ेसर रहे हैं तथा रामोजी यूनिवर्स में एडवरटाइज़िंग क्रिएटिविटी के प्रोफ ेसर रह चुके हैं।
ये टाइम्स ऑफ इंडिया तथा जनसत्ता के मीडिया कॉल्युमनिस्ट रहे हैं तथा दो बार अंतर्राष्ट्रीय फि ल्म फेस्टिवल्स में सिलेक्शन समिति मेंबर रह चुके हैं।
इनके दो उपन्यास -'दुनिया फि ल्मों की' तथा 'इंस्टिट्यूट' प्रकाशित हो चुके हैं तथा हिंदी उर्दू और इंग्लिश में ये सामान रूप से लिख रहे हैं। इनकी कहानियां, कवितायें तमाम पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

सम्पर्कः <Kumar-incomm@yahoo.co.uk>

₹ 550/-


नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
8750551515, 9350551515

ISBN 81-8129-685-0
